आचार्य शिवपूजन सहाय

वक्तव्य

'हिन्दी-साहित्य और बिहार' नामक ग्रन्थमाला के इस दूसरे खण्ड का प्रकाशन करते हुए हम पितृऋण और ऋषिऋण से आंशिक मुक्ति का अनुभव कर रहे हैं। यह तो सर्व-विदित है कि 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' आचार्य श्रीशिवपूजन सहाय के तपस्तरु का एक सुमधुर एवं सुपक्व फल है; पर यह ग्रन्थ-गुच्छ तो उनके साहित्यिक जीवन की विराट् कल्पना थी, जिसका सुष्ठु और मूर्त्त रूप देने का अवसर उन्हें तब मिला, जब वे बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के मन्त्री हुए। उन्होंने सन् १६५१ ई० में ही परिषद् के संचालक-मण्डल के समक्ष इस माला के लेखन, सम्पादन और प्रकाशन कराने का प्रस्ताव रखा, जिसे मण्डल ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। किन्तु, संयोग ऐसा कि उनके संचालकत्व-काल में, इसका एक खण्ड भी प्रकाशित न हो सका। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि जब आचार्य शिवपूजन सहायजी सन् १६५६ ई० के अगस्त मास में परिषद् की सेवा से निवृत्त हुए, तब इस ग्रन्थमाला की अधिकांश सामग्री एकत्र हो गई थी और कालक्रम के अनुसार विषयों का वर्गीकरण भी हो चुका था। साथ ही, सन् १६५६ ई० के अगस्त तक प्रथम खण्ड के कई फर्में भी छप चुके थे। उस समय इस ग्रन्थ के सामग्री-संचयन और लेखन में श्रीसहायजी की सहायता मुख्यरूप से श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ और श्रीबजरंग वर्मा, एम्० ए० कर रहे थे। ग्रन्थ का प्रथम खण्ड सन् १६६० ई० में प्रकाशित हो सका, जिसमें ७वी शती से १८वी शती तक के बिहारवासी हिन्दी-साहित्य-सेवियों के विवरणात्मक परिचय प्रकाशित किये गये हैं। इस प्रथम खण्ड के वक्तव्य और प्रस्तावना में इस ग्रन्थमाला के प्रणयन की पृष्ठभूमि का रोचक इतिहास श्रीसहायजी स्वयं लिख गये हैं।

यह प्रस्तुत प्रकाशन उक्त ग्रन्थमाला का ही दूसरा खण्ड है। इस ग्रन्थ-गुच्छ में उन्नीसवी शती के पूर्वार्द्ध (सन् १८०१ से १८५० ई० तक) में जिन बिहारवासी हिन्दी-साहित्यिकों का जन्म हुआ है, उन्ही का विवरणात्मक परिचय दिया गया है। उस खण्ड की सामग्री के संकलन तथा वर्गीकरण के लिए आरंभ में श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ ने हाथ बँटाया था, किन्तु प्रारम्भ से अन्त तक सहायक रूप मे काम करने का श्रेय साहित्यिक इतिहास-विभाग के अनुसंधायक श्रीबजरंग वर्मा को है, जिनका नाम भी सहायक सम्पादक के रूप में हम दे रहे हैं। श्रीवर्मा ने सहायजी के निर्देशन में अन्वेषण, सामग्री-संचयन, लेखन तथा सम्पादन में अच्छी तरह योगदान किया है। परिषद् के कार्यकर्त्ता श्रीचन्द्रेश्वरप्रसाद सिंह 'नीरव', एम्० ए०, डिप्० इन० एड्० ने भी इसके लेखन और सामग्री-संचयन में पूरी सहायता की है। प्राचीन ग्रन्थ-शोध-विभाग के प्रधान अनुसन्धायक श्रीरामनारायण शास्त्री तथा परिषद् के पुस्तकालयाध्यक्ष श्रीपरमानन्द पाण्डेय, एम्० ए०. बी० एल्० से भी कई बहुमूल्य सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

हम अपने इन सभी सहयोगियों का हृदय से धन्यवाद ज्ञापन करते हैं। इनके अतिरिक्त और भी जिन सज्जनो से इसके निर्माण मे साहाय्य प्राप्त हुआ है, उन सभी का परिषद् कृतज्ञ है।

आचार्य शिवपूजन सहायजी के जीवन की जो थोड़ी अभिलाषाएँ शेष थीं, उनमें से एक इस ग्रन्थमाला का प्रकाशन भी था। उन्होंने अपनी इस अभिलाषा की कई बार चर्चा भी की थी। अपनी ऐसी निष्ठा के कारण ही परिषद् के संचालकत्व से जब विराम ग्रहण किया, तब भी परिषद् में नियमित रूप से आकर इस ग्रन्थ का लेखन-सम्पादन करना उन्होंने नही छोड़ा। उन्होंने इस साहित्यिक इतिहास के निर्माण में अपनी अस्वस्थ अवस्था में भी, जीवन के अन्तिम क्षण तक, जबतक वे होश में थे, जिस तन्मयता और परिश्रम से कार्य किया, वह सर्वथा अभिनन्दनीय एवं वन्दनीय है। यह श्लोक सरस्वती के उस वरद पुत्र के लिए यहाँ समर्पित है—

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

निश्चय ही, स्वर्गीय आचार्य शिवपूजन सहायजी की दिवंगत आत्मा को इस प्रकाशन से परम प्रसन्नता प्राप्त होगी; क्योंकि यही उनके जीवन की शेष अभिलाषा थी।

पहले खण्ड की तरह प्रस्तुत खण्ड के भी प्रथम परिशिष्ट में साहित्यिकों का विवरण प्रकाशित किया गया है, जिनका जन्म-स्थान बिहार प्रान्त नही है; पर उनका सहित्य-सर्जन का कार्यक्षेत्र बिहार ही रहा है। ग्रन्थ के दूसरे परिशिष्ट में प्रथम खण्ड से सम्बद्ध कुछ और सामग्री संकलित की गई है, जिनका समावेश उसमें नही हो सका था तथा जिनका अन्वेषण-अनुसन्धान उसके प्रकाशन के पश्चात् हुआ है। प्रथम खण्ड का जब द्वितीय संस्करण छपने लगेगा, तब इस सामग्री का समावेश उसमें यथास्थान किया जायगा।

'हिन्दी-साहित्य और बिहार' के प्रथम खण्ड के प्रकाशन की प्रशंसा विद्वानो ने की है। इस दूसरे खण्ड में ऐसी कई बहुमूल्य शोध-सामग्री प्रस्तुत की गई है, जो अबतक अन्धकार में पड़ी थी। अतः, परिषद् का यह प्रकाशन विद्वन्मण्डली में विशेष रूप से समादर प्राप्त करेगा, ऐसा हमें विश्वास है। इस ग्रंथमाला के शेष तीन खण्डों के प्रकाशन की भी व्यवस्था परिषद् कर रही है, जिनमें तीसरे खण्ड में उन्नीसवी शती का उत्तरार्ध होगा और चौथे खण्ड में बीसवी शती का पूर्वार्द्ध तथा पाँचवें खण्ड में बीसवी शती का उत्तरार्ध। भगवान् की महती कृपा से ही ऐसे महदनुष्ठान निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं। हमें उनकी अहैतुकी मङ्गलमयी सर्वसमर्थ कृपा का सदा सहारा है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
दीपमालिका, २०२० वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
निदेशक

प्रस्तावना

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, हिन्दी-साहित्येतिहास के उत्तर-मध्य अथवा रीति-काल की अन्तिम सीमा सन् १८४३ ई० (सं० १६०० वि०) है। उनके मतानुसार हिन्दी-साहित्य के आधुनिक अथवा गद्य-काल का आरम्भ उक्त ईसवी से ही होता है। 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' के प्रस्तुत द्वितीय खण्ड का सम्बन्ध सन्-ईसवी की उन्नीसवी-शती पूर्वार्द्ध से है। इसमें मुख्यतः बिहार के उन हिन्दी-साहित्यसेवियों के परिचय, उनकी रचनाओं के उदाहरणों के साथ, संगृहीत हैं, जिनके जन्म उक्त काल-खण्ड (सन् १८०१ से ५० ई०) में हुए हैं।

इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में जो बिहार के बारह सौ वर्षों का इतिहास प्रस्तुत किया गया है, उसे कई कारणों से, 'अन्धकार-युग का इतिहास' कहा गया है। उक्त खण्ड में साहित्यकारों के जन्म-मरण-काल की अनिश्चितता के कारण, प्रत्येक शती में, साहित्यकारों के नाम अक्षरानुक्रम से ही रखे गये हैं। उन्नीसवीं शती पूर्वार्द्धवाले प्रस्तुत खण्ड में हमें कुल ४६ साहित्यकारों की निश्चित जन्म-तिथियाँ ज्ञात हो सकी हैं। इनमें अनेक ऐसे भी हैं, जिनके निधन की तिथियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। इन्ही साहित्यकारों को पाठकों की सुविधा के लिए, प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम अध्याय में रखा गया है। इस अध्याय के ४६ साहित्यकारो में, ८ की रचनाओं के उदाहरण नही मिले। द्वितीय-अध्याय में उन साहित्यकारों के परिचय संगृहीत हैं, जिनका जन्म-काल उन्नीसवी शती पूर्वार्द्ध में ही अनुमित है। इस अध्याय में साहित्यकारों की संख्या ७१ है, जिनमें ३७ की रचनाओं के उदाहरण अनुपलब्ध हैं। इसी प्रकार, अन्तिम, अर्थात् तृतीय अध्याय में उन साहित्यकारों के परिचय आये हैं, जिनका जन्म-काल उक्त काल-खण्ड में ही अनिश्चित है। इस अध्याय के साहित्यकारों की संख्या ६६ है, जिनमें ३५ की रचनाओं के उदाहरण नही प्राप्त हो सके।

पुस्तक के अंत में, छह प्रकार के परिशिष्ट हैं। उनमें सामग्री-विभाजन इस प्रकार हुआ है—परिशिष्ट १ में उन ६८ बिहारी साहित्यकारों के नाम और रचनाओं के उदाहरण दिये गये हैं, जिनके परिचय के विषय में विशेष बातें ज्ञात नही होती। परिशिष्ट २ में उन चौदह अन्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्यकारों की चर्चा है, जिनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः बिहार ही रहा है। परिशिष्ट ३ में पुस्तक के प्रथम खण्ड से सम्बद्ध ५२ साहित्यकारों के सम्बन्ध में नवीन सूचनाएँ और २० नवीन परिचय भी हैं, जो नई खोज के क्रम में प्राप्त हुए हैं। इन २० नवीन परिचयों में कुल १० के ही उदाहरण उपलब्ध हो सके हैं। परिशिष्ट ४ में प्रस्तुत खण्ड से सम्बद्ध तीन साहित्यकारों के परिचय-मात्र हैं। परिशिष्ट ५ में एक परिचय-तालिका दी गई है, जिससे पाठक सुगमतापूर्वक प्रस्तुत खण्ड के मुख्य तीन अध्यायों का सिंहावलोकन कर सकें। अंत में, परिशिष्ट ६ में, मूल पुस्तक में संकलित उदाहरणों की प्रथम पंक्ति की, अकारादिक्रम से सूची दी गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत खण्ड के मूलांश में कुल १८६ बिहारी साहित्यकारों के परिचय संगृहीत हैं। इनमें चम्पारन-निवासी साहित्यसेवियों की संख्या सर्वाधिक, अर्थात् ४१ है। इसका कारण यह है कि चम्पारन में प्राचीन साहित्यानुसंधान की प्रगति गत दो दशकों में बड़ी तीव्रगति से हुई है। इस दिशा में कई विद्वान् प्रवृत्त हैं। हिन्दी के सुपरिचित लेखक एवं कवि श्रीरमेशचन्द्र झा ने तो 'चम्पारन की साहित्य-साधना' की रचना कर चम्पारन की साहित्यिक प्रगति के सम्बन्ध मे बहुत ही आवश्यक सामग्री पाठकों के सामने प्रस्तुत की है। चम्पारन के बाद उक्त काल-खंड में, साहित्यकारों की संख्या की दृष्टि से, 'सारन' का नाम आता है, जहाँ ३५ साहित्यकार हुए। सारन में, साहित्यानुसंधान का कार्य अभीतक योजनाबद्ध रूप में नही हुआ है। किन्तु, जैसा कि उक्त संख्या से स्पष्ट है, यदि इस क्षेत्र में उक्त कार्य का आरम्भ हो, तो और भी अनेक साहित्यकारों के नाम सामने आयेंगे। चम्पारन और सारन के बाद विभिन्न क्षेत्रों का नामानुक्रम निम्नलिखित रीति से निर्धारित किया जा सकता है—शाहाबाद २७, दरभंगा २४, पटना २३, गया १७, मुजफ्फरपुर तथा पूर्णियाँ ५-५, छोटानागपुर ४, भागलपुर ३ और मुंगेर २। उक्त क्षेत्रों मे साहित्यानुसंधान का कार्य केवल दरभंगा और गया में ही प्रशंसनीय रूप में हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप डॉ० जयकान्त मिश्र-कृत 'हिस्ट्री ऑफ् मैथिली लिटरेचर' (दो खण्डों में) और श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त[1]-लिखित 'गया के लेखक और कवि' नामक कृतियाँ हमारे सामने हैं। शेष कुछ क्षेत्रो के लोग इस दिशा में प्रवृत्त हैं और कुछ क्षेत्रों में तो इस दिशा में कुछ कार्य हो नही हो रहा है। इनमें पहली कोटि में शाहाबाद, पटना और मुजफ्फरपुर के नाम लिये जा सकते हैं। पूर्णियाँ, छोटानागपुर, भागलपुर, मुंगेर आदि के नाम दूसरी कोटि में आयेंगे।

प्रस्तुत काल-खण्ड में सबसे अधिक संख्या उन साहित्यकारों की है, जिन्होने काव्य-रचना द्वारा साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इनमें अधिकांश कवियों ने व्रजभाषा का सहारा लिया है। अवधी में जिन कवियों ने रचनाएँ की हैं, उनकी रचनाओं में भी यत्र-तत्र व्रजभाषा का ही पुट मिलता है। इसी कारण, इस काल में विशुद्ध अवधी के उतने अधिक कवि नही मिलते। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि व्रजभाषा की तुलना में अवधी काव्य-रचना के लिए हिन्दी-संसार में बहुत प्रचलित नही हुई। काव्य-रचना के लिए व्रजभाषा का जितना देशव्यापी प्रचार अपने यहाँ हुआ, उतना खड़ीबोली को छोड़कर अन्य किसी भी भाषा का नही। व्रजभाषा और अवधी के बाद खड़ीबोली,

१. श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त ने 'बिहार के हिन्दी-सेवक' शीर्षक से बिहार के साहित्यिक इतिहास के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री एकत्र की थी। २१ फरवरी १९३५ ई० (भाग १९, अंक ८) के 'गृहस्थ' (पृ० ६०-६१) में, उनका 'बिहार के हिन्दी-प्रेमियों से नम्र-निवेदन' प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने सूचित किया है कि अबतक उन्होंने २७८ मृत तथा जीवित साहित्यकारों के विषय में जानकारी प्राप्त कर ली है, जिनमें, पटना, गया, शाहाबाद के ७७ कवियों की जीवनियाँ 'गृहस्थ' में 'बिहार के हिन्दी-सेवक' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। श्रीगुप्त का उक्त निवेदन १८ अप्रैल, १९३५ ई० (भाग १९, अंक १४, पृ० १०९) तथा २९ अगस्त, १९३५ ई० (भाग २०, अंक २६, पृ० १९६) के 'गृहस्थ' में भी छपा था।

मैथिली और भोजपुरी की रचनाएँ मिलती हैं। इन तीनों भाषाओं में रचनाएँ प्रायः समरूप से हुई हैं। दुर्भाग्यवश, बिहार की अन्य भाषाओं की कोई भी रचना इस काल-खण्ड में नहीं मिली है। केवल गया के पाठकबिगहा-निवासी हरिनाथ पाठक के विषय में यह उल्लेख मिलता है कि उन्होंने मगही में अनेक गीतों की रचना की थी, जो आज नहीं मिलते। संभव है, भावी अनुसंधान के फलस्वरूप मगही, अंगिका, वज्जिका आदि अन्य भाषाओं की रचनाएँ हमें प्राप्त हों, जिनसे तत्सम्बन्धी क्षेत्रों की साहित्यिक प्रगति का भी कुछ परिचय मिल सके।

भाषा की सफाई, भाव के माधुर्य एवं छन्दःप्रवाह की सुगमता की दृष्टि से प्रस्तुत काल-खण्ड के उल्लेख्य कवियों के नाम इस प्रकार हैं—

(क) **ब्रजभाषा**—यशोदानन्द, घनारंग दुबे, नगनारायण सिंह, बच्चू दुबे, राधावल्लभ जोशी, रामकुमार सिंह, नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह, रामविहारी सहाय, रामलोचन मिश्र, अक्षयकुमार, बालगोविन्द मिश्र, रामफलराय, ठग मिश्र, संसारनाथ पाठक, यज्ञदत्त त्रिपाठी, गुरुप्रसाद सिंह, गोपीश्वर सिंह, चन्देश्वरी राय, जगदम्बलाल बख्शी, मुकुटलाल मिश्र, मुनीन्द्र, रामकवि, रिपुभंजन सिंह, लालबाबू, शिवप्रसाद, अम्बिकाशरण, कृपानारायण, जयगोविन्द महाराज, द्वारकाप्रसाद मिश्र, माधवेन्द्रप्रताप साही, राजेन्द्र प्रसाद सिंह तथा शिवकविराय।

(ख) **अवधी**—हेमलता, भगवतशरण, हरनाथप्रसाद खत्री, भगवानप्रसाद 'रूपकला', कान्हजी सहाय, कामदमणि, टिम्बल ओझा, नान्हक, भजनदेव स्वामी, भागवतनारायण सिंह, हरिचरणदास और धवलराम।

(ग) **खड़ीबोली**—हेमलता, बनवारीलाल मिश्र, गुरुसहाय लाल, चतुर्भुज मिश्र, सैयद अली मुहम्मद, राजेन्द्रशरण तथा सोहनलाल।

(घ) **मैथिली**—दामोदर झा, भाना झा, चन्दा झा, हर्षनाथ झा, गोपीश्वर सिंह, फतूरीलाल, रत्नपाणि, जनेश्वरी बहुआसिन तथा शम्भुदत्त झा।

(च) **भोजपुरी**—भगवानप्रसाद 'रूपकला', सैयद अली मुहम्मद, लक्ष्मीसखी, ईनरराम, केशवदास, गुलाबचन्द, दरसनदास, योगेश्वरराम तथा सबलराम।

प्रस्तुत काल की काव्य-रचनाओं के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट विदित होता है कि इस काल में भी, अट्ठारहवीं शती की तरह, भक्ति और रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ ही प्रमुख रहीं। साथ ही, आधुनिक काल की प्रवृत्ति के बीज भी यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं। ऊपर यह कहा जा चुका है कि उक्त काल-खण्ड से ही हिन्दी-साहित्य के आधुनिक-काल का आरम्भ हो जाता है।

रस की दृष्टि से देखा जाय तो भक्ति अथवा शान्त, शृंगार एवं वीर-रसों की प्रमुखता है। भक्ति एवं शृंगार-रस की रचनाएँ तो इस काल में भरी पड़ी हैं। वीर-रस की रचनाएँ मुख्य रूप से, अलिराज, कमलाधर मिश्र, रामकवि तथा शिवकविराम की ही मिलती हैं। प्रकृति के चितेरे भी इस काल में कम ही हुए। ऐसे कवियों में कुछ मुख्य

नाम ये हैं—नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह, रामफलराय, यज्ञदत्त त्रिपाठी, चन्द्रेश्वरीराय, परमानन्ददास, फतूरीलाल तथा सोहनलाल।

युग की महत्ता पर विचार करते समय निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य हैं—

१. इस काल-खण्ड से ही आधुनिक अथवा गद्य-काल का आरम्भ होता है। अतः, स्वभावतः इस काल में गद्य-रचना की प्रवृत्ति मे, प्रखरता दीखती है। इस समय की गद्य-रचना के जो उदाहरण प्राप्त हुए हैं, उनमें पं० चन्दा झा के गद्य को छोड़कर सभी खड़ीबोली के ही हैं। पं० चन्दा झा की गद्य-रचना मैथिली में मिलती है। शेष प्रमुख गद्यकारों के नाम ये हैं—भिन्नक मिश्र, अयोध्याप्रसाद मिश्र, हरनाथप्रसाद खत्री, नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह, भगवानप्रसाद 'रूपकला', संसारनाथ पाठक तथा गणपति सिंह।

२. इस काल में निम्नांकित नाटककार बड़े महत्त्व के हुए—

(क) भाना झा — प्रभावतीहरण।
(ख) चन्दा झा — अहिल्याचरित-नाटक
(ग) ब्रजविहारीलाल — (१) प्रबोधचन्द्रोदय-नाटक
(२) रत्नावली-नाटिका
(३) संगीत-हरिश्चन्द्र
(४) विद्यासुन्दर-नाटक
(घ) हर्षनाथ झा — (१) उषाहरण
(२) माधवानन्द
(३) रामकृष्ण-मिलन-लीला
(च) कान्हारामदास — गौरी-स्वयंवर
(छ) देवदत्त मिश्र — बाल-विवाह-दूषक
(ज) भजनदेव स्वामी — ब्रह्मस्वरूप-रूपक
(झ) रत्नपाणि — उषाहरण
(ट) भेखनाथ झा — नारद-भ्रम-भंग

कविता एवं नाटक के अतिरिक्त इस काल में साहित्य की अन्य विधाओं को विशेष प्राश्रय नही मिला। वैसे, छिटपुट कुछ रचनाएँ अवश्य मिलती हैं। ऐसी रचनाओं में, जीवनी-साहित्य के अन्तर्गत रामलोचन मिश्र-कृत 'आत्मजीवनी' तथा भिन्नक मिश्र-रचित 'विद्यावती' उपन्यास का उल्लेख किया जा सकता है।

३. इस काल-खण्ड में निम्नलिखित अनुवादकों ने मुख्य रूप से हिन्दी-अनुवाद की गति को आगे बढ़ाया—

(क) अयोध्याप्रसाद मिश्र— श्रीमद्भागवतगीतार्थचन्द्रिका (संस्कृत और हिन्दी में गद्य-पद्यानुवाद)
(ख) चन्दा झा — पुरुष-परीक्षा (विद्यापति-कृत 'पुरुष-परीक्षा' का मैथिली में गद्य-पद्यानुवाद)
(ग) राधावल्लभ जोशी — 'महिम्नस्तोत्र' का हिन्दी-अनुवाद

(घ)	भगवानप्रसाद 'रूपकला'—	शरीर-पालन (बँगला से अनुवाद)
(ङ)	रामलोचन मिश्र —	(१) श्रीसत्यनारायणव्रत-कथा का हिन्दी-पद्यानुवाद
		(२) बहुलाव्रत-कथा का हिन्दी-पद्यानुवाद
		(३) चर्पट-मंजरी (मोहमुद्गर) का हिन्दी-पद्यानुवाद
(च)	हरिनाथ पाठक —	(१) ललित-रामायण (श्रीवाल्मीकि-रामायण का पद्यानुवाद)
		(२) ललित-भागवत (श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद)
(छ)	हरिराज द्विवेदी —	वाल्मीकि-रामायण का हिन्दी-पद्यानुवाद (अपूर्ण)
(ज)	अम्बालिका देवी —	'राजपूत-रमणी' का अनुवाद
(झ)	भुवन झा —	सत्यनाराणव्रत-कथा का पद्यानुवाद

४. इस काल में निम्नलिखित प्रमुख टीकाकार हुए—

(क)	भगवानप्रसाद 'रूपकला'—	(१) श्रीभगवद्वचनामृत (भगवद्गीता के बारहवें अध्याय की टीका)
		(२) भक्तमाल की टीका
(ख)	शिवप्रकाश लाल —	(१) विनयपत्रिका की टीका
		(२) गीतावली-टीका
		(३) रामगीता-टीका
(ग)	गुरुसहाय लाल —	(१) श्रीतत्त्वचिन्तामणि (श्रीमद्भगवद्-गीता के ऊर्ध्वमूलमधःशाख' श्लोक पर टीका)
		(२) सन्त-मनःउन्मनी (रामचरितमानस के बालकाण्ड की टीका)
(घ)	दिवाकर भट्ट —	(१) कविप्रिया (केशव) की टीका
		(२) रसिकप्रिया (,,) ,,
		(३) बिहारी-सतसई ,,
		(४) भाषा-भूषण (मतिराम) ,,
		(५) रसराज ,, ,,
(ङ)	मुकुटलाल मिश्र —	बिहारी-सतसई की टीका
(च)	हरनारायणदास —	रामचरितमानस ,, ,,
(छ)	जानकीप्रसाद —	'मानस-अभिप्राय-दीपक' पर वार्त्तिक-टीका

(ज) वासुदेवदास — रसिक-प्रकाश (भक्तमाल की सुवोधिनी-टीका)

५. इस काल-खण्ड की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह देखने को मिलती है कि इसमें विभिन्न शास्त्रों से सम्बद्ध पुस्तकों के निर्माता भी हुए। काव्य, भाषा, धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, संगीत, गणित, नीति, राजनीति, ज्यौतिष, काम आदि भिन्न-भिन्न शास्त्रों पर भी लेखकों ने अपनी लेखनो चलाई है। सबसे अधिक पुस्तकें काव्य-शास्त्र पर ही मिलती हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण लेखकों के नाम इस प्रकार हैं—

(क) अयोध्याप्रसाद मिश्र — सुधाविंदु (छन्द-परिचय)
(ख) भगवतशरण — युगल-शृङ्गार-भरण (अलंकार)
(ग) राधावल्लभ जोशी — अंग-रत्नाकर (नखशिख)
(घ) गणेशानन्द शर्मा — (१) ऋतु-वर्णन
(२) नायिका-नायक-तत्त्व (नायिका-भेद)
(ङ) वैजनाथ द्विवेदी — (१) श्रीसीतारामाभरण-मंजरी (अलंकार)
(२) नखशिख
(३) रामरहस्य (रस)
(४) वृत्तनिदोष-कदम्ब
(५) वाम-विलास (नायिका-भेद)
(६) उद्दीपन-शृङ्गार-मजरी (रस)
(७) अनुभव-उल्लास (रस)
(८) चित्राभरण (अलंकार)
(९) भूषण-चन्द्रिका (अलंकार)
(च) नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह — शृङ्गार-दर्पण (नखशिख)
(छ) रामलोचन मिश्र — पिङ्गल-छन्दगणाष्टक-वर्णन (छन्द)
(ज) रामफलराय — पावस-बत्तीसी (रस एवं नायिका-भेद)
(झ) दिवाकर भट्ट — (१) नखशिख
(२) नवोढ़ारत्न (नायिका-भेद)
(३) वेश्या-विलास ,,
(ञ) परमानन्ददास — बारहमासा (ऋतुवर्णन एवं नायिका-भेद)
(ट) विहारी सिंह — (१) विहारी नखशिख-भूषण
(२) दूती-दर्पण (नायिका-भेद)
(ठ) जयगोविन्द महाराज — अलंकार-आकर (अलंकार)
(ड) महादेव प्रसाद — नखशिख रामचन्द्रजी

अन्य शास्त्रों के प्रमुख लेखकों और उनकी कृतियों के विवरण इस प्रकार हैं—

भाषाशास्त्र—

(क) राधावल्लभ जोशी — भाषाश्रुतबोध

(ख) हरनाथप्रसाद खत्री — व्याकरण-वाटिका
(ग) अक्षयकुमार — वर्णबोध (छंदोबद्ध हिन्दी-व्याकरण)

धर्मशास्त्र—

(क) जयप्रकाश लाल — जगोपकारक
(ख) दिवाकर भट्ट — (१) वर्णधर्मविवेक-संहिता
(२) धर्म-निर्णय
(ग) बोधिदास — भक्त-विवेक
(घ) मधुसूदन रामानुजदास— भगवद्धर्म-दीपिका

दर्शनशास्त्र—

(क) गुरुसहाय लाल — (१) सज्जन-विलास (सत्संग-भक्तियोग-सम्बन्धी विचार)
(२) निर्वाणशतकम् (एक सौ अभ्यासों की युक्तियाँ)
(३) श्रीगुरुराम-विलास (अष्टांगयोग, प्राणायाम, खेचरी-षट्कर्म, समाधि आदि का वर्णन)
(४) पातंजल योग-दर्शन (केवल पाँच सूत्रों का भाष्य)
(५) परतर-अभिधानम् (श्रुति-स्मृति के प्रमाणों के साथ योगादि के गूढ़ रहस्यों का वर्णन)

आयुर्वेद-शास्त्र—

(क) दामोदर झा — (१) मिथिला आयुर्वेद-शब्दकोश
(२) आयुर्वेद-संग्रह
(ख) अयोध्याप्रसाद मिश्र — (१) आरोग्य-शिक्षा
(२) मांस-भक्षण-मीमांसा
(३) जीव-जीवन-सिद्धान्त
(४) द्रव्यगुण-दर्पण (कोष)

संगीत-शास्त्र—

(क) बच्चू दुबे — (१) सुर-प्रकाश
(२) रस-प्रकाश
(३) संगीत-प्रकाश
(४) भैरव-प्रकाश
(ख) गुरुप्रसाद सिंह — भारत-संगीत

गणित-शास्त्र—

(क) उमानाथ मिश्र — (१) गणित-बतीसी
(२) गणित-छतीसी
(३) गणित-सार
(४) रेखागणित

नीतिशास्त्र—

(क) नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह — धर्मप्रदर्शनी
(ख) व्रजविहारी लाल — (१) नीतिदृष्टांत-रामायण
(२) नीति-दृष्टांतमाला
(ग) जनकधारी लाल — सुनीति-संग्रह

राजनीति-शास्त्र—

(क) गुरुप्रसाद सिंह — राजनीति-रत्नमाला

ज्यौतिष-शास्त्र—

(क) अयोध्याप्रसाद मिश्र — स्वप्न-विचार

कामशास्त्र—

(क) दामोदर झा — कामदर्पण

उक्त शास्त्रों के अतिरिक्त तीन विज्ञान-विषयक पुस्तकों (दौत-बिजली-बल, रगड़-बिजली-बल और वायु-विद्या) के रचयिता सोहनलाल और एक कृषि-संबंधी पुस्तक (खेतीबारी) के लेखक उमानाथ भी इस युग मे हुए। दो-तीन इतिहास और भूगोल-विषयक पुस्तको के रचयिता भी इस युग में हुए। उदाहरणार्थ, शिवप्रकाशलाल तथा अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय-कृत 'इतिहास-लहरी' एवं 'नेपाल का इतिहास' और गणपत सिंह-रचित 'भूगोल-वर्णन' नामक पुस्तकें ली जा सकती हैं।

६ इस काल के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में भगवानप्रसाद 'रूपकला', चन्दा झा, श्रीलक्ष्मणकिला (अयोध्या) के श्रीयुगलानन्यशरणजी 'हेमलता', लक्ष्मीसखी तथा सोहनलाल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भगवानप्रसाद 'रूपकला' अखिल-भारतीय हरिनाम-यश-संकीर्त्तन-सम्मेलन के सस्थापक एक प्रमुख संत-कवि थे। इन्होंने भोजपुरी और अन्य भाषाओ मे भी बहुत मार्मिक रचनाएँ की हैं। चन्दा झा आधुनिक मैथिली-साहित्य के जन्मदाता माने गये हैं और अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण मिथिला मे ये अपर-विद्यापति के रूप मे समादृत हैं। युगलानन्यशरणजी 'हेमलता' इस काल के सर्वाधिक ग्रंथों के रचयिता हुए। कहते हैं, इन्होंने विभिन्न विषयों के चौरासी ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें पचहत्तर आज भी इनके आश्रम मे वर्त्तमान हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा मे भी इनके अधिकांश ग्रंथ सुरक्षित हैं। लक्ष्मीसखी ने एक नये पंथ 'सखी-सम्प्रदाय' को अपनी रचनाओ द्वारा विशेष बल दिया। इस सम्प्रदाय के प्रमुख उन्नायक के रूप मे श्रीकामतासखी आज भी छपरा में वर्त्तमान हैं। इसी प्रकार, खड़ी-

बोली के प्रमुख उन्नायक अयोध्याप्रसाद खत्री के मतानुसार, सोहनलाल हिन्दी की 'मुंशी-शैली' के जनक थे।

७. इस काल की शोभा-वृद्धि मे तीन महिलाओ का भी सक्रिय सहयोग है। उनके नाम हैं—(क) सुवासिनदाई, (ख) अम्बालिका देवी तथा (ग) जनेश्वरी बहुआसिन। इसमें केवल अंतिम के ही कुछ ललित पद उपलब्ध हो सके हैं।

८. जहाँतक आश्रयदाताओं का प्रश्न है, इस काल मे डुमरॉव, सूर्यपुरा, जगदीशपुर, टेकारी, रामगढ़, नरहन, श्रीनगर, मकौलिया, सीतामढ़ी, दरभंगा, बनैली, बेतिया, हथुआ, माँझा, रामनगर आदि रियासतों के राजा एवं जमीदारो ने कवियो एवं कलावंतों को आश्रय प्रदानकर अपनी साहित्यिक अभिरुचि का प्रशंसनीय परिचय दिया। उक्त रियासतों मे आज भी योजनाबद्ध रूप में यदि साहित्यानुसंधान कराया जाय, तो निश्चय ही और भी अनेक साहित्यिक-रत्न प्रकाश में आयेंगे।

परिशिष्ट १ के ६८ साहित्यकारों की रचनाओ में अधिकांश की काव्य रचनाएँ मैथिली मे मिली हैं। अत., यह सहज ही अनुमेय है कि वे मिथिला या उसके आसपास के निवासी रहे होंगे। इन मैथिली कवियों की रचनाएँ मुख्यत: भक्ति-रस की हैं। राधा-कृष्ण के प्रसंग में, अनेक स्थलों पर शृंगार-रस भी आ गया है। इस परिशिष्ट मे आये ब्रजभाषा के कवियों के नाम ये हैं—आद्याशरण, जानकीशरण, धनुषधारी सिंह, मंगलाप्रसाद सिंह, रघुवीरनारायण सिंह तथा वृन्दावनविहारीशरण सिंह। इनमें दो-एक को छोड़कर सभी की गणना ब्रजभाषा के साधारणतया अच्छे कवियों मे की जा सकती है। ये सभी कवि पटेढ़ी (सारन) के निवासी प्रसिद्ध व्यक्ति श्रीनगनारायण सिंह के समकालीन और संभवतः सारन अथवा उसके आसपास के निवासी थे। इनकी रचनाएँ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में संगृहीत हस्तलिखित पोथी 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' से प्राप्त हुई हैं। इस परिशिष्ट में, एक अवधी और एक खड़ीबोली के भी कवि हैं। अवधी-कवि 'अग्रदास' नाम के कई कवि हिन्दी में हो गये हैं। अतः, इनके विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना अभी संभव नही। यही बात खड़ीबोली के कवि 'यदुवरदास' के सम्बन्ध में भी है।

परिशिष्ट २ के १४ अन्यप्रान्तीय साहित्यकारो में कुल ९ की रचनाओं के उदाहरण उपलब्ध हैं। इनमे दो—दामोदरशास्त्री सप्रे और बिहारीलाल चौबे—को छोड़कर शेष सबकी काव्य-रचनाओं के ही उदाहरण मिले हैं। उक्त लेखकद्वय ने खड़ीबोली में केवल गद्य-रचना की थी। अत:, इनकी गद्य-रचना के ही उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इस परिशिष्ट के ब्रजभाषा-कवियों में कुछ उल्लेखनीय नाम ये हैं—बिहारीलाल चौबे, मारकण्डेयलाल, मुरलीमनोहर तथा सुमेरसिंह साहबजादे। अवधी और खड़ीबोली के केवल एक-एक कवि ही इस परिशिष्ट मे हैं। उन कवियों के नाम हैं—रामशरण तथा रामानन्द। इस परिशिष्ट के कवियो ने विशेषतः राधाकृष्ण को आलबन बनाकर शृंगार-रस की रचनाएँ की हैं। इनमें वीर-रस के कवि के रूप मे एकमात्र मारकण्डेय लाल की ही गणना की जा सकती है। इनमें भक्ति अथवा शान्त-रस का कोई भी कवि उल्लेख्य नही दीखता।

इन अन्यप्रान्तीय साहित्यकारों में सबसे अधिक संख्या अनुवादकों की ही दीखती है। आवश्यक विवरणों के साथ कुछ उल्लेख्य नाम और रचनाएँ इस प्रकार हैं—

(क) दामोदरशास्त्री सप्रे — 'राजतरंगिणी' (कल्हण) का अनुवाद

(ख) बालरामदास — पातंजल दर्शन-प्रकाश (पातंजल योग-दर्शन का अनुवाद)

(ग) बिहारीलाल चौबे — (१) लैम्ब्स-टेल्स (शेक्सपियर के नाटकों की कहानियों का अनुवाद)
(२) दशकुमारचरित (दण्डी) का अनुवाद
(३) सीता (बँगला) का अनुवाद

(घ) भूदेव मुखोपाध्याय — बँगला की अनेक पुस्तकों के अनुवाद

(ङ) सुमेरसिंह साहबजादे — (१) विजयनामा (गुरुगोविन्द सिंह-कृत 'जफरनामा' का अनुवाद)
(२) अविचल नगर-माहात्म्य (ब्रह्मपुराण में वर्णित 'पुण्योदक' तीर्थस्थल की कथा का दोहा-चौपाई में अनुवाद)

शेष उल्लेख्य नाम विषयानुसार ये हैं—

नाटक—

(क) दामोदरशास्त्री सप्रे — बालखेल या ध्रुवचरित्र

(ख) शीतलाप्रसाद त्रिपाठी— जानकीमंगल-नाटक

काव्यशास्त्र—

(क) बिहारीलाल चौबे — बिहारी-तुलसी-भूषण (अलंकार)

(ख) सुमेरसिंह साहबजादे — श्रवणाभरण या सुमेरभूषण (,,)

इतिहास—

(क) दामोदरशास्त्री सप्रे — (१) चित्तौरगढ़ का इतिहास
(२) लखनऊ का इतिहास

(ख) सुमेरसिंह साहबजादे — (१) सिक्ख-सम्प्रदाय की मुख्य-मुख्य घटनाओं का संवत्बद्ध वर्णन

यात्रा—

दामोदरशास्त्री सप्रे — (१) मेरी पूर्व-दिग्यात्रा
(२) मेरी दक्षिण-दिग्यात्रा
(३) मेरी जन्मभूमि-यात्रा

भाषाशास्त्र—

दामोदरशास्त्री सप्रे — आदर्श बाल-व्याकरण

टीका—

सुमेरसिंह साहबजादे — (१) श्रीचक्रधर-चरित्र-चारु चन्द्रिका (जाप की टीका)
(२) जगत जय-जयकारी (,,)
(३) जपजी की टीका

परिशिष्ट २ के साहित्यकारों में तीन-चार बड़े महत्त्व के मिलते हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हुए भूदेव मुखोपाध्याय, जो बंगाली थे। कहते हैं, बिहार की अदालतों में फारसी और कैथी-लिपि के स्थान पर नागरी-लिपि का प्रचलन कराने का श्रेय इन्हे ही है। कुछ विद्वान् तो बिहार में हिन्दी-मात्र के प्रचार का श्रेय इन्हे देते हैं। उनका कहना है कि बिहार में बाबू रामदीनसिंह के सहयोग से इन्होने विविध विषयो की अनेक पाठ्य-पुस्तकें नागराक्षर मे पहले-पहल प्रकाशित कराई थी। ये हिन्दी के अनन्य समर्थक थे और आज से लगभग सौ वर्ष पहले ही इन्होने यह भविष्यवाणी की थी कि हिन्दी एक समय राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होकर ही रहेगी। दूसरे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं राधालाल माथुर। ये उनलोगों में प्रमुख थे, जिन्होंने हिन्दी में पहले-पहल पाठ्य-पुस्तकें तैयार की थी। इनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ 'हिन्दी-शब्दकोश' का निर्माण, जिसे इन्होंने प्रसिद्ध कोशकार फैलन साहब के आदेश पर तैयार किया था। इन्होंने विभिन्न बिहारी लोकभाषाओं के गीतो, कथाओं, लोकोक्तियों आदि का भी एक बृहद् संकलन तैयार किया था। पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी इनमें तीसरे उल्लेख्य व्यक्ति हुए। इन्होंने ही उस प्रसिद्ध नाटक 'जानकी-मंगल' की रचना की थी, जिसे हिन्दी का सबसे पहला अभिनीत नाटक माना जाता है। कहते हैं, इनके समान कोई भी दूसरा वैयाकरण इनका समकालीन नहीं हुआ। कदाचित् इसी कारण महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह इनसे हिन्दी-भाषा का एक बृहद् व्याकरण लिखवा रहे थे, जो इनके निधन के कारण पूरा न हो सका। अन्त में, सुमेरसिंह साहबजादे का नाम आता है, जिनकी गणना बिहार के तत्कालीन सुप्रसिद्ध कवियों में होती है। इन्होंने सन् १८९७ ई० मे, पटना मे एक कवि-समाज की स्थापना की थी, जिसकी ओर से बाबू व्रजनन्दन सहाय व्रजवल्लभ' के सम्पादकत्व में 'समस्यापूर्त्ति' नामक एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी।

उपसंहार

उन्नीसवी शती पूर्वार्द्ध के केवल उन्ही साहित्यकारों के विवरण ऊपर दिये गये हैं, जिनकी रचनाओं के उदाहरण अथवा पुस्तकों के नाम उपलब्ध हैं। जिनकी रचनाओं के न तो उदाहरण ही प्राप्त हुए, न कृतियों के नामोल्लेख ही, उनके सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन है। भविष्य में प्राचीन साहित्यानुसंधान के परिणामस्वरूप यदि कुछ सामग्री सामने आयगी, तभी उनके सम्बन्ध में कुछ कहना न्याय-संगत होगा।

जहाँतक हो सका है, साहित्यकारों के सम्बन्ध में जो बातें प्रामाणिक दीख पड़ी, उन्ही का उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। प्रामाणिकता के लिए स्वभावतः हमें भिन्न-भिन्न सूत्रों पर निर्भर रहना पड़ा है। अत., यदि किसी परिचय में कही कुछ अप्रामाणिक सामग्री का समावेश भी हो गया हो, तो कुछ आश्चर्य नही। पुस्तक के छप जाने पर एक ऐसी भूल हमारी दृष्टि में आई है, जिसका उल्लेख यहाँ कर देना अप्रासंगिक न होगा। बाबू रिपुभंजन सिंह[1] के परिचय में कहा गया है कि सन् सत्तावन

[1]. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १६१ से ६३।

की क्रांति में, इन्होंने अँगरेजों का साथ दिया था। किन्तु, ऐतिहासिक तथ्य तो यह है कि ये उक्त क्रांति के प्रमुख विद्रोही सरदारों में एक थे।[1] इसके अतिरिक्त पृ० ६० पर भगवानप्रसाद के परिचय में उनके निधन का काल सन् १६१२ ई० के बदले सन् १६३२ ई० होना चाहिए। सम्भव है, अन्य परिचयों में भी कुछ ऐसी अप्रामाणिक सामग्री आ गई हो। आशा है, सुबुद्ध पाठक उन्हें यथायोग्य सुधारकर पढ़ेंगे।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
विजयादशमी, विक्रमाब्द २०२०

बजरंग वर्मा

१.—देखिए, 'Biography of Kunwar Singh and Amar Singh' (Dr. K.K. Dutta), P. 94, 114, Appendix (III) आदि तथा 'Eighteen Fifty-Seven' (Dr. Surendranath Sen), P. 259. द्वितीय पुस्तक की निम्नांकित पंक्तियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—"Among the Principal Lieutenants of Kunwar Singh were his brother Amar Singh, his nephew Ritbhanjan Singh (Ripubhanjan Singh), his Tahsildar Harkishan Singh and his friend Nishan Singh, then a man of sixty."

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

परिशिष्ट—१

परिशिष्ट—२

परिशिष्ट—३

परिशिष्ट—४

परिशिष्ट—५

परिशिष्ट—६

हिन्दी-साहित्य और बिहार

प्रथम अध्याय

[वे साहित्यकार, जिनका जन्म-काल ज्ञात है ।]

अमृतनाथ

आप सुखीसेमरा (रामगढ़वा, चम्पारन) के निवासी थे।[१] आपके वंशज श्रीचुल्हाई झा के मतानुसार आपका जन्म सन् १८०१ ई० (सं० १८५८ वि०) में हुआ था। उन्ही के कथनानुसार आपकी मृत्यु सन् १८८६ ई० (सं० १९४३ वि०) मे हुई।

आपका सम्बन्ध बेतिया-राज (चम्पारन) के दरबार से था। एक बार स्व० श्रीवैद्यनाथ मिश्र के पितामह श्रीहरंगी मिश्र का वंश-परिचय लिखकर आपने बेतिया के तत्कालीन महाराज को प्रसन्न किया था, जिसके पुरस्कार-स्वरूप श्रीहरंगी मिश्र ने अपनी ओर से आपको पाँच बीघे जमीन दी थी, जो आज भी आपके वंशजो के अधिकार में सुरक्षित है।

साहित्य के अतिरिक्त सगीत के प्रति भी आपका विशेष अनुराग था। आपकी बारह रचनाएँ हस्तलिखित रूप मे उपलब्ध हुई हैं। आपकी सैकड़ों रचनाएँ आपके गाँव के लोगो में प्रचलित हैं। आपकी अधिकाश रचनाएँ शिवभक्ति-सम्बन्धिनी हैं।

उदाहरण

महादेव त्रिभुवन के ठाकुर काहे कहत भिखारी।
परम दयाल दया संजन पर शिव सम को उपकारी।
गरल ज्वाल निज कंठहि राखत त्रिभुवन लेत उबारी।
जाको नाम लेत भवसागर पार करत अघ भारी।
ताको कहत बाउर बरजोरी सो तुम परम गँवारी।
ध्यान लगाय जोगी सब हारे कहत वेद सब हारी।
'अमृतनाथ' मिले नगपुर से प्रकट मिले त्रिपुरारी।
महादेव त्रिभुवन के ठाकुर काहे कहत भिखारी।[२]

*

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (श्रीरमेशचन्द्र झा, प्रथम सं०, सं० २०१३ वि०), पृ० २४।
२. वही, पृ० २५।

सुवासिनदाई

आपका जन्म सन् १८०१ ई० (सं० १८५८ वि०) मे पदुमकेर (चम्पारन) में हुआ था।[1] आप सुखीसेमरा (चम्पारन) मे व्याही गई थी। सुखीसेमरा के प्रसिद्ध कवि 'अमृतनाथ' के पदों का जो प्रचार मिथिला मे हुआ, उसका सम्पूर्ण श्रेय आपको ही है। आप सन् १८८६ ई० (सं० १९४३ वि०) में परलोकगामिनी हुई। आपने स्वयं भी हिन्दी में अनेक पदों की रचना की थी, किन्तु वे उदाहरणार्थ उपलब्ध नही हुए।

हितनारायण सिंह

आप पटना-जिले के 'पुनपुन'-नदी-तटस्थ तारणपुर नामक ग्राम के निवासी नरवरिया क्षत्रिय थे। आपका जन्म सं० १८६० वि० (सन् १८०३ ई०) में हुआ था।[2] आपके पिता का नाम बाबू तालेवर सिंह था। आपके तीन पुत्र हुए—बाबू गदाधर सिंह, बा० ठाकुरदयाल सिंह और बा० रामचरण सिंह।

आप एक अच्छे समाज-सुधारक थे। आयुर्वेद में आपकी अभिरुचि विशेष रूप से थी। कहते हैं, आपने आयुर्वेद-सम्बन्धी एक पुस्तक की रचना भी सामान्य जनता के लाभ के लिए की थी, जो अब उपलब्ध नही होती।[3]

हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और फारसी भाषाओं पर भी आपका अच्छा अधिकार था। अँगरेजी का भी आपको साधारण ज्ञान था। हिन्दी में आपकी कुछ लोकोपदेशपूर्ण काव्य-रचनाएँ भी हैं, किन्तु कहा जाता है कि वे आपकी बाल्यावस्था की कृतियाँ हैं।

आप सन् १८६६ ई० (सं० १९२३ वि०) में परलोक सिधारे।

उदाहरण

(१)

क्षत्री कुल में जनम लै, कियो नहीं उपकार।
मात-पिता-कुल को अहै, तात तुम्है धिक्कार॥
लाज न लागत कहन मैं, क्षत्री शब्द बिचार।
नाम अर्थ को पाइ कै, करु जग में उपकार॥
ना तो त्रिय कहिबो करो, ताते भली सहाय।
अब क्षत्रिय के कहन में, गइ मरजाद बिलाय॥

---

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० २७।
२. 'विहार-दर्पण' (रामदीन सिंह, द्वितीय सं०, सन् १८८३ ई०), पृ० २००।
३. वही।

क्षत्रिराजकुल जो अहै, सोचो मन ठहराय।
गो-हत्या को देखि के, क्यो न तरस उर आय॥
बनी यहाँ को वस्तु जो, ताकर करु सनमान।
अपर देश के बस्तु ते, होत यहाँ अति हान॥[1]

(२)

दारू सम या देस में, ताड़ी जान सुजान।
नसा दोऊ मे तुल्य है, कहत सकल मतिमान॥
घर जोरू के वस्त्र को, बदले मे धरि देत।
पी करके अनुराग-बस, गाली सबको देत॥
बमन करत जहँ-तहँ रहत, बकत भूत अस भाइ।
याहू पर छोड़त नहीं, तो भी श्रेष्ठ कहाइ॥
आप गये कर सोच नहि, संग और को लेत।
जो मन में आवत रहे, बकत कछुक नहिं चेत॥
या ते मैं बर्जत अहो, सुनो सकल दै कान।
प्यारी ताड़ी त्यागि के, राखो घर धनवान॥[2]

❋

कृष्णदत्त पाण्डेय

आपका जन्म शाहाबाद-जिले के भोजपुर ग्राम में, सन् १८०५ ई० (सं० १८६२ वि०) में, हुआ था।[3] आपका मृत्यु-काल सन् १८५६ ई० (सं० १९१६ वि०) बतलाया जाता है। आप एक प्रसिद्ध शिवभक्त कहे गये हैं। 'कृष्णपद्यावली' और 'भारत का गदर' नामक दो पुस्तकों की रचना आपने की थी, जो अग्निकाड मे जलकर नष्ट हो गई। आपका एक कवित्त भी 'मिश्रबन्धु-विनोद' में है, पर वह बिलकुल बेतुका है।

उदाहरण

लंबोदर की मातु के पति जो भंजनहार,
कर जोरे तेहि विनय करु जिनने मारा मार।[4]

---

१. 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० २००।
२. वही।
३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (मिश्रबन्धु, तृतीय भाग, द्वितीय स०, स० १९८५ वि०), पृ० १०६७।
४. वही। 'जो' के स्थान पर 'अब' होता, तो सार्थक रहता। किन्तु, वह दूसरे चरण के 'तेहि' के मेल में ठीक ही है।

(२)

रूप न रेख न भेख कोई नहि जन्म न कर्म कहे श्रुति चारी।
सोई कृपाल कृपा करिकै दुखिया अवली बहुतेक उबारी॥
ऐसो गरीब-निवाज तुहों रघुनाथ कहौ मुख त्राहि पुकारी।
लाज रखो सब सोक हरो 'जसुदानँद' लाल गुपाल हमारी॥[1]

(३)

चन्द्र ललाट भभूति लसै जिहि तेज की एक कला न विभाकर।
हाथ त्रिसूल गले मुँडमाल उढे मृगछाल चढै बरदा बर॥
कोन कहै तुमरी छबि को अध-अग सिवा अरु गंग जटा पर।
नाथ निहाल करो 'जसुदानँद' दीनदयाल कृपाल कृपाकर॥[2]

※

तपस्वीराम

आप 'तपसीराम' के नाम से प्रसिद्ध थे।

आप सारन-जिले क मुबारकपुर[3] नामक ग्राम के निवासी थे।[4] आपका जन्म सन् १८१५ ई० (सं० १८७२ वि०) मे हुआ था। आपके पिता का नाम था मुन्शी केवल-कृष्णजी। वे आलमगंज (इलाहाबाद) की नील-कोठी मे मीर मुन्शी थे। आप अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। आपके बड़े भाई तुलसीरामजी एक प्रसिद्ध सत थे। छोटे भाई का नाम था बख्शीरामजी। आपकी दो शादियाँ हुई थी, जिनसे आपके तीन पुत्र और दो कन्याएँ हुई। स्वनामधन्य भगवद्भक्त महात्मा श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला' जी आपके ही द्वितीय पुत्र थे। आपके प्रथम पुत्र का नाम था लालसाप्रसाद और तृतीय पुत्र का सीतारामचन्द्रप्रसाद।

---

१. बाबू शिवनन्दन सहाय (वही) से प्राप्त।

२. वही।

३ यह ग्राम छपरा नगर के उत्तर-पूर्व सात मील पर 'गोआ' परगने में स्थित है। प्राचीन काल में यहाँ मुबारकशाह नाम के एक प्रसिद्ध पीर हो गये है। उनका समाधि-स्थल माही-नदी के तट पर आम्रकानन में आज भी वर्त्तमान है। इस समाधि की आज भी बड़ी प्रतिष्ठा है। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, सभी अपनी मनस्कामना सिद्ध होने पर उसपर शीरनी चढाते हैं। इस ग्राम में श्रीरूपकलाजी के अतिरिक्त और भी कई हरिभक्त हो गये हैं, जैसे प० प्रह्लाददत्तजी, शिवचरणजी, अवधविहारीशरणजी आदि।

४ 'श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी की जीवनी' (शिवनन्दन सहाय द्वितीय स०, स० १९६७ वि०), पृ० ५-१०।

आप स्वयं भी एक धर्मात्मा सद्गृहस्थ रामोपासक संत थे। साधु-संतों की सेवा के लिए आपने गंगासागर और मथुरा के बीच अनेकानेक स्थानों का भ्रमण किया था। महाराज श्रीसीतारामजी 'युगलप्रिया' (चिरान, छपरा), श्रीरामदासजी (बदनपुर, इलाहाबाद) तथा श्रीरामचरणदासजी (प्रमोदवन-कुटिया, अयोध्या) के आप बड़े कृपा-पात्र थे। कहते हैं, एक दिन स्वप्न में श्रीसीताजी ने आपको दर्शन देने की कृपा की थी और उनके चरण-कमल के अँगूठे को बालक के समान चाट-चाटकर आपने अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया था।

आप बड़े विद्यानुरागी और फारसी तथा अन्य कई भाषाओं के पंडित थे। मिश्रबन्धुओं ने आपका रचना-काल सं० १९२५ वि० (सन् १८६८ ई०) बतलाया है।[१]

आप हिन्दी के एक अच्छे कवि थे। आपकी कविताएँ स्वभावतः भक्तिरसात्मक होती थी। आपने हिन्दी में कई पुस्तकों की रचना की थी, जिनमें केवल पाँच के नाम प्राप्य हैं—(१) श्रीभागवतसूची, (२) श्रीअयोध्या-माहात्म्य, (३) कथामाला, (४) प्रेम-गंग-तरंग[२] और (५) श्रीसीताराम-चरण-चिह्न।[३]

आपका निधन ७० वर्ष की आयु में, सन् १८८५ ई० (सं० १९४२ वि०) की वैशाख-कृष्ण नवमी (बुधवार) को, छपरा नगर के समीप गंगा-सरयू-संगम पर हुआ था।

---

१. 'मिश्रबन्धु-विनोद,' (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, स० १९८५ वि०), क्रम-सं० २१५०, पृ० ११६२।

२. इसपर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और डॉ० ग्रियर्सन की सम्मतियाँ क्रमशः इस प्रकार थीं—

(क) "ग्रंथ गद्य-पद्य (प्राञ्जल भाषा) में लिखा गया है। भक्तों का सर्वस्व ही है। ग्रन्थकार की अनन्य भक्ति ग्रन्थ से दृष्टिगोचर होती है।"—देखिए, 'श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी की जीवनी' (वही), पृ० १२।

(ख) "Owing to the number of books sent to me for criticism, I have been obliged to make a rule to refuse to give my opinion on any. I however make an exception in favour of 'Premgang-Tarang' of your (Rupkala-Jee's) father (M. Tapasvi Ram). It is a book I have read with pleasure both on an account of simple and graceful style of its prose and on account of the many excellent poems, scattered through it proving a pleasing anthology of the story of Ram."—वही।

३. मिश्रबन्धुओं ने आपके लिखे दो फारसी ग्रंथों की भी चर्चा की है—(१) रूमजे मेहोवफा और (२) वाकये देहली। —देखिए 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही), पृ० ११६२। आपने भक्तमाल की एक उर्दू-टीका भी प्रकाशित कराई थी।

उदाहरण

(१)

जय जयति जय सीतारमन, जय जय रमापति सुखसदन।
जय राम संसृतिदुखसमन, भवभयहरन असरनसरन ॥
जय अवधपति रघुकुलमनी, निजदासबस त्रिभुवनधनी।
आनन्दकन्द कृपायतन, भवभयहरन असरनसरन ॥
अव्यक्तमेकमगोचरम्, विज्ञानघन धरनीधरम्।
मण्डनमही निश्चरदमन, भवभयहरन असरनसरन ॥
लावण्यनिधि राजिवनयन, कलिमलदहन मंगलभवन।
'तपसी' सुखद करुना-अयन, भवभयहरन असरनसरन ॥[1]

(२)

ध्यावहि मुनिन्द्र सीयपदकंजचिह्नराज,
सन्तनसहायक सुमंगल सँदोहही।
ऊर्द्धरेखा, स्वस्तिक औ अष्टकोन, लक्ष्मी, हल,
मूसल औ सेस, सर, जनजिय जोहही ॥
अम्बर, कमल, रथ, बज्र, जव, कल्पतरु,
अंकुस, ध्वजा, मुकुट मुनिमन मोहही।
चक्रजू, सिहासन औ यमदंड, चामर,
त्यो छत्र, नर, जयमाल वामपद सोहही ॥
सरजू दक्षिनपद, मही, कलस,
औ पताक, जम्बुफल, अर्द्धचन्द्र राजही।
सख, षटकोन, तीनकोन, गदा, जव, विन्दु,
शक्ति, साधुकुण्ड, त्रिबली, सुध्यान काजही ॥
मीन, पूर्नचन्द्र, बीन, बसी औ धनुष, तून,
हंस, चन्द्रिका विचित्र चौबिस बिराजही ॥
एते चिह्न जनककिशोरी-पद-पकज के,
'तपसी' मंगल-मूल सब सुख साजही ॥[2]

❀

१. 'श्री सीतारामशरण भगवानप्रसादजी की जीवनी' (वही), पृ० १३।
२. वही, पृ० ११-१२।

हेमलता[१]

आपकी रचनाओं में आपका उपनाम 'युगलानन्यशरण' मिलता है।

आपका जन्म पटना-जिले के इस्लामपुर नामक ग्राम के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-परिवार में, सं० १८७५ वि० (सन् १८१८ ई०) की कार्त्तिक शुक्ला सप्तमी को, हुआ था।[२] बाल्यावस्था में ही माता का देहान्त हो जाने के कारण आपको केवल अपने पिता का ही स्नेह मिला। आपके दो भाई और दो बहनें थीं। आरम्भ मे आपने कृष्णजी नामक एक विद्वान् से विभिन्न शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। इसी समय आपने संगीत और मल्ल-विद्याओं का भी अभ्यास किया। लगभग पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे आपने संत युगलप्रियाजी[३] का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् आपकी प्रवृत्ति तीर्थाटन की ओर हुई। सर्वप्रथम आप काशी गये। वहाँ एक वर्ष रहकर आप चित्रकूट चले गये। चित्रकूट में आपने बिलकुल विरक्त का वेश धारण कर लिया। इसी वेश में आप फिर अयोध्या आये और 'लक्ष्मण-किला' में रहने लगे। वहाँ पं० उमापतिजी तथा परमहंस शीलमणिजी से आपकी बड़ी घनिष्ठता हो गई। इसी बीच आप अयोध्या से चौबीस मील दूर घृताची-कुंड पर लगभग चौदह महीने के लिए मौन-व्रत की साधना करते रहे। वहाँ से आने पर आपकी अच्छी ख्याति हो गई। उसी समय रसिकों के विशेष आग्रह पर आपने श्रीमधुराचार्य-विरचित 'भगवद्गुण-दर्पण' की कथा कही थी। अयोध्या से जब पुनः कुछ दिनों के लिए आप चित्रकूट गये, तब जानकीघाट पर ठहरे। आपकी ख्याति सुनकर रीवाँ के महाराज विश्वनाथ सिंह[४] आपके दर्शन के लिए गये थे। कहते हैं, महाराज ने आपको अपने यहाँ आमंत्रित भी किया था, किन्तु कुछ कारणवश आप न जा सके। इस बार चित्रकूट से अयोध्या वापस आकर आप निर्मलकुण्डी पर एक कुटी बनाकर

---

१. आपका प्रस्तुत परिचय डॉ० भगवतीप्रसादसिंह-कृत 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' नामक ग्रंथ (प्रथम सं०, सं० २०१४ वि०) में दिये हुए परिचय के आधार पर तैयार किया गया है।—देखिए, वही, पृ० ४६५-६६।

२. वही, पृ० ४६५।

३. इनकी प्रशंसा आपने 'भक्तमाली' नामक एक संत से सुनी थी। इन्होंने ही आपका नाम 'युगलानन्यशरण' रखा था।

४. महाराज विश्वनाथ सिंह के व्रजभाषा में रचे 'आनन्द-रघुनन्दन' नाटक को भारतेन्दुजी ने हिन्दी का सबसे पहला नाटक माना है और आचार्य शुक्लजी ने भी उनको हिन्दी के सर्वप्रथम नाटककार के रूप में 'चिरस्मरणीय' कहा है। उनका जन्म सं० १८४६ वि० (सन् १७८९ ई०) में, सिंहासनारोहण सं० १८९१ वि० (सन् १८३४ ई०) में और साकेतवास सं० १९११ वि० (सन् १८५४ ई०) में हुआ था। उनके पुत्र महाराज रघुराजसिंह का जन्म सं० १८८० वि० (सन् १८२३ ई०) में, राज्यारोहण सं० १९११ वि० (सन् १८५४ ई०) में तथा साकेतवास सं० १९३६ वि० (सन् १८७९ ई०) में हुआ था। ये भी प्रसिद्ध साहित्यसेवी थे।—देखिए 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, सं० १९८५ वि०), पृ० १०४५ और 'कविताकौमुदी' (पं० रामनरेश त्रिपाठी, प्रथम भाग, सप्तम सं०, सन् १९४६ ई०), पृ० ४७१।

रहने लगे। सन् १८५७ ई० की क्रान्ति मे आप उस स्थान को छोड़कर फिर लक्ष्मणकिला[1] में ही चले जाने को बाध्य हुए और अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक वहीं रहे।

आप एक प्रसिद्ध राम-भक्त थे। राम-भक्ति-शाखा में जो रसिक-सम्प्रदाय चला, उसके आप एक प्रसिद्ध सन्त हुए। आपके ही प्रभाव से रसिक-सम्प्रदाय का बहुत व्यापक प्रचार हुआ। एक संत के रूप में आपको अपने जीवन-काल में ही पर्याप्त प्रसिद्धि मिल चुकी थी। कहते हैं, मौलाना रूम तथा अन्य सूफी संतो के कलाम पढ़ने और कुरान के बहुत-से गूढ स्थलों को समझने के लिए मौलवी लोग भी दूर-दूर से आपके पास आया करते थे। आप रहते भी थे सूफियाना ढंग से। लम्बा चमकीला चोगा, ऊपर उठी हुई चमकीली टोपी और हाथ में एक लम्बी माला—ये चीजे बराबर आपके साथ रहा करती थी।

आप संस्कृत और हिन्दी के प्रकांड विद्वान् तो थे ही, अरबी और फारसी में भी आपकी गहरी पैठ थी। आपकी काव्य-रचना भक्तिभाव-पूर्ण होती थी। ग्रंथो की संख्या की दृष्टि से सम्प्रदाय के पूरे इतिहास मे इतनी अधिक पुस्तकाकार रचना और किसी की नही मिलती। आपके रचे हुए कुल चौरासी ग्रंथ बतलाये जाते हैं, जिनमें निम्नलिखित पचहत्तर आज भी आपके आश्रम में वर्त्तमान हैं—(१) सीतारामस्नेहसागर, (२) रघुवर-गुण-दर्पण, (३) मधुर मंजुमाला, (४) सीताराम-नाम-प्रताप-प्रकाश,[2] (५) प्रेम-परत्वप्रभा दोहावली, (६) विनय-विहार, (७) प्रेम-प्रकाश, (८) नाम-प्रेम-प्रवर्द्धिनी, (९) सत्संग-सतसई, (१०) भक्त-नामावली, (११) प्रेम-उमंग, (१२) सुमति-प्रकाशिका, (१३) हृदय-हुलासिनी, (१४) अभ्यास-प्रकाश, (१५) उपदेशनीति-शतक, (१६) उज्ज्वल-उत्कंठा-विलास, (१७) मंजुमोद चौतीसी, (१८) वर्णविहार, (१९) मनबोधशतक, (२०) विरतिशतक, (२१) वर्णबोध, (२२) बीसायंत्र, (२३) पंचदशी-यंत्र, (२४) चौतीसा-यंत्र, (२५) हर्फ-प्रकाश, (२६) अनन्य प्रमोद(१), (२७) नवल-नाम-चिंतामणि, (२८) संत-वचन-विलासिका, (२९) वर्ण उमंग, (३०) रूपरहस्य-पदावली, (३१) रूपरहस्यानुभव, (३२) संतसुख-प्रकाशिका, (३३) अवधवासी-परत्व, (३४) रामनाम-परत्व-पदावली, (३५) सीताराम-उत्सव-प्रकाशिका, (३६) अवध-विहार, (३७) सुखसीमा दोहावली, (३८) उज्ज्वल उपदेश-यंत्रिका, (३९) नाममय-एकाक्षरकोष, (४०) योगसिंधु-तरंग, (४१) युगल-वर्ण-विलास, (४२) प्रबोधदीपिका दोहावली, (४३) दिव्यदृष्टांत-प्रकाशिका, (४४) प्रमोददायिका दोहावली, (४५) वर्णविहारमोद चौतीसी, (४६) उदरचरित्रप्रश्नोत्तरी,

---

१. रीवा-नरेश महाराज रघुराजसिंह आपके कृपापात्र थे। इनके दीवान ने आपके निवास-स्थान (लक्ष्मणकिला, अयोध्या) पर जो विशाल मंदिर बनवाया था, वह आज भी वर्त्तमान है।

२. रामनाम की महिमा पर यह सर्वाधिक प्रामाणिक एवं लोकप्रिय ग्रंथ माना गया है। इसका भाषा-टीका-सहित पाँचवाँ संस्करण सन् १९२५ ई० में लखनऊ के स्टीम प्रेस से प्रकाशित हुआ था। —देखिए, 'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना' (डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', प्रथम सं०, सन् १९५७ ई०), पृ० १८२-८३।

(४७) अष्टादश-रहस्य, (४८) जानकीस्नेह-हुलासशतक, (४९) नामपरत्व-पंचाशिका, (५०) वर्णविहार दोहा, (५१) संतविनय-शतक, (५२) विरक्ति-शतक, (५३) विशदवस्तु-बोधावली, (५४) तत्त्वउपदेशत्रय, (५५) बारहराशि सातवार, (५६) मणि-माल, (५७) अर्थपंचक, (५८) मन-नसीहत, (५९) फारसीहुरूफतहज्जीवार झूलना, (६०) शिवा-शिव-अगस्त्य-सुतीक्ष्ण-संवाद, (६१) वैष्णवोपयोगिनिर्णय, (६२) पंचायुध-स्तोत्र, (६३) झूलन-फारसी-हुरूफ, (६४) झूलन-हिन्दी-वर्ण, (६५) नीदबतीसी, (६६) पन्द्रा-यंत्र, (६७) अष्टयाम ककहरा, (६८) अनन्य-प्रमोद[२], (६९) प्रीति-पंचासिका, (७०) नाम-विनोद-बसावन-बरवै, (७१) राम-नवरत्न, (७२) गुरु-महिमा, (७३) संत-वचनावली, (७४) पारस-भाग और (७५) विनोद-विलास।[१]

आप सं० १९३३ वि० (सन् १८७६ ई०) की मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी को साकेत-वासी हुए।

उदाहरण

(१)

रे मन निशिदिन नाम मुद-धाम जपन उत्कंठ।
करत रहो पुलकित वपुष निदरि आस-वैकुंठ॥
कौन काम की मुक्ति से जहँ न रटन सियराम।
नाम-राग विन निदरिहौ सोउ दिन अति अभिराम॥
जगमग पग-पंकज परम प्रेम-प्रवाह निहारि।
ह्वै रहिहै चेरी सुमति सुरति सोहाय विचारि॥
ललित ललन लोने युगल पद-पंकज प्रिय अंक।
अति अनूप नव रंग से रँगिहौं विगत कलंक॥
अरुन हरन-मन नख-प्रभा राकापति शत-तूल।
मृदुल सचिक्कन चाहि कब ह्वै जैहों भवभूल॥
अमल ललित अँगुरीन-छबि मधुर आभरन-संग।
कब जोहत युग जाइहै निमिष समान सरंग॥[२]

---

१. इनमें कई रचनाएँ प्रकाशित भी हो चुकी हैं। प्रकाशित रचनाओं में अधिकांश लखनऊ के स्टीम प्रेस में छपी हैं। कुछ रचनाएँ रामायण प्रेस (अयोध्या) और कुछ चर्च मिशन प्रेस (गोरखपुर) से भी प्रकाशित हुई थीं।

२. 'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना' (वही), पृ० २६०।

(२)

निराकार सब मे बसत, भक्तन हिय साकार।
युगल-अनन्य विचार बिनु, भटकहि अन्ध गँवार॥
निराकार मे सुख नही, केवल व्यापक रूप।
सरस रहस साकार मधि, श्री श्रुति शेष निरूप॥[1]

(३)

रटन-रस-रसिया विरले देखे।
जिनके प्रान-अधार नाम-सुख सार न तजहि निमेखे॥
विमल बरन हिय हरन हार करि परिहरि विषय विशेषे।
अगुन सगुन युग रूप एक जिय लखहि अलेख सुवेखे॥
पगे प्रेम पन प्यार पीन तन अतन हीन बिन रेखे।
युगल-अनन्य-शरन तिनकी सुचि सोहवत चाह परेखे॥[2]

(४)

राम-रस पीवत जौन सुभागी।
तिनके भाग अदाग सराहत सुर मुनीश अनुरागी॥
लाय लाय लय लगन मगन मन अतन तीन तम त्यागी।
होय रहे मदहोश जोश छकि परा प्रीति मति पागी॥
युगल-अनन्य-शरन साँचे सद शौको विमल विरागी।[3]

(५)

कोइ वाम रूप भजि शाक्त हुए कोइ अस्मृति शासन ग्रसे हुए।
कोइ निर्गुण ब्रह्म समझते हैं सुषमाना आसन कसे हुए।
कोइ महाविष्णु को जाप किये उर माल छाप भुज लसे हुए।
जालिम ! हम हाय कहाँ जावै तेरे जुल्फ-जाल में फँसे हुए॥[4]

---

१. 'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना' (वही), २६५।
२. वही, पृ० २७३-७४।
३. वही, पृ० २७४।
४ 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४६६।

(६)

ललन कैसे निबहैगी मोरी-तोरी प्रीति।
जो भाखत हिय बीच प्रानप्रिय तेहि पथ चलत सभीत।
महा मलीन मूल परगट वपु तासन नेह प्रतीत।
पलभर कह्यो न मानत मम मन रचत रीत विपरीत।
'युगल-अनन्य-शरण' तापित मन कीजिय सपदि सुसीत॥'[1]

(७)

होरी के रंग जंग में क्या मौज नई है।
हर चार तरफ बाग बहारों से छई है॥
खेले उमंग संग सजन सोहनी लिये।
हर तान आसमाने तलक होश हई है॥
मोहर मरोरदार मधुमास मई है।
श्री जानकी-जीवन से लगन होरी में लगी है।
सब तौर 'युगल-अनन्य' अली मौज मई है॥[2]

❋

धनारंग दुबे[3]

आप 'घना मलिक' के नाम से भी प्रसिद्ध थे।

आपका जन्म सं० १८७६ वि० (सन् १८१६ ई०) में शाहाबाद जिले के धनगाँई[4] नामक ग्राम में हुआ था।[5] आप गौड़ ब्राह्मण थे। आपका जीवन अत्यन्त

१. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४६६।

२. वही।

३. आपका प्रस्तुत परिचय मुख्य रूप से, श्रीजगदीश शुक्ल (सूर्यपुरा, शाहाबाद) द्वारा लिखित लेख के आधार पर तैयार किया गया है।—देखिए, 'नईधारा' (मासिक, वर्ष १०, अंक ७, अक्तूबर, सन् १९५९ ई०), पृ० ७५।

४. संगीताचार्यों का यह प्रसिद्ध ग्राम भोजपुर की प्राचीन राजधानी डुमराँव से नव कोस दक्षिण में आज भी स्थित है।

५. 'नईधारा' (वही), पृ० ७५। आपने स्वयं ही लिखा है—

'शाहाबाद जिला भलो, पुनि प्रगने दनवार।
धनगाईं थाना नगर, घनारंग आगार॥'

किन्तु, दिनांक १-२-५४ के अपने पत्र में जन्दाहा (मुजफ्फरपुर)-निवासी श्रीध्रुवजी ने आपका निवास-स्थान सासाराम (शाहाबाद) बतलाया है, यद्यपि वे भी यह स्वीकार करते हैं कि आपके वंशज आज धनगाँई में हैं। उनके कथनानुसार आज भी आपके वंशजों के पास आपके द्वारा रचित ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं।—सं०

सरल था। बाहरी ठाटबाट और तड़क-भड़क से बहुत दूर थे। आपकी पगड़ी एक बार बँधती, तो महीनों चलती थी। जूता तो कभी पहनते ही न थे। सवारी पर भी चलने की लत नहीं थी। कोसों पैदल ही चला करते थे।

वास्तव में आप एक पहुँचे हुए कृष्णभक्त थे। अतः आपका मन भगवान् कृष्ण की भक्ति-भावना में ही बराबर डूबा रहता था। संगीत के आप एक अपूर्व ज्ञाता थे।

आपके साथ लगभग पचास अन्य संगीतज्ञ एवं कवि थे, जिन्हें आपने संगीत की शिक्षा दी थी।[1] प्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं कवि प्रकाश मलिक (बच्चू मलिक)[2] आपके ही भ्रातृज थे।

आपका सम्बन्ध मुख्य रूप से 'डुमराँव' (शाहाबाद) के राज-दरबार से था। यों तो सूर्यपुरा (शाहाबाद) के राज-दरबार से भी आपका सम्पर्क बराबर रहा। डुमराँव-नरेश महाराजा सर महेश्वरबख्शसिंह आपका बहुत आदर करते थे। उनके निधन के पश्चात् आप उस दरबार से विदा लेना चाहते थे, किन्तु उनके उत्तराधिकारी महाराजा राधाप्रसाद-सिंह के विशेष अनुरोध पर आपने अपनी वह इच्छा कुछ काल के लिए त्याग दी। महाराज का आदेश-पालन करके कुछ ही दिनों के बाद आप अपने गाँव चले आये और दस वर्षों तक वहीं रहे। इसी अवधि में आपका सम्पर्क सूर्यपुरा-रियासत के तत्कालीन स्वामी दीवान रामकुमारसिंह[3] से हुआ। उनके स्वर्गवासी हो जाने के पश्चात् स्वभावत आपका सम्पर्क उनके पुत्र राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह से हुआ। कहते हैं, वे आपका बड़ा सम्मान करते थे। आपका अन्तिम समय भगवद्भजन एवं सत्संग में बड़े ही आनन्द के साथ व्यतीत हुआ। आप सं० १९४४ वि० (सन् १८८७ ई०) में परलोकगामी हुए। उस समय आपकी आयु अड़सठ वर्ष की थी।

आप निःसन्तान थे। आपके निधन के पश्चात् आपकी धर्मपत्नी श्रीमती राज-कुमारी को डुमराँव-दरबार से आजीवन वृत्ति मिलती रही।[4]

आप एक कुशल कवि भी थे। कहते हैं कि आप अपनी कविताएँ अधिकतर कोयले या कंकड़ से दीवार अथवा जमीन पर ही पहले लिखते और पीछे बँसहा कागज पर उतार लेते थे। इस कार्य में कभी-कभी आपकी सहायता आपके भ्रातृज प्रकाश मलिक भी करते थे। स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त आपकी एक ही ग्रन्थाकार रचना मिलती है—

---

१. उनलोगों में राधावल्लभ जोसी (विप्रवल्लभ), रामचरित्र तिवारी, हुलास कवि, फूलचन्द मलिक, जगदीश्वर प्रसाद, रामलाल उपाध्याय (लाले मलिक) और कान्हजी सहाय प्रमुख थे।

२. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

४. आपके वर्त्तमान वंशधर श्रीसहदेव दुबे, जो सूर्यपुरा के राजासाहब के दरबार में गायक थे, शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ हैं। वे आजकल वहीं राज-हाईस्कूल में संगीताध्यापक हैं। इनके सुपुत्र प्रभाकरजी भी एक अच्छे गायक हैं।—सं०

'कृष्ण-रामायण' ।[१] इस ग्रन्थ की रचना आपने अपने प्रसिद्ध आश्रयदाता महाराजा सर महेश्वरवख्शसिंह के आदेश पर की थी।

उदाहरण

(१)

कंचन की परी कैधौं कुसुम की छरी कैधौं
मोतिन की लरी कैधौं थीर भई दामिनी।
कैधौं करतार सुधा साँचै माँह ढारि काढ्यो
कैधौं प्रगटी है आज शुक्लपक्ष यामिनी।
कैधौं हीरा-खानि कैधौं चन्द्रमा-सरूप कैधौं
संतन के हृदय-पयोनिधि-विश्रामिनी।
जाके रूपरासि में तिलोत्तमा भई है तिल
कृष्ण ढिग राजै 'घनारंग' की सो स्वामिनी।[२]

(२)

चंचल चलाके सब कला के है भरे दोऊ
लाज के पताके खंज मीन के कताके हैं।
घूँघट उठा के भ्रू चढ़ाके ताके जाके ओर
सो गिरे तड़ाके घबड़ा के मुरझा के है।
सब उपमा के कंज मृगा के दबा के साके
ऐसो ना उमा के ना रमा के सारदा के हैं।
दै जब सलाके सुरमा के 'घनारंग' सुख
छाके हैं सुधा नैन बाँके राधिका के है।[३]

---

१. इसका प्रकाशन श्रीबच्चू मलिक (प्रकाश मलिक) ने बहुत पहले करवाया था। इसकी रचना कवि ने ४२ वर्ष की अवस्था में की थी। इसकी रचना गोस्वामी तुलसीदास के अनुकरण पर दोहा-चौपाई में हुई है। कथानक भी 'मानस' से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। थोड़ा परिवर्त्तन यह है कि पार्वतीजी को जब शिवजी रामायण की कथा सुनाने लगते हैं, तब इसके बीच में कृष्ण-कथा भी आ जाती है। देवताओं की प्रार्थना पर जब कृष्णावतार होता है, तब एक दिन यशोदा मैया बालक कृष्ण को रामायण की कथा सुनाने लगती हैं। इसी में वे 'रामचरित-मानस' की सारी कथा सुना जाती हैं। कृष्णजी को सुनाये जाने के कारण ही इसका नाम 'कृष्ण-रामायण' रखा गया। अंत में पार्वतीजी के पूछने पर शिवजी ने सम्पूर्ण कृष्ण-कथा भी सुना दी है। इसमें बालकांड से उत्तर-कांड तक सातो कांड तो हैं ही, अंत में 'व्रजविलास' नामक एक आठवाँ कांड भी जोड़ दिया गया है। इस कांड का अन्तिम भाग संगीत-शास्त्र का मनोहर दर्पण है।—'नईधारा' (वही), पृ० ७४ और ७७।

२. 'नईधारा' (वर्ष १०, अंक ६, दिसम्बर, सन् १९५९ ई०), पृ० ६२।

३. वही, पृ० ६२-६३।

(३)

कलुप-मृग मारिबे को वही गंग धन्वाकार
असी और वरुना घाट बाँध्यौ अचला-सी है।
मूठ मनिकर्णिका अहेरी अचल बिस्वनाथ
चूके ना निसाना यह तारक-मत्र खासी है।
त्रोन सम लोलारक सुकवि कहै 'घनारंग'
जानत जहान यह महिमा सुप्रकासी है।
इहि प्रकार से उदार खेलत सिकार नित्य
आपै अविनासी सिव आनँद-बन कासी है।[1]

(४)

सान्तरस-तखत पै बिचार स्वेत गादी राखि
बुद्धि मसनन्द प्रेम-चादर बिछाये है।
सुकृत-मनोरथ आ बैठेंगे मुसाहिब-बृन्द
संयम और नेम चोबदार ये दिखाये है।
ग्यान-ध्यान चामर लै खवासी मे पुन्य साथ
छमा-सील पंखा मनकिंकर डुलाये है।
चरन तिहारे अंब त्रिभुवन-बादसाह कब
धौ हमारे हिय-महफिर में आये है।[2]

(५)

नचत त्रिभङ्ग ए
व्रजचन्द वंसीवट जमुनतट प्रचुर मनसिज-मान-खंडन,
करन कुण्डल चमक मानो उदित जु ताल पतङ्ग। नचत०-
नख ज्योति मनि इव चरन अम्बुज सदृश नूपुर ताल गति रव,
जघन रम्भा थम्भ उलट्यो कटि निरखि मृगराज भृङ्गी दङ्ग। नचत०-
दामिनि छटा सम पीत पट दुति लचत कटि जव नचत गति वर,
मेखला धुनि करत मानों दुन्दुभी निज ले बजायो बिस्व जीति अनङ्ग। नचत०-
नवजलद सम सर्वाङ्गसुन्दर सिपज माला हृदय ऊपर,
मध्य रोमावलि जमुन मनु नीलगिरि ते धार द्वै ह्वै चली छिति पर गङ्ग। नचत०-
सिर मुकुट रत्नावलि जड़ित धृत कुटिल कच अलि अवलि मानों,
भौंह बाँके दृग रसीले अधर विद्रुम मुरलि धारे उठत तान-तरङ्ग।[3] नचत०-

१. 'नरंधारा' (वही), पृ० ६३।
२. वही।
३. वही, (वर्ष १०, अंक ८, नवम्बर, सन् १६५६ ई०), पृ० ७७-८८।

नगनारायण सिंह[1]

आप सारन-जिले के पटेढ़ी-ग्राम[2] के निवासी एक प्रतिष्ठित कायस्थ जमीन्दार थे।[3] आपका जन्म उसी ग्राम में सं० १८७६ वि० (सन् १८१६ ई०) की ज्येष्ठ-शुक्ला चतुर्थी को हुआ था।

आपके पिता का नाम जूबालालसिंह और पितामह का कर्त्तारामसिंह था। आप अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। आपका विवाह मुजफ्फरपुर के एक कुलीन परिवार में हुआ था, जिससे आपके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं।[4] आपका शरीर गौर वर्ण का, बड़ा हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर रूप बड़ा आकर्षक था। बन्ददार मिर्जई, बँधी पगड़ी, चूनदार धोती और शाल-चादर आपकी पोशाक थी। गर्मियों में केवल मलमल की पोशाक पहनते थे। पूजापाठ के समय केवल पीताम्बर धारण करते थे और गो-पद की तरह मोटी शिखा रखते तथा ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगाते थे। प्रातःकाल से दस बजे तक पूजापाठ करके दो बजे दिन तक कचहरी करते और चार बजे नित्य भोजन से निवृत्त होते थे। आप कभी अकेला नहीं खाते थे, सदा सत्तर-पचहत्तर व्यक्तियों के साथ भोजन करने बैठते थे। भोजनोपरान्त 'नजरबाग' में टहलते और उसी समय दरबार भी होता। फिर, रात में भी सभा में साहित्य-चर्चा काफी देर तक होती रहती और रात का भोजन भी दो बजे तक समाप्त हो पाता था। आपकी बाँह पर यंत्र के रूप में एक बीजक बँधा रहता था, जिसपर सिंह-वाहिनी भगवती दुर्गा की छाप थी। उसकी भी पूजा आप नित्य किया करते थे। आप परम श्रद्धालु शाक्त थे और जगदम्बा की उपासना-आराधना बड़ी भक्ति से करते थे।

आप बड़े शाहखर्च थे। त्योहारों के दिन विशेष उत्सव करते और ब्राह्मणों तथा पंडितों को पर्याप्त दान देते थे। कंगालों को भी कपड़े और अन्न बाँटते थे। आपको गुप्तदान देने का भी अभ्यास था। विवाहादि में मुक्तहस्त हो खर्च करते रहे, पर कायस्थ-महासभा ने जब तिलक-दहेज की प्रथा उठा देने का निर्णय किया, तब आप भी उसके अनुसार काम करने लगे। समाज-सुधार की भावना भी आपमें भरपूर थी। अतिथि-सत्कार, गुणियों और कलावन्तों का सम्मान, दीन-दुखियों की सेवा-सहायता आदि आपके विशेष गुण थे। आप सनातन-धर्म के श्रद्धालु अनुयायी और बड़े शीलवान् रईस थे।

---

१. आपका प्रस्तुत परिचय पं० शान्तिदेव शास्त्री-लिखित जीवनी के आधार पर तैयार किया गया है। —देखिए, 'गंगा' (मासिक, प्रवाह ३, तरंग ५, मई, सन् १९३३ ई०), पृ० ६८५—८९।

२. यह ग्राम बहुत दिनों से धनी-मानी कायस्थों की बस्ती होने के कारण जिले और प्रान्त में आज भी प्रसिद्ध है। कहते हैं, आपके कुल की जमीन्दारी में चार सौ चौरासी गाँव थे और वार्षिक आय लगभग सात लाख की थी।

३. 'गंगा' (वही), पृ० ६८७।

४. आपके एक वंशधर श्रीसुरेश्वरी नारायणसिंह भी कवि थे।

आपको बाग-बगीचे का बड़ा शौक था। आपके बाग में तरह-तरह के फूल-फल थे। बाग में जाने पर आप सभी फलों को लोगों मे बाँट देते थे। पालतू पशु-पक्षियों के पालन-पोषण में आपकी बड़ी ममता थी। हाथियों को प्रतिदिन अपने सामने दाना खिलाते थे। तीतर, बटेर, बुलबुल, मुर्गे, कबूतर, बत्तख आदि आपके चिड़ियाखाने में सदा शोभा पाते थे। कभी-कभी आप इनमें से लड़ाकू चिड़ियों की लड़ाइयाँ देख मनोरंजन किया करते थे। हथियारों के भी आप बड़े शौकीन थे, और खासकर आपको तलवार की बड़ी अच्छी परख थी। आपके निजी पुस्तकालय मे विशेषतः हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह था। उन ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार कराने के लिए आपने कितने ही सुलेखकों को नियुक्त कर रखा था। आपके संग्रह में अनेक उत्तम एवं दुर्लभ ग्रन्थ थे।

अपनी बड़ी जमीन्दारी के प्रबन्ध में आप ऐसे कुशल थे कि कुछ ही दिनों में आपने अपनी रियासत को उन्नत दशा मे पहुँचा दिया। आप बड़े प्रजावत्सल और उदाराशय व्यक्ति थे। अपने असामियों को सन्तान-तुल्य मानते थे। गरीबों से बाकी लगान वसूल करने में आप काफी छूट दिया करते थे।[1] बकाया लगान वसूलने के लिए रियायों पर कभी नालिश नहीं करते थे। किसी प्रजा से न कभी आप दण्ड लेते और न दूध-दही-घी माँगते। सलामी में मिले हुए रुपये को भी आप लगान मे कटवा देते थे। बिना उचित मूल्य दिये कभी किसी असामी की भेंट नहीं स्वीकार करते थे। अपने नौकरों से कभी नाराज होते, तो यही दण्ड देते कि उनसे काम नहीं लेते, पर कभी किसी को कार्यमुक्त नहीं करते थे। आपके मुँह से कभी किसी के प्रति कोई अपशब्द नहीं सुना गया।

आपने काव्यशास्त्र के अतिरिक्त आयुर्वेद, ज्योतिष और संगीत-शास्त्रों का भी गहन अध्ययन किया था। वैद्यक के अनुसार उत्तमोत्तम दवाएँ बनवाकर आप गरीबों को निःशुल्क वितरित किया करते थे। ज्योतिष-सम्बन्धी शास्त्रार्थ में आप पंडितों से भी लोहा लेते थे और उनकी निश्चित की हुई लग्न-वेला में मीन-मेष निकालना आपके बायें हाथ का खेल था।

आरम्भ में आपने अरबी-फारसी की शिक्षा पाई थी। उसके बाद आपने संस्कृत और हिन्दी को भी स्वाध्याय के बल से अधिकृत कर लिया। आप हिन्दी, संस्कृत, फारसी और उर्दू[2] में अच्छी कविता करते थे। आपने हिन्दी में देवी-देवता-सम्बन्धी डेढ़-दो हजार पदों एवं गीतों की रचना की थी। उनमें आपके राग-रागिनियों के विशद

१. एक बार एक जबरदस्त किसान से मुकदमेबाजी में आप कलकत्ता-हाईकोर्ट से जीत गये। पर, जब वह आपकी शरण में आकर गिड़गिड़ाया, तब आपने बाईस हजार की डिग्री माफ कर दी। इसपर उसने आपको सुनहली मूठवाली एक तलवार भेंट की, जो आपके वंशधरों में 'बाइस-हजारी' नाम से प्रसिद्ध है। इतना ही नहीं, जिस दिन वह व्यक्ति मर गया, आपने रात में भोजन नहीं किया। —सं०

२. आपकी अन्य रचनाओं के लिए देखिए—'साहित्य' (त्रैमासिक, वर्ष ३, अंक १, अप्रैल, सन् १९५२ ई०), पृ० ४८ तथा वही, (अंक २, जुलाई, सन् १९५२ ई०), पृ० ७८।

(२)

सखि री देखु अचरज बात ।
अंग-अंग विचित्र सोभा जगजननि के गात ॥
राहु लखि निसिपति डरत निसिपति निरखि जलजात ।
त्यागि सरवर बास लीन्हो मृदुल युवती-गात ॥
धनुप लखि सुक अति हि डरपत सुक निरखि तत्काल ।
दाड़िमी फल बिहँसि अन्तर दसन खोल्यो लाल ॥
मृगहि लखि फल बिम्ब डरपत मृग निरखि मृगराज ।
सिंह लखि गजराज डरपत यह अचम्भा काज ॥
वैर करत न काहु रिपु सन करत एक सँग बास ।
कहत 'नग' जगदम्ब-महिमा सत्रु से नहिं त्रास ॥[1]

(३)

सोभा केस कारे घुँघरारे लखि हारे कवि
जैसे विधु पूरन निसंक राहु घेरे है ।
कैसे विधु पूरन निसंक राहु घेरे कहि
जैसे ससि पास स्याम मेघ चहुँ फेरे है ।
कैसे ससि पास स्याम मेघ चहुँफेरे कहि
जैसे चन्द चूसत मिलि छौना-अहि कारे हैं ।
कैसे चन्द चूसत मिलि छौना अहि कारे कहि
जैसे मुख ऊपर केस कारे घुँघरारे है ॥[2]

(४)

सुन्दर सुरंग सुचि सारी जरतारी भारी
मोतिन किनारी धारी झालर जरकारी है ।
जाके लखे ते बरनारी पनिहारी भई
पन्नगीकुमारी दसा देह की बिसारी है ।
वारी है कुमारी वारी सारी सुकुमारी सखी
अति ही अहारी सन सुधि ना सम्हारी है ।
विनती हमारी सुनु सैल की कुमारी वारी
लखि के तव सारी सब हारी देवनारी है ।[3]

---

१ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसन्धान-विभाग में सुरक्षित 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' (प्रथम तरंग) से ।
२-३. वही ।

(५)

मन मतङ्ग को चाहिए सतगुरु दृढ़ गजपाल।
ग्यानांकुस ते वस करे प्रेम जँजीरा डाल॥
तन दीपक मन तेल भरि ग्यान ज्योति ते बार।
ध्यान सुरत मग पग धरहु देखु दरस उजियार॥
ग्यान जगावे विरह को विरह जगावे जीव।
जीव मिले जो, पीव सों वहीं जीव वहि पीव॥
सुमति सील सिंगार करु प्रेम सहित लव लाय।
जय गोविन्द अस कहत 'नग' विरह-व्यथा मिटि जाय।[1]

※

दामोदर झा[2]

आपका उपनाम 'आदिनाथ' था।

आप महरैल (दरभंगा) के निवासी और दरभंगा-नरेश महाराजा माधवसिंह (सन् १७७६-१८०८ ई०) के दौहित्र पं० मनोहर झा के पुत्र थे। आपका जन्म सन् १८२१ ई० में हुआ था।

आपकी शिक्षा तो सामान्य ही हुई थी, किन्तु स्वाध्याय के बल पर आपने प्रशंसनीय पाण्डित्य अर्जित कर लिया था। शास्त्रों और पुराणों में आपका गहरा प्रवेश था। आप एक अच्छे जमीन्दार थे, परन्तु पीछे निर्धन होने पर भी आप पूर्ववत् अध्ययन एवं लेखन के कार्य में मृत्यु-पर्यन्त संलग्न रहे। आपकी गणना एक प्रसिद्ध लिपिकार के रूप में भी होती थी। आपने लगभग एक सौ संस्कृत-हिन्दी-ग्रंथों को बड़े मनोयोग से अपने हाथों लिखकर तैयार किया था। आपके हस्तलिखित ग्रंथों में कुछ के नाम ये हैं—(१) साम्बपुराण, (२) ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, (३) रसिकप्रिया, (४) कविप्रिया, (५) जगद्विनोद, (६) पिंगल, (७) अध्यात्मरामायण, (८) गयापद्धति, (९) दशकर्मपद्धति, (१०) महाभारत-शान्तिपर्व, (११) देवी भागवत, (१२) गरुडपुराण, (१३) छन्दोमंजरी, (१४) वृत्तरत्नाकर, (१५) पदवाक्यरत्नाकर, (१६) न्याय-कुसुमांजलि, (१७) वेदान्त-परिभाषा, (१८) संस्कार-दीपक, (१९) कुमारसंभव, (२०) शकुन्तला आदि। उक्त प्राचीन हस्तलेखों के अतिरिक्त आपके स्वरचित ग्रंथों की संख्या सात है। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) देवीगीत-शतक, (२) कामदर्पण, (३) कृष्णकुतूहल, (४) फूलचरित्र,

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथ अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' से।
२. श्रीगंगानाथ झा, बी० ए०, (प्रधानाध्यापक, श्रीदुर्गा मिडिल स्कूल, महरैल) द्वारा प्रेषित सूचनाओं के आधार पर।

(५) गीतावली, (६) मिथिला आयुर्वेद-शब्दकोश और (७) आयुर्वेद-संग्रह। इन सात ग्रथो मे प्रथम (देवीगीत-शतक) को आपके देहान्त के बहुत दिन पश्चात् श्रीमहेश झा, न्यायव्याकरणाचार्य ने प्रकाशित कराया था।

उदाहरण

हम अति विकल विषय रस मातल भगवति तोर भरोशे।
अशरण-शरण हरण-दुख-दारिद तुअ पद-पङ्कज-कोशे॥
विधि-हरि-शिव शनकादिक सुरमुनि पावि मनोरथ दाने।
तुअ गुण यश वरणत कर अनुछन वेद पुरान बखाने॥
जे तुअ साधक पुरल तनिक मन अवसर आएल मोरा।
अरु अभिलाख सतत वरदाइनि करिय विनय किछु तोरा॥
'आदिनाथ' पर कृपायुक्त भै निशिदिन करु कल्याने।
सुत सम्पति सुख मुद मङ्गल दै चारि पदारथ दाने॥[१]

※

भाना झा

आपकी रचनाओ में आपका नाम 'भानुनाथ' मिलता है।

आप दरभंगा-जिले के पिलखवाड़ नामक ग्राम के निवासी थे।[२] आपका जन्म सं० १८८० वि० (सन् १८२३ ई०) में हुआ था।[३] आपके पिता का नाम था महामहोपाध्याय पं० दीनबन्धु झा।[४] प्रसिद्ध नैयायिक एवं कवि महामहोपाध्याय पं० बबुजन झा[५] आपके ही अनुज थे।[६]

आप खण्डवलाकुल के प्रसिद्ध महाराज महेश्वर सिंह (सन् १८५०-६० ई०) के दरबार में राज-ज्योतिषी थे। कहते हैं, उक्त महाराज के यहाँ आपको अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। उक्त दरबार से आपका सम्बन्ध महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह (सन् १८८०-९८ ई०) के काल तक बना रहा।

---

१. A History of Maithili Literature (J. Mishra, Vol 1, 1949), P. 432.
२. 'मैथिली-गीत-रत्नावली' (प० बदरीनाथ झा, प्रथम सं०,स० २००६ वि०), पृ० ८६।
३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय-भाग, द्वितीय स०, सं० १९८५ वि०), पृ० १०९७।
४. ये 'नन्दन झा' या 'नेमत झा' के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्हें अपनी विद्वत्ता के पुरस्कार-स्वरूप नेपाल के तत्कालीन शासक से, सन् १७५४ ई० में, नेपाल में ही एक ग्राम प्राप्त हुआ था।—A History of Maithili Literature' (वही), P. 348.
५. कविशेखराचार्य पं० बदरीनाथ झा ने इनका उल्लेख आपके पिता के रूप में किया है।
६. 'पुस्तक-भण्डार रजत-जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ' (सम्पादक-मण्डल, सन् १९४२ ई०), पृ० २०।

आपने अनेक ग्रंथो की रचना की थी, जिनमें 'प्रभावतीहरण' नाटक प्रसिद्ध है। आपके इस नाटक की गणना मिथिला के कीर्त्तनिया नाटकों की परम्परा में होती है; क्योंकि इसके गीत मैथिली में लिखे गये हैं। मैथिली में रचित आपके कुछ स्फुट पद भी मिलते हैं, जो बड़े ही मार्मिक हैं।

उदाहरण

(१)

चलल शयन-गृह मनमथ रे नागरि कर लागी।
जलद बिजुलि जनि वियकुल रे निज-निज तनु भागी।
सुमन सुबासल परिहन रे कुसुमित बर चीरे।
भावित गीत ललित पद रे तेहि गमन गँभीरे।
सिन्दुर-रेह चिकुर-बिच रे अनुरूप अकारे।
उदगत भेल यमुन बिच रे जनि भारति-धारे।
धवल बसन शिर शोभित रे युत श्यामल माले।
नागरि पगु नूपुर-रव रे जनि पूरथि ताले।
हृदयिक प्रेम बेकत करु रे कर-पल्लव जाँती।
नागरि बिहुँसि-बिहुँसि रहु रे अभिनव कय काँती।
'भानुनाथ' कह मन गुनि रे बसि नृपक समाजे।
पाबथु सतत एहन सुख रे मिथिलापति राजे॥[1]

(२)

आज देखल पथ कामिनि रे दामिनि सम रूपे।
इन्दुबदनि मृगलोचनि रे गति परम अनूपे॥
कुन्तल रुचिर बिराजित रे मुखमण्डल पाए।
अमिअ लोभ शशि चौदिश रे फणि रहु लपटाए॥
अधर दसन छबि कि कहब रे अनुपम तसु काँती।
नवदल निकट बइसाओल रे दाड़िम-बिज पाँती॥
कनक-लता भुज उपमित रे कुच युग निरमाई।
मदन जगत जिति राखल रे दुन्दुभि उनटाई॥

---

१. 'प्रभावतीहरण' (तृतीय अंक), पृ० २१।

जघन उपर रोमावलि रे छबि बुझु संगोपे।
गुपुत नीधि जनि बिसरय रे लत मनमथ रोपे॥
'भानुनाथ' भन मन दय रे कत कयल बखाने।
कवि गुन बुझथु नृपति आबे रे अपनहिँ अनुमाने॥[१]

(३)

जदुपति बुझिअ बिचारी। अभिनब बिरह बेआकुल नारी॥
नलिन सयन नहिँ भावे। तनि पथ हेरइत दिबस गमावे॥
केअओ चानन कर लेपे। केअओ कहए जनि रहल सँछेपे॥
कोन परि करति निबाहे। सितकर किरन सतत करु दाहे॥
तप जनि करए सकामे। निसदिन जपइत रह तसु नामे॥
'भानुनाथ' कबि भाने। रस बुझ महेस्वर सिङ्घ सुजाने॥[२]

(४)

माधव! कि कहब तनिक विशेषे।
जनिक बदन देखइत चतुरानन चानहुँ देथि परिवेषे॥
चिकुर निकर वेणीकृत लम्बित एहन देखल अभिरामे।
लोहित बिन्दु सुरुज समुदित जनि तिमिर पाछु परिणामे॥
दशन वसन नासा रद लोचन निरखि लाग अनरीती।
बन्धुक तील कुन्द सरसीरुह एकहि समय परतीती॥
सरस मृणाल बाल चकबा युग शैवल गिरिवल कूले।
सतत अमिअ सन बचन-सुसेञ्चित तेँ नहि हो उनमूले॥
केहरि समाज राज-गज कर-युग तसु तनु पल्लव भासे।
कामिनि-पुण्य-प्रताप-दाप तहँ न करए तुरित गरासे॥
'भानुनाथ' भन हंस-गमनि छबि रस-विन्दक नहि आने।
खण्डबलाकुल-कमल-दिवाकर महेश्वर सिह सुजाने॥[३]

---

१. 'प्रभावतीहरण' (वही, तृतीय अंक), पृ० २३।

२. Journal of the Asiatic Society of Bengal [Vol LIII, Part I, Special No.1884], P. 86.

३. 'मैथली-गीत-रत्नावली' (वही), पद सं० ८७, पृ० ५१।

चिरंजीवी मिश्र

आप सिरियावाँ (गया) निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे।[१] आपका जन्म सं० १८८३ वि० (सन् १८२६ ई०) मे और मृत्यु स० १९६८ वि० (सन् १९११ ई०) मे, पचासी वर्ष की आयु में, हुई थी। आप संस्कृत, हिन्दी और आयुर्वेद के विद्वान् होने के अतिरिक्त एक सफल चिकित्सक तथा यशस्वी कवि भी थे। आपकी रचनाएँ प्रायः 'साहित्यसरोवर', 'साहित्यचन्द्रिका' आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित हुआ करती थी। अपनी रचनाओ की सरसता और प्रभविष्णुता के कारण अपने युग के साहित्य-जगत् में आप बड़े प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध थे। आपने आयुर्वेद-सम्बन्धी कई निबन्ध तो लिखे ही थे, विविध विषयों की छोटी-मोटी पुस्तके भी लिखी थी; पर वे दुष्प्राप्य हैं।

आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले।

*

बच्चू दुबे[२]

आप 'प्रकाश मलिक' के नाम से प्रसिद्ध थे। आपकी रचनाओ में आपका नाम 'प्रकाश' ही मिलता है।

आप शाहाबाद-जिले के धनगाँई नामक ग्राम के निवासी गौड़ ब्राह्मण[३] थे। आपका जन्म सं० १८८४ वि० (सन् १८२७ ई०) में हुआ था।[४] आपके पिता का नाम

१. 'गया के लेखक और कवि' (श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त, प्रथम सं०, सन् १९५० ई०), पृ० ६०।

२. आपका विस्तृत जीवन-परिचय आपके जीवन-काल में ही, प्रो० अक्षयवट मिश्र ने लिखा था।—देखिए, 'देवनागर' (मासिक, धनु, ५००९ कल्यब्द, सं० १८६४ वि०, वत्सर १, अंक ९), पृ० ३३७-४१। आगे चलकर वही परिचय 'गगा' में किंचित् परिवर्त्तन के साथ प्रकाशित हुआ।—देखिए, 'गगा' (मासिक, प्रवाह २, तरग ६, जून, सन् १९३२ ई०), पृ० ७७०-७३। इधर श्रीद्वारिकाप्रसाद गुप्त (गया) तथा श्रीजगदीश शुक्ल (शाहाबाद) द्वारा लिखित आपके परिचय भी उपलब्ध हुए हैं।—देखिए, 'गृहस्थ' (साप्ताहिक, भाग १६, अंक २, १४ जनवरी, सन् १९३२ ई०), पृ० १४ तथा 'नईधारा' (मासिक, वर्ष १०, अंक २५, फरवरी, सन् १९६० ई०), पृ० ८१।

३. 'देवनागर' (वही), पृ० ३३८। आपने स्वय अपनी जाति की उत्पत्ति लिखी है, जिसमें जरासंध तथा तात्कालिक अनेक भूपों के इतिहासों का अवलम्बन कर आपने अपने को ब्राह्मण सिद्ध किया है। इन लोगों में ब्राह्मणों की ही भाँति दुबे, मिश्र, पाठक, उपाध्याय, त्रिपाठी आदि पदवियाँ नाम के साथ लगाई जाती हैं, किन्तु सर्वसाधारण में ये लोग 'मलिक' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। ये लोग अपने को 'गौड मागध' (अर्थात्, मगध देश में रहनेवाले गौड़ ब्राह्मण) कहते हैं। इनकी जाति के लोग प्रयाग से पूर्व और वैद्यनाथ-क्षेत्र से पश्चिम में बहुत हैं।—देखिए, वही।

४. बा० शिवनन्दन सहाय (अख्तियारपुर, शाहाबाद) ने भी आपका जन्मकाल यही बतलाया है। किन्तु, श्रीजगदीश शुक्ल (मूर्यपुरा, शाहाबाद) आपका जन्म-काल सन् १८३४ ई०, अर्थात् सं० १८९१ वि० बतलाते हैं। —देखिए, 'बिहार की साहित्यिक प्रगति' (बिहार-हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन, प्रथम सं०, सन् १९५६ ई०), पृ० ६३ तथा 'नईधारा' (वही), पृ० ८१।

पदारथ दुबे और पितामह का जगन दुबे था।[1] प्रसिद्ध कवि 'घनारंग' (घना मलिक)[2] आपके पितृव्य थे। आप स्वयं निःसंतान हुए। आपके अनुज फूलचन्द दुबे[3] थे, जिनसे आपका वंश चला।

बाल्यकाल से ही आपकी प्रवृत्ति संगीत-शिक्षा की ओर थी। आरम्भ मे आपने घना मलिक, काली मलिक, ठाकुर मलिक और श्रीकृष्ण मलिक से इस विषय की शिक्षा प्राप्त की। आगे चलकर कालपी-निवासी प्रसिद्ध गायक अलीबख्श खाँ के भी आप शिष्य हुए। परिणाम-स्वरूप आपकी प्रसिद्धि संगीत-शास्त्र के एक प्रख्यात पंडित के रूप मे हुई। एक प्रकार से आप अपने युग के तानसेन ही थे। एक ही गीत में अनेकानेक राग-रागिनियो को प्रदर्शित कर देना आपके बायें हाथ का खेल था। साधारण-से-साधारण गीतो को भी आप इस प्रकार गाया करते थे कि बड़े-बडे संगीतज्ञ आश्चर्य-चकित रह जाते थे। उस समय की भारत-प्रसिद्ध बनारसी गायिकाएँ 'तौकी' और 'मैना' भी आपके गान सुनकर दाँतो उँगली दबाकर रह जाती थी। आपके सगीत से प्रसन्न होकर आपके आश्रयदाताओं ने आपको भूमि, वाटिका, भवन आदि देकर चिरंतन काल तक के लिए सुखी कर दिया।[4]

एक बार भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के समक्ष भी आपने अपनी संगीत-विद्या की सिद्धि प्रकट की थी, जिसपर मुग्ध होकर उन्होने आपको 'संगीताचार्य' की उपाधि से विभूषित कर आपको पुरस्कृत[5] किया।

आपके मंत्रगुरु श्यामसखाजी थे। आप एक सच्चरित्र, सहृदय, सरल और निरभिमान व्यक्ति थे। स्वाध्याय से आपने हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और उर्दू मे भी अच्छी गति प्राप्त कर ली थी।

---

१. ये लोग भी गान-विद्या में परम प्रवीण थे। इसी कारण तत्कालीन भोजपुर-नरेश ने इन्हे अपनी राजधानी (डुमराँव) में बुलाकर रख लिया था। —सं०

२. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

३. ये सितार, इसराज, मृदंग आदि बजाने में बड़े ही निपुण थे। इनका स्वर्गवास बहुत ही अल्पावस्था में हो गया। —सं०

४. एक बार महाराज राधाप्रसाद सिंह (सन् १८८१-९४ ई०) के दरबार में आपने 'सैयाँ विदेसी पुरुब जनि जाहु रे' नामक पद को दो घण्टों में भिन्न-भिन्न रागों में इस प्रकार गाकर सुनाया कि महाराज ने मुग्ध होकर आपको पर्याप्त भूमि दे डाली। —सं०

—'आत्मचरित-चम्पू' (प्रो० अक्षयवट मिश्र, प्रथम सं०, सं० १९९४ वि०), पृ० ११।

५. भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने आपको बड़े ही निराले ढंग से पुरस्कृत किया था। उन्होंने एक लिफाफे में पुरस्कार के नम्बरी नोट बन्द करके आपको देते हुए कहा—'मलिकजी, इस लिफाफे में एक भजन है, उसे आप याद कर लीजिएगा। अगर राग-तान में कुछ गलती हो तो कल आकर बता दीजिएगा।' अपने डेरे पर आकर रात को जब आपने लिफाफा खोला, तब गीत के बदले नोट पाकर स्तब्ध रह गये। आपने समझा कि ये नोट भूल से आपको दे दिये गये हैं। इस भूल के मार्जन के लिए जब दूसरे दिन पुन. उनके सम्मुख उपस्थित होकर आपने उन नोटों को वापस करना चाहा, तब भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने हँसकर उत्तर दिया—'मैंने इसलिए यह नोट सबसे छिपाकर आपको दिया कि यह आपके गुण के योग्य नहीं है। सबके सामने इतना अल्प पारितोषिक देने में मुझे लज्जा आई।'

—'देवनागर' (वही), पृ० ३३९।

आरम्भ में आप डुमराँव-राज्य के महाराज जयप्रकाश सिंह, महाराज जानकी-प्रसाद सिंह और महाराज महेश्वरबख्श सिंह (सन् १८४३–८१ ई०) के दरबार में, अपने पितामह तथा पिता के साथ, आया-जाया करते थे। आगे चलकर, महाराज राधाप्रसाद सिंह (सन् १८८१—९४ ई०) ने तो आपको अपने दरबार में स्थायी रूप से रख ही लिया। उक्त महाराज के परलोक-गमन के पश्चात् आप कुछ दिनो तक महारानी बेनीप्रसाद कुँअरी और महाराजकुमार श्रीनिवासप्रसाद सिंह[1] के दरबार में भी रहे। आपको अनेक राज-दरबारो से निमंत्रण आये, किन्तु डुमराँव-दरबार छोड़कर आप कही नही गये।[2] आपके जीवन-काल में ही आपके अनुज फूलचन्द मल्लिक का देहान्त हो गया, जिससे आपके हृदय पर बहुत चोट पहुँची। किसी-किसी प्रकार आपने उनके दो पुत्रो को देखकर धैर्य धारण किया। किन्तु, जब कुछ ही दिनो के बाद उनमें से भी एक जगदीश्वर प्रसाद[3] का देहान्त सं० १९६० वि० में हो गया तब आप संसार से बिलकुल विरक्त होकर ईश्वर-भक्ति में लग गये।[4]

डुमराँव-नरेश महाराज राधाप्रसाद सिंह के आदेश पर ही आप हिन्दी-काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए थे। उन्ही का आदेश प्राप्त कर आपने काशी जाकर श्रीकाशी-नरेश के आश्रित सुविख्यात 'सरदार कवि' से काव्य-रचना की शिक्षा प्राप्त की और कुछ ही काल तक अभ्यास करने पर आप सुन्दर रचना करने लगे। संगीत के सम्मिश्रण से आपकी कविता में और भी निखार आ गया। हिन्दी में आपकी लिखी संगीत-काव्य-विषयक चार पुस्तकें हैं—(१) सुर-प्रकाश, (२) रस-प्रकाश, (३) संगीत-प्रकाश और (४) भैरव-प्रकाश।[5] आप सं० १९६६ वि० (सन् १९०९ ई०) में बयासी वर्ष की आयु में, परलोकवासी हुए।[6]

---

१. ये जगदीशपुर (शाहाबाद) के इतिहास-प्रसिद्ध वीर बाबू कुँवरसिंह के गढ़ के निवासी थे। डुमराँव की महारानी बेनी कुँअरी (महाराजा राधाप्रसाद सिंह की विधवा) ने इनको गोद लिया था। रानी के दत्तक पुत्र होने पर बालपन में इन्हें प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र ने राँची में इनके साथ रहकर पढाया था। इनके साथ डुमरॉव-राजवंश के बाबू केशवप्रसाद सिंह ने राज्याधिकार के लिए मुकदमा लड़ा था। उनके विजयी होने पर इन्हें समझौता में कई लाख रुपये मिले थे।—सं०

२. श्रीजगदीश शुक्ल का कहना है कि आपका सम्बन्ध सूर्यपुरा-दरबार से भी था। उनके कथनानुसार श्रीसूर्यपुराधीश राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह 'प्यारे' आपको बहुत मानते थे। 'प्यारे' कवि का भी घरेलू नाम 'बच्चूजी' था, इसी आधार पर वे आपको 'मीत' कहा करते थे।—देखिए, 'नईधारा' (वही), पृ० ८१।

३. ये भी गाने-बजाने में बड़े ही कुशल थे। इनके अनुज का नाम लालो मलिक था। —सं०

४. धनगाईं में आपके बनवाये दो देवमंदिर (एक शिव-मंदिर और एक विष्णु-मंदिर) आज भी वर्त्तमान हैं। —सं०

५. इनमें केवल अंतिम (भैरवप्रकाश) ही नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ) से सं० १९३२ वि० में प्रकाशित हुई थी। शेष पुस्तकें अप्रकाशित हैं, जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हैं। —सं०

६. श्रीजगदीश शुक्ल आपका निधन-काल सन् १९१२ ई०, अर्थात् सं० १९६९ वि० मानते हैं।
—देखिए, 'नईधारा' (वही), पृ० ८५।

उदाहरण

(१)

रजनी बरसे बरसे जा कहो बर सेजा रचों तब लौ सजनी।
सज नीक पुसाक करो तन को तनको मत देर अबौ करनी॥
करनी धरि अंक करों पिय को पिय को अधरामृत होब धनी।
बधनी नहि जोग सबै अबला अब लावहु पी पग लूँ रजनी॥[1]

(२)

पूरब सुकृत-फल मनुज-सरीर होत द्विपद कहाय बृथा फिरत जहान मैं।
व्याहि बाम चौपद बनत पसु बुद्धि भ्रष्ट क्रीडंत अनङ्ग-रङ्ग चित्त न गहान मै॥
सुत लहि षटपद भौर बन-बन डोले लेइ सुख भूल परो रस के दहान मैं।
अष्टपद मकरी लों फँस्यो परिवार-जाल भजत न राम सठ कहत महान मैं॥[2]

(३)

ह्वै कर प्रचंड जग जाय खंड-खंड कीन्हों,
दनुज नसाय सब सुरन बचाये तू।
बड़े-बड़े पापी औ सुरापी सर्व दोषी कहे,
दुख हरि लीने कासिनभ में पठाये तू।
तन-हीन धन-हीन जन-हीन मन-हीन,
जेते दीन-हीन गनि सके न अघाये तू।
दीन कोतवाली शिव जग पालिबे के हेतु,
मेरी ओर हेरि लघरुज ते लजाये तू।[3]

---

१. 'देवनागर' (वही), पृ० ३४० तथा 'गृहस्थ' (वही), पृ० १४। इस यमकात्मक पद्य को सुनाकर भी आपने अपने आश्रयदाता महाराज राधाप्रसाद सिंह से प्रभूत पुरस्कार प्राप्त किया था। —सं०

२. 'देवनागर' (वही), पृ० ३४०।

३ 'नर्मदाधारा' (वही, वर्ष १०, अंक १२, मार्च, सन् १९६० ई०), पृ० ४३।

(४)

गिरिजापति को नर भजे तो तरि जा सब पाय।
भिरजा इनके टहल में टरिजा सकल बलाय॥
टरिजा सकल बलाय लाय हृदये महँ ले हर।
करें सदा प्रतिपाल पिता जिमि पुत्र छोहकर॥
इत उत फिरि क्यों मरे अभागे जिय धरु धिरिजा।
सिरजा इन सब जगत ताहि चरनन पर गिरिजा।[1]

(५)

जोई सीतानाथ सोई राधानाथ मानत,
जोई धनुधारे सोई मुरली सँवारे है।
जोई रघुपति सोई जदुपति प्राणप्यारे,
जोई काकपक्ष सोई मोर-पक्षवारे है।
अवध बिहारी जोई सोई बृज के बिहारी,
जोई सोभा देख सोई तन-मन वारे है।
जोई राम सोई कृष्ण रूप नाम है 'प्रकाश',
एकई प्रभाव सब जग रखवारे है॥[2]

*

अयोध्याप्रसाद मिश्र

आप गया नगर के 'नई गोदाम' मुहल्ले के निवासी थे।[3] आपके पिता का नाम था पं० गोपीनाथ मिश्र। आपके एक पुत्र आनन्दीप्रसाद मिश्र[4] भी साहित्यिक हुए।

आपका जन्म सन् १८३० ई० (सं० १८८७ वि०) में हुआ था। सन् १९१० ई० में, अस्सी वर्ष की आयु में, आप परलोक सिधारे।

आपको पटना-स्थित संस्कृत-पाठशाला में संस्कृत-हिन्दी की शिक्षा प्राप्त हुई थी। तेरह वर्ष की उम्र में पितृ-वियोग हो जाने पर आर्थिक संकट के कारण विद्यार्थी-जीवन समाप्त कर आपको पटना-स्थित टेकारी-राज-मंदिर में पुजारी का काम करना पड़ा।

१. 'नईधारा' (वही), पृ० ४५।
२. वही, पृ० ४६।
३. 'गया के लेखक और कवि' (वही), पृ० ५।
४. इनका परिचय अगले खण्ड में प्रकाशित होगा।

उसी समय आपने संस्कृत-साहित्य और आयुर्वेद के अध्ययन का क्रम चालू रखा। स्वाध्याय के द्वारा अर्जित पाण्डित्य के प्रभाव से टिकारी (गया)-नरेश महाराज श्रीकृष्ण सिंह के आप कृपा-पात्र बन गये। फलतः, पुजारी का काम छोड़ने के बाद अपने जीवन के अंतिम काल तक आप उक्त महाराज के दरबार मे राजवैद्य रहे।

प्रसिद्ध भाषातत्त्व-वेत्ता डॉ० ग्रियर्सन[1] आपके समय में गया के जिलाधीश थे। वे भी आपकी साहित्यिक सुरुचि के बड़े प्रशंसक रहे।

आपकी रचनाएँ हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत में भी मिलती हैं। कहते हैं, धर्मशास्त्र मे आपकी अच्छी गति थी और उक्त विषय पर तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ में आपके जो विचार प्रकट होते थे वे, प्रमाण-रूप मे गृहीत होते थे। आपकी हिन्दी-कविताओं का प्रमुख गुण था माधुर्य। यों, चित्रकाव्य के भी आप सफल रचयिता माने गये हैं।

आपकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) सुधा-बिन्दु (छन्द-परिचय), (२) स्वप्न-विचार, (३) आरोग्य-शिक्षा, (४) संध्या-बोधन, (५) मांस-भक्षण-मीमासा, (६) जीव-जीवन-सिद्धान्त, (७) द्रव्य-गुण-दर्पण (आयुर्वेदीय कोष) तथा (८) श्रीमद्भगवद्-गीतार्थ-चन्द्रिका (संस्कृत और हिन्दी में गद्यपद्यानुवाद)।[2]

उदाहरण

(१)

जो पुरुष कर्मेन्द्रियो को विषय की ओर जाने नही देता है उनको रोके रहता है परन्तु इन्द्रियो के भोग के वस्तु का ध्यान करता रहता है सो मूर्ख निर्विवेकी और पाषन्डी कहलाता है।[3]

---

१. इनका परिचय अगले खण्ड में प्रकाशित होगा।

२. अंतिम को छोड़कर सभी रचनाएँ पुस्तकाकार में प्रकाशित हैं, पर दुर्लभ। अंतिम रचना को आपके पुत्र चि० आनन्दीप्रसाद मिश्र ने प्रकाशित करवाया था। उक्त रचना की 'प्रस्तावना' में उन्होंने लिखा है— "गुरुवर पूज्यपाद परम पूजनीय मेरे पिता श्रीयुक्त पंडित अयोध्याप्रसाद मिश्र महाशय जी ने इस ग्रंथ के प्रकट करने में पूर्ण परिश्रम किया था। खेद है कि ग्रंथ प्रकाश होने के पूर्व ही आप निज इष्टदेव परब्रह्म श्रीसाकेतविहारी श्रीमन्महाराज श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमल रेणु में लीन हो गये। शरीरांत होने के एक सप्ताह पूर्व आपने एक पत्र लिखकर 'श्रीमद्भगवद्गीता' में रख दिया था, जिसमें यह लिखा पाया कि 'पुस्तक छपने में विलम्ब हुआ और अब यह आशा नहीं कि 'श्रीमद्भग-वद्गीतार्थचन्द्रिका' को मित्रों के करकमल में स्वहस्त से मैं अर्पण करूँ।"

—देखिए, 'श्रीमद्भगवद्गीतार्थचन्द्रिका' (पं० अयोध्याप्रसाद मिश्र, प्रथम सं०, सं० १६६६ वि०), —प्रस्तावना।

३. कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

—देखिए, 'श्रीमद्भगवद्गीतार्थचन्द्रिका' (वही, अध्याय ३, श्लोक ६), पृ० ६४।

(२)

जिसका योग भ्रष्ट हो गया है सो जीव उस लोक में जाता है जहाँ अश्वमेधादि यज्ञ करके पुण्यात्मा जन सुख का भोग्य करते हैं (अर्थात् स्वर्ग में) और बहुत वर्ष वहाँ निवास करके फिर इस लोक मे पवित्र और धनी पुरुष के गृह में जन्म लेते हैं।[1]

(३)

हे राजन् एक मेरे हो में मन लगाकर सदा सब काल में जो पुरुष मुझको स्मरण करता रहता है और बराबर मेरी भक्ति ही मे बना रहता है ऐसे योगी को बिना परिश्रम ही मैं मिल जाता हूँ।[2]

(४)

जिस प्राणी से लोगों को क्लेश नहीं पहुँचे तथा जिसको लोगों से दुःख न होय और जो हर्ष, इर्षा, भय और उद्वेग से छूट गया हो सो मेरा प्रिय है।[3]

(५)

काम (अप्राप्त का चाहना) क्रोध और लोभ ये तीनों नरक के दरवाजे है जीव को बिगाड़नेवाले है इसलिए इन तीनों को त्याग देना उचित है।[4]

*

अलिराज[5]

आप शाहाबाद-जिले के डुमराँव नामक स्थान के निवासी भूमिहार-ब्राह्मण थे। आपका जन्म सन् १८३० ई० में हुआ था।[6]

---

१. प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोभिजायते ॥
—देखिए, 'श्रीमद्भगवद्गीतार्थचन्द्रिका' (वही, अध्याय ६, श्लोक ४१), पृ० १४८।

२. अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥
—वही (अध्याय ८, श्लोक १४), पृ० १७४।

३. यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥
—वही (अध्याय १२, श्लोक १५), पृ० २५८।

४. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥
—वही (अध्याय १६, श्लोक २१), पृ० ३११।

५. आपका प्रस्तुत परिचय श्रीद्वारका प्रसाद गुप्त-लिखित आपकी जीवनी के आधार पर तैयार किया गया है। —देखिए, 'गृहस्थ' (वही, भाग १५, अंक ४१, गुरुवार, १० दिसम्बर, सन् १९३१ ई०), पृ० ५।

६. वही। अपने जन्म-स्थान के विषय में आपने स्वयं ये पंक्तियाँ लिखी हैं—
सहर सरैसा नगर बिसारा, बीरमपुर परिवार हमारा।
रामनगर नरहन के वासी, बेलसंड डुमराँव निवासी ॥

आपको यद्यपि विशेष स्कूली शिक्षा प्राप्त न थी, तथापि स्वाध्याय के बल पर आपने अच्छी विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। आपकी विद्वत्ता के कारण ही आपके समकालीन हिन्दी-प्रेमी आपको बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। हिन्दी के अतिरिक्त आप संस्कृत और फारसी के भी अच्छे ज्ञाता थे। आप कुश्ती की कला मे भी बडे ही निपुण थे। कहते हैं, पटना के प्रसिद्ध 'अलि अखाड़ा' की स्थापना आपने ही की थी।

आपने हिन्दी मे दो पुस्तकों की रचना की थी—(१) कुँअर-हजारा[1] और (२) भक्तमाल। इनमे आपकी प्रथम रचना विशेष प्रसिद्ध हुई।

उदाहरण

दिल्ली सुलतान लड़े, टीपू मैदान लडे,
और लड़े भरतपुर रोम चीन रूस मे।
काबू कंधार लड़े, रामू मैदान लडे,
हटे नहि काहू से भी फिरँग रहे खूस में॥
उज्जैन-वंश-वीर से काँपि गयो कम्पनी,
जैसे लोग जाड खाल सिहरे माघ पूस में।
'अमर' कृपान के बखाने 'अलिराज' करे,
देखि साहेबान सब घूसि गये धूस मे॥[2]

❋

चन्दा झा[3]

आप आधुनिक मैथिली-साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। अपनी बहुमुखी प्रतिभा एव लोकप्रियता के कारण ही मिथिला में आप 'अपर विद्यापति' के रूप में समादृत हैं।[4] आपकी रचनाओं में कहीं-कहीं आपका नाम 'चन्द्र' भी मिलता है। यो, आपकी अधिक प्रसिद्धि 'कवीश्वर' के नाम से थी।

---

१. इसमें सन् सत्तावन के सिपाही-विद्रोह के प्रसिद्ध अमर सेनानी बाबू कुँवरसिंह से सम्बद्ध ओजपूर्ण कविताएँ संगृहीत हैं। —सं०

२. 'गृहस्थ' (वही), पृ० ५।

३. आपका प्रस्तुत परिचय मुख्यतः प० बलदेवमिश्र-लिखित 'कविवर पं० चन्दा झा' नामक पुस्तक के आधार पर तयार किया गया है।

४. सन् १९०८ ई० में कविवर पं० चन्दा झा क प्रथम दर्शन हमरा रमेश्वरलता विद्यालय में भेल छल। ताहि समय मे ओ वृद्ध सत्तरि वर्ष सँ उपरहि वयसक छलाह।.........नैयायिक पं० श्रीउमेश मिश्र क कक्षा में हम बैसल छलहु कविवर अंगा दोपटा पहिरने रहथि। खूब लम्बा गौर वर्णक रहथि। हुनक आगमन सँ सब पुलकित भै उठलाह और ठाढ़ भय सब हुनक अभ्युत्थान कैलथिन्ह.....।
—'कविवर प० चन्दा झा' (प० श्रीबलदेव मिश्र, प्रथम सं०, सन् १९४८ ई०), पृ० १७।

आपका जन्म तो सन् १८३० ई० में चैत्र-रामनवमी को दरभंगा-जिले के पिंडारुछ-ग्राम में हुआ था[1], किन्तु आगे चलकर जब दुष्टों ने आपको बड़ा कष्ट दिया, तब आप उस ग्राम को छोड़ 'ठाढ़ी' (दरभंगा) में जा बसे।[2]

आपके पिता का नाम था पं० भोला झा, जो एक प्रकाण्ड पंडित एव सरल जीवन व्यतीत करनेवाले सात्त्विक प्रकृति के व्यक्ति थे। आपको प्रारम्भिक शिक्षा अपने नानिहाल 'बड़गाम' (सहरसा) में मिली थी। कुछ ही दिनों में आपने न्याय, व्याकरण, दर्शन और साहित्य में एक साथ दक्षता प्राप्त कर ली। इसी समय आप काशी चले गये। जिस समय आप काशी से मिथिला वापस आये, उस समय तक आपकी कीर्त्तिलता फैल चुकी थी। उसी समय (अर्थात्, सन् १८६० ई० के लगभग) नरहन-रियासत (दरभंगा) के बाबू-साहब ने आपको अपने यहाँ आमंत्रित किया। आप उस आमंत्रण को स्वीकार कर वहाँ सहर्ष गये ही नहीं, पंद्रह वर्षों तक रहे भी। पीछे जब सन् १८७८ ई० में महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह दरभंगा के अधीश्वर हुए, तब उनके आमंत्रण पर आप उनकी छत्रच्छाया में दरभंगा चले आये। यहाँ महाराज ने आपको अपने संग्रहालय के साहित्य-विभाग का अध्यक्ष बना दिया। अपने जीवन के अंतकाल तक आप उसी पद की शोभा बढ़ाते रहे। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के पश्चात् महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह बहादुर गद्दी पर बैठे। इनके हृदय में भी आपके प्रति अपार श्रद्धा थी।

आप एक बड़े शिव-भक्त एवं आत्मज्ञानी तो थे ही, मौलिक चिन्तक, इतिहास के सजग अनुसंधायक, समाज-सुधारक तथा गम्भीर दार्शनिक भी थे। आपका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। शील और धैर्य आपके व्यक्तित्व के प्रधान गुण थे।[3] जिस दिन

---

१. 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' (त्रैमासिक, वर्ष ५४, अंक ४, सं० २००६ वि०), पृ० २९० तथा 'आर्यावर्त्त' (दैनिक, चैत्र शुक्ल १०, शाके १८८१, तदनुसार बुधवार, ६ अप्रैल, सन् १९६० ई०), पृ० ४।

२. कहते हैं, आपने अपने ग्राम-परित्याग के सम्बन्ध में कई पदों की रचना की थी। उनमें से निम्नलिखित पद बहुत प्रसिद्ध है—

> शिव शिव मोहि तोहर पद आस
> भल भेल भल भेल त्यागल बास छुटि गेल मोर मन दुरजन त्रास।
> भल भल लोकक बैसब पास सपनहुँ सुनब न खल उपहास।
> मन न रहत मोर कतहुँ उदास शिव शिव रहब जखन धरि श्वास।
> सुखहि में बीतत वासर मास चन्द्र सुयस नहि कतहुँ ह्रास।

—देखिए, 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' (वही), पृ० २९१।

३. कहते हैं, दरभंगा-राजकीय संस्कृत-महाविद्यालय की बगल के अपने आवास में आपने एक सुन्दर वाटिका लगा रखी थी। उस वाटिका में एक ओर कदली-कुंज भी था। जब कभी विद्यालय के छात्रों और कर्मचारियों को केले के पत्तों की आवश्यकता होती थी, तब वे उस कुंज में जाकर चुपके-से पत्ते काट लिया करते थे। जब इस बात की सूचना आपको मिली, तब आप बड़े दुःखी हुए। फिर भी आपने विद्यालय के अधिकारियों के पास इस बात की शिकायत इसलिए नहीं की कि कदाचित् उन्हें इस कारण दुःख हो। आपने केवल कदली के थम्भ में यह चेतावनी लिखकर टाँग दी—

> "आब जे सज्जन कटताह पात।
> तनिका घर में हैत उत्पात॥"—'आर्यावर्त्त' (वही), पृ० ७।

आपके एकमात्र पुत्र का देहान्त हो गया था, उस दिन भी आप शान्तभाव से एक संत-अतिथि का सत्कार कर रहे थे।

आप संस्कृत, मैथिली, ब्रजभाषा, अवधी और खड़ीबोली—इन सभी भाषाओ के विद्वान् थे। मैथिली तो आपकी मातृभाषा थी ही, अतः उसके विकास मे आप सतत यत्नशील रहे। विद्यापति-साहित्य के प्रसिद्ध अनुसंधायक श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त एवं डॉ० ग्रियर्सन के पथप्रदर्शक आप ही थे। आपने मिथिला के क्रमबद्ध इतिहास की भी खोज की। इस विषय के आपके अनुसंधान भविष्य के अनुसंधायको के लिए आधारशिला बने।

आपने मिथिला के गाँवो के नामो की व्युत्पत्ति ऐतिहासिक आधार पर ढूँढ़ने के भी प्रयास किये थे, जिससे अनेक नवीन तथ्य सामने आये। मिथिला के गाँवो में घूम-घूमकर आपने अनेक पोथियो एवं तालपत्रों का भी संकलन किया था। कहते हैं, वर्त्तमान दरभंगा-राज-पुस्तकालय में दुर्लभ ग्रन्थ-संग्रह के पीछे भी आपका ही अध्यवसाय था।

अपने जीवन के अंतिम दिनो (सन् १९०९ ई०) में आप पक्षाघात के शिकार हो गये। अंतिम घड़ियो में आपकी इच्छा के अनुसार आप काशी ले जाये गये, जहाँ आप ७७ वर्ष की आयु में सुरलोक सिधारे।

कतिपय स्फुट रचनाओं को छोड़कर आपकी सारी रचनाएँ मैथिली मे ही मिलती हैं। आपके द्वारा रचित ग्रन्थों में प्रमुख ये हैं—

(१) मैथिली-भाषा-रामायण[१], (२) विद्यापति-कृत 'पुरुष-परीक्षा' का मैथिली गद्य-पद्यानुवाद[२], (३) चन्द्रपद्यावली[३], (४) महेशावली गीतिसुधा[४], (५) अहल्याचरित नाटक, (६) वाताह्वान काव्य तथा (७) श्रीलक्ष्मीश्वर-विलास।[५]

आपके इन सारे प्रकाशित ग्रंथो के अतिरिक्त आपकी बहुत-सी ऐसी रचनाएँ भी हैं, जिनके प्रकाशन की व्यवस्था अब हो रही है। उनमें प्रमुख हैं—(१) रस-कौमुदी और (२) मूलग्राम। साथ ही, आपके असंख्य गीत एवं अनेक गवेषणात्मक निबन्ध भी (जो 'खिष्टा वही' और 'पोथ' के रूप मे हैं) अभी प्रकाश नही पा सके हैं।[६]

---

१. इसकी रचना आपने १८०८ शाके, आश्विन शुक्ल १४ शुक्र को महाराज श्रीलक्ष्मीश्वर सिंह की आज्ञा से की थी। इसका प्रकाशन पहली बार फसली सन् १२९९ में यूनियन यंत्रालय (प्रयाग) से हुआ था।

२. इसका प्रकाशन पहली बार फसली सन् १२९६ में राजदरभंगा-यंत्रालय से हुआ था। —सं०

३. इसका प्रकाशन सं० १९८८ वि० में श्री रमेस्वर-यंत्रालय (दरभंगा) से हुआ था। —सं०

४. इसका प्रकाशन स्वय डॉ० अमरनाथ झा ने किया था। श्रीजनार्दन झा का कहना है कि 'हर-गौर पदावली' नामक आपकी एक पुस्तक डा० गगानाथ झा के सपादन में इंडियन प्रेस (प्रयाग) से प्रकाशित हुई थी।—देखिए, 'सुधा', (वही, वर्ष ६, खड २, सं० ५, जून, सन् १९३३ ई०), पृ० ४६०।

५ श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन' ने आपके एक और ग्रथ 'गीत-सप्तशती' की चर्चा की है। उनका कहना है कि आपने विद्यापति की एक पदावली का भी सकलन और सम्पादन किया था।
—देखिए, 'गंगा', (वही, प्रवाह १, तरग ५, मार्च, सन् १९३१ ई०) पृ० ४८५-८६।

६. श्रीकुबेरनाथ शुक्ल के अनुसार आपने मिथिला-पुरातत्त्व विषय पर भी कुछ लिखा था, जो संभवतः 'मिथिला-तत्त्व-विमर्श' के रूप में' प्रकाशित हुआ है। 'मैथिली में मिथिला-तत्त्व-विमर्श' नामक एक पुस्तक तरौनी (दरभगा) ग्राम निवासी पं० परमेश्वर झा के नाम पर मिलती है। —सं०
—देखिए, 'माधुरी', (वही, वर्ष ६, खंड २, संख्या ५, जून, सन् १९२८ ई०) पृ० ६६२।

उदाहरण

(१)

जय जय निर्गुण सगुण महाशय जय जय विश्व-निवास ।
जय जय दक्षयज्ञक्षयकारक सुरनायक निस्त्रास ॥
जय जय करुणा करु शिव शङ्कर निजजनपालनदक्ष ।
गिरितनयामुखसरसिजदिनकर पुरहर कृतसुरपक्ष ॥
जय जय देव निरीह निरञ्जन हृतमनसिजगुरुगर्व्व ।
जय जय सकलाशापरिपूरक जय सर्वेश्वरशर्व्व ॥
चन्द्रललाट बितर मयि निजपद भक्ति स्मरहर नाथ ।
परिपालय श्रीयुतमिथिलेशं श्रुतितःकृतगुणगाथ ॥[1]

(२)

परिहरु मानिनि असमय मान ।
अनकर बचन सुनिअ जनु कान ॥
प्रबल नवलघन गगन सघन अछि ।
चातक शिखिगण करइछ गान ॥
सारिगमपधिनि इ बर धुनि सुनि सुनि ॥
मुनिहुँक हठमठ हटइछ ज्ञान ॥
नवकदम्ब नवकेतक बन सोँ ।
परिमल बहल अनिल लय आन ॥
लतिका लपटि-लपटि नव मधुकर ।
मधुर-मधुर मधु करइछ पान ॥
प्रिय सखि प्रियतम नम किंकर सम ।
छथि अनुकूल बहुत भगवान ॥
श्रीलक्ष्मीश्वर सिंह नृपतिवर ।
करपालित भन चन्द्र महान ॥[2]

---

१. 'श्रीलक्ष्मीश्वर-विलास', (चन्द्र कवि और अन्य विवरण अनुपलब्ध), पृ० २ ।

२. 'चन्द्रपद्यावली', (श्रीबलदेव मिश्र, प्रथम सं०, सं० १९८८ वि०), पद-सं० ३५५, पृ० २०८ ।

(३)

देखलनि एक जनि जुगल-कुमार, हरपहि रहल न देह सँभार।
गेल छल छथि से सखि सँग फूटि, तनिक भेल जनु मन धन लूटि ॥
कहु की देखल कहू की भेल, पुछलहु क्षण नहिँ उत्तर देल।
किछु न उपद्रव किछु नहिँ व्याधि, सहजहि लागल मदन-समाधि ॥
सभ उपचार करथि भरि पोष, चेतए कहल आन नहि दोष।
विद्यमान एत युगलकुमार, देखल तनि शोभा-विस्तार ॥
रहितहुँ देवि सरस्वति शेष, कहि सकितहुँ सौन्दर्य्य विशेष।
विश्व मनोहर वयस किशोर, अति सुन्दर बर श्यामल गोर ॥
जौँ गिरिनन्दिनि होथि सहाय, देथि जनकगृह योग्य जमाय।
देखल न एहन सुनल नहि कान, नहि परतक्ष विषम परमाण ॥[1]

(४)

सीता अरपल रामक हाथ, रमा जलधि जकेँ जनक सनाथ।
लक्ष्मणकाँ निज कन्या देल, नाम उर्मिला हर्षित भेल ॥
विख्याता श्रुतिकीर्ति कुमारि, देल भरत काँ जनक विचारि।
माण्डवि प्रस्थित कयल जमाय, श्रीशत्रुघ्न समय शुभ पाय ॥
चारु कुमार दारसम्पन्न, लोकपाल सन लोकप्रसन्न।
जनक कहल हरषित तहि ठाम, सीता लाभ जेना एहि धाम ॥
सुनु वसिष्ठ मुनि विश्वामित्र, कहइतछी कन्याक चरित्र।
भूमि-विशुद्धि यज्ञ करवाक, नृपतिहुँ काँ भेल हर धरबाक ॥
देखल तत हम जोतइत भूमि, बहराइलि कन्या काँ घूमि।
चारि वरख वयसक परमान, कन्या एहन देखल नहि आन ॥
के इ थिकथि कोना के जान, हृत भेल ज्ञान हिनक लेल ध्यान।
आनल घर मे पुत्री भाव, उपमा हिनक आन के पाव ॥[2]

(५)

छल यमुनातीर मैं योगिनीपुर नाम नगर। ततय अल्लावद्दीन यवनराज छलाह। ओ एक समय कोनहु कारण महामहिमसाहि सेनाधिपक उपर अत्यन्त कोप करइत भेलाह। महिमसाहि तनि स्वामी

1. 'मैथिली रामायण' (पं० चन्दा झा, १३१७ साल), पृ० ३८।
2. वही, पृ० ५३।

काँ क्रोधातुर जानल। प्राणहरण अकारण करताहे ई मन मानि की कर्त्तव्य चिन्ता करइत भेल, विचारल, क्रोधातुर राजा क विश्वास नही।[1]

(६)

छलि गङ्गातीर में कपिला नाम नगरी। ततय हेमाङ्गद नामक राजा छलाह्। से स्वर्ग प्राप्त सन्ता मंत्रिलोक तनि राजा क पुत्र रत्नाङ्गद नाम कुमार काँ राजा कयल। से पुन राज्य पावि पितृधन सौं गर्वित ओ यौवनमद सौ अन्याय प्रवृत्त होइत भेलाह्।[2]

✻

भगवतशरण

आपका उपनाम 'भगतजी' था। आपकी प्रसिद्धि इसी नाम से थी।

आप सारन-जिले के माँझी थाने के अन्तर्गत शीतलपुर नामक ग्राम के प्रसिद्ध पाण्डेय (कायस्थ)-वंश में सं० १८८७ वि० (सन् १८३० ई०) में आपका जन्म हुआ था।[3] आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अरबी और फारसी में हुई। हिन्दी आपने स्वाध्याय से सीखी। बचपन से ही आपमें ईश्वर-भक्ति के लक्षण दीख पड़ते थे और कदाचित् इसी कारण बड़े होने पर विवाह करना नही चाहते थे। किन्तु, अपने पिता की आज्ञा मानकर आपको एक ही नही , दो-दो विवाह करने पड़े। जब आपकी दूसरी पत्नी का देहान्त हो गया, तब आपने घर से विरक्त होकर संन्यास ले लेना चाहा। किन्तु, अपने अनुज बाबू रामसिंहासन लाल के अत्यधिक अनुरोध के कारण आप वैसा नही कर सके। आपको पुनः सांसारिक प्रपंच के बन्धन में बाँधने की दृष्टि से आपके अनुज ने आपकी तीसरी शादी करा दी। तब से आप बराबर घर पर ही रहकर भजन-भाव में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। बीच मे तीन-चार वर्षों तक जीविका की तलाश में आपने पंजाब के प्रमुख स्थानों का भ्रमण भी किया। किन्तु, कोई जीविका-साधन न मिलने पर आप आरा चले आये, जहाँ कुछ दिनो तक आपने बँटवारे की अमीनी की। अन्त में ईश्वर-भजन में बाधा पड़ते देखकर यह नौकरी भी छोड़ दी। आपके दो पुत्र हुए, जो अब जीवित नही हैं।

---

१. 'कविवर प० चन्दा झा' (वही, भूमिका), पृ० २।

२. वही।

३. 'गंगा' (वही, प्रवाह ३. तरंग ६, जून, सन् १९३३ ई०), पृ० ७७७। स्व० बाबू दामोदर सहाय सिंह 'कविकिंकर' (शीतलपुर, सारन) के आप सगोत्र थे। उन्होंने 'गगा' के उक्त अंक में प्रकाशित 'भगतजी की आत्मज्ञान-मजरी' शीर्षक अपने लेख में आपके व्यक्तित्व पर इस प्रकार प्रकाश डाला है— "....भगतजी मेरे सगोत्र ही होते थे; इसलिए आपसे मिलने-जुलने का मुझे जब-तब अवसर मिलता था। आप बड़े भक्त और नैष्ठिक वैष्णव थे। मैं जब कभी आपके पास जाता, तब प्रायः आपको आसन पर रामनामा ओढ़े, माला जपते हुए पाता था। आपके चौडे ललाट में मोटा ऊर्ध्व पुण्ड्र सदा चमका करता था। आप कद के लम्बे और कुछ स्थूलकाय थे। आपके शरीर का रग गेहुँआ था। आपकी आँखें बड़ी और नाक ऊँची तथा नुकीली थी। आपकी सौम्य मुखाकृति से शान्ति टपकी पड़ती थी। वाणी मधुर तथा स्वभाव विशुद्ध और कोमल था। आपका अधिक समय भजन-पूजन में बीतता था। आप सन्त और सुकवि दोनों थे; परन्तु बीच-बीच में आप साहित्य-सेवा करने के लिए भी कुछ समय निकाल लिया करते थे।"—देखिए, वही।

आप रामानन्दी सम्प्रदाय के वैष्णव थे। आपके आराध्य देव थे भगवान् श्रीरामचन्द्र। श्रीहनुमान्‌जी मे भी आपकी बड़ी श्रद्धा थी।[1] आपके गुरु थे छपरा-निवासी श्रीयुगलानन्द स्वामीजी, जिनमे आपकी अपार श्रद्धा-भक्ति थी। उन्ही के साथ आपने चारो धाम की यात्रा पैदल ही की थी। आप एक भजनानन्दी सद्‌गृहस्थ तो थे ही, दान-पुण्य करने मे भी आपकी अच्छी प्रवृत्ति थी। कहते हैं, आपके दरवाजे से कोई याचक हताश नही लौटता था। सगीत के भी आप प्रेमी थे। संगीत-विद्या के अभ्यासी न होने पर भी संगीतज्ञो का बड़ा आदर-सत्कार किया करते थे।

आप एक सन्त-कवि थे। आपकी तीन पुस्तको का पता चला है—(१) अध्यात्म-ज्ञान-मंजरी,[2] (२) युगल-शृंगार-भरण[3] तथा (३) संसार-विटप-नारायणी। इनमे प्रथम दो पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

आप सं० १९६० वि० (सन् १९०३ ई०) के वैशाख मे, ७३ वर्ष की आयु मे, परलोक-गामी हुए।

उदाहरण

(१)

वन्दौ बानी बुद्धिबर बैदेही बर नाम।
बरबस बस जाके रहत, ब्रह्म निरंजन राम॥
बारन-बदन कृपा-सदन, कदन-बिषादि-कलेस।
बिघन हरन संसय-दरन, बन्दौ चरन गनेस॥
बुधिवर स्रुतिधर बरनवर, बरनायक बर दैन।
वन्दौ द्विजवर भद्रवर, बरनाच्छर बर बैन॥[4]

---

१. शीतलपुर गाँव के बाहर आपका बनवाया श्रीहनुमान्‌जी का मन्दिर आज भी विराजमान है। मन्दिर के एक पत्थर पर यह दोहा खुदा है—
"उनविसत औ विसपट शुभ सवत अनुमान। कृत मन्दिर भगवत शरन अस्थापित हनुमान॥"
इस मन्दिर के निकट श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण का एक मन्दिर पहले से बना हुआ था। ये दोनों मन्दिर भी एक सुन्दर तालाब के निकट आज वर्त्तमान हैं।—सं०

२. इस पुस्तक की एक प्राचीन प्रति, जो सन् १८७५ ई० में लीथो में छपी थी, स्व० बाबू दामोदर सहाय 'कविकिंकर' को मिली थी। इसी प्रति का अध्ययन कर उन्होंने अपना उक्त लेख 'गंगा' में लिखा था। इस पुस्तक का सम्पादन कविकिंकरजी ने भी किया था, जो प्रकाशित नहीं हो सकी। इस पुस्तक का विषय रामायण की कथा है, जो अयोध्या से प्रारम्भ न होकर लंका से प्रारम्भ होती है। इस विषय के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन के लिए देखिए, 'गंगा' (वही), पृ० ७७२-७७।

३. इस पुस्तक को गौरीशंकर लाल नामक एक सज्जन ने प्रकाशित कराया था। इसे भी देखने का सौभाग्य 'कविकिंकरजी' को प्राप्त हुआ था। उनके कथनानुसार इस पुस्तक में 'सोलहो शृंगार और बारहों आभरण' का वर्णन बड़ी सुन्दर कविता में किया गया है। —देखिए, वही, पृ० ७७८।

४. वही, पृ० ७७१।

(२)

सुनि आज्ञा हंकार राय विधिनायक निसिचर।
इरषा तेल बटोरि बोरि सठताई बसतर॥
साहस लूम विराग निशाचर रचि रचि बाँधे।
चहुँ दिसि नगर फिराइ बहुरि बिरहानल साँधे॥
लायो अनल गढ़ लंक वपुष आबरन समेता।
सहित ईषना अटा झरोखा मन्दिर जेता॥
पंच कोस खट कोस जड़ित कंचन मनि काँचे।
जरै सकल पै एक जीव आतम-गृह बाँचे॥[१]

*

राधावल्लभ जोशी[२]

आपका उपनाम 'विप्रवल्लभ' था। आपकी रचनाओं मे आपका यही नाम मिलता है, कही-कहीं 'वल्लभविप्र' और 'वल्लभ' नाम भी मिलते हैं। अपने निवास-स्थान पर आप 'काकाजी' के नाम से प्रसिद्ध थे।

आप डुमराँव (शाहाबाद)-निवासी गौड़ ब्राह्मण थे। आपका जन्म सं० १८८८ वि०(सन् १८३१ ई०) में ज्येष्ठ-शुक्ला चतुर्दशी (शुक्रवार) को हुआ था।[३] आपके पितामह का नाम पुष्कर्राम जोशी और पिता का नाम काशीराम जोशी था।[४] काशीरामजी महाराज महेश्वरबख्श सिंह (सन् १८४३-८१ ई०) के निजी शिवालय के पुजारी थे। आप अपने पिता के कनिष्ठ पुत्र थे। आपके अग्रज व्रजकिशोर जी 'वड़ावाग' के शिवालय

१. 'गंगा' (वही), पृ० ७७४-७५।

२. आपका विस्तृत जीवन-परिचय, आपके जीवन काल में ही कलकत्ता से प्रकाशित 'देवनागर', (मासिक, तुला, ५००९ कल्यब्द सं० १९६४ वि०, वत्सर १, अंक ७ में, प्रो० अक्षयवट मिश्र ने लिखा था। —देखिए, वही, पृ० २६०-६५। श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त ने भी आपका अतिसंक्षिप्त परिचय 'गृहस्थ' में प्रकाशित कराया था। देखिए, 'गृहस्थ' (वही, भाग १९, अंक २१, गुरुवार, ३० जून सन् १९६२ ई०), पृ० १६४-६५।

३. 'देवनागर' (वही), पृ० २६२।

४. आपके पूर्व-पुरुष जयपुर से नव कोस पच्छिम बगरू नामक ग्राम के निवासी थे। इसी कारण वे 'बगड़-

के पुजारी के रूप में नियुक्त थे।[1] आप की दो बहनें भी थी—सुशीलादेवी[2] और ललितादेवी।[3] आपके एकमात्र पुत्र मथुराप्रसादजी[4] ज्योतिष के प्रकांड विद्वान् थे।

आपने अपने बाल्यकाल से ही वेदो का अध्ययन आरम्भ किया। वेदों के अध्ययन के पश्चात् आप व्याकरण, कोश, काव्य, छंद, अलंकार आदि का अध्ययन करते रहे। आपका आरम्भिक अध्ययन आपके पिता काशीराम के निर्देशन में हुआ। आगे चलकर व्याकरणादि के अध्ययन में पं० वंशीधरजी आपके सहायक हुए। आपको हिन्दी मे कविता करने की परिपाटी मगध के प्रसिद्ध कवि गोविन्ददेवजी[5] ने सिखलाई। उन्ही से आपने नागराज-कृत 'प्राकृत-पिंगल' का अध्ययन किया।

आप संस्कृत, प्राकृत और व्रजभाषा के मूर्द्धन्य विद्वान् थे। आपका प्राकृत-ज्ञान तो इतना विशाल था कि अनेक छात्र दूर-दूर से आपसे पढ़ने आया करते थे। आपके छात्रो

भट्ट' कहलाते थे। आपके प्रपितामह पं० विजयरामजी थे, जो एक ज्योतिषी के रूप में विख्यात थे। जयपुर के प्रसिद्ध राजा जयसाह ने इन्हें प्रचुर वृत्ति देकर अपना पुरोहित नियुक्त किया था। पं० विजयरामजी के तीन पुत्र हुए —पं० सुखदेवराम, पं० पुष्करराम, और पं० विष्णुदेवरामजी। कहते हैं, पुष्करराम जी, जो आपके पितामह थे, अपने पुत्र काशीरामजी को लेकर अपनी जन्मभूमि से जगदीशधाम (पुरी) की यात्रा के लिए पैदल ही निकल पड़े। जब वे जगन्नाथजी के दर्शन कर डुमरॉव होते हुए लौटे जा रहे थे, तब भोजपुराधीश महाराजा महेश्वरबख्श सिंह (सन् १८४३-८१ ई०) से उनकी भेंट हो गई। पुष्कररामजी राधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे। एकतारा लेकर बड़े प्रेम से अत्यन्त मधुर भजन गाते थे। महाराज उनके इसी गुण पर मुग्ध हो गये और उन्हें भूमि, भवन, वाटिका, मंदिर आदि अनेक प्रकार के जीविका-साधन देकर अपनी राजधानी (डुमरॉव) में रख लिया। आपने अपना छन्दोबद्ध परिचय इस प्रकार दिया है—

> भरद्वाजऋषि के सुगोत्र विषे आदि गौड़, वेद यजु शाखा माध्यन्दिनि शुचि खानिये।
> यज्ञउपवीत मध्य राजत प्रवर तीन, सत है सुपथ देस देस ही सुमानिये।
> शुभ कुलदेवी पर्णशासिनी विचित्र चैत्र, आश्विन की पूर्णिमा में पूजन प्रमानिये।
> शासन भगवद्भट्ट पदवी है जोयसी की, परिचय हमारो आप याही विधि जानिये॥

—देखिए, 'आत्मचरित-चन्द्र' (वही), पृ० ४४,७३, तथा ७४, और 'देवनागर' (वही), पृ० २६१-६२।

१. इनके दो पुत्र हुए—रामकिशोर भट्ट और कृष्णकिशोर भट्ट। इनमे प्रथम, जो कवि भी थे, विवाहित होकर कुछ ही दिनों के पश्चात् स्वर्गवासी हो गये। द्वितीय का देहांत उसके बाद ही हो गया।—सं०

२. ये पं० श्यामलालनन्दजी से ब्याही गई थी, जो मुर्शिदाबाद की रानी स्वर्णमयी के दरबार में ज्योतिषी थे।—सं०

३. इनका विवाह काशी के भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के सुहृद पं० मन्नालालजी के, जो बरवै छंद के सिद्धहस्त कवि थे, द्वितीय पुत्र उमाप्रसाद उपाध्याय के साथ हुआ था।—सं०

४. इन्होंने ज्योतिष के अनेक ग्रंथ लिखे थे, जिनमें 'प्रश्नपंचानन' प्रसिद्ध है। कहते हैं, अपने एक ग्रंथ में इन्होंने सौ वर्षों के ग्रहणों का काल तथा पुरुषोत्तम मासों का साल-संवत् सौ वर्ष पहले ही लिख दिया है। ये प्रो० अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र' के पिता पं० रामेश्वर मिश्रजी के परमप्रिय मित्र थे।—सं०

५. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

में प्रमुख थे—पं० अम्बिकादत्त व्यास[१], अजानकवि[२], ठगमिश्र[३], रामकिशोर भट्ट[४], प्रो० अक्षयवट मिश्र[५] आदि।

आप सचमुच एक महापुरुष थे। महापुरुषों में जो भी गुण अनिवार्य होते हैं, वे सभी आपमें वर्त्तमान थे। आपका चित्त सदा देवाराधन, देशभक्ति, समाज-सुधार, दीन-रक्षा तथा परोपकार में लगा रहता था। उदार भी आप एक ही थे। शरणागत-वत्सलता तो आपमें पूर्णरूपेण वर्त्तमान थी। विचार-स्वातंत्र्य आपका एक प्रमुख गुण था। इस अर्थ में आप बड़े निर्भीक थे। जिन महाराजाओं के आश्रित और प्रतिपालित थे, उनसे भी उचित कहने में आप तनिक भी संकोच का अनुभव नही करते थे। अपने जीवन-भर आप डुमरॉव-दरबार में ही रहे। केवल एक बार जब अपने पूर्वपुरुषों की जन्मभूमि (बगरू-जयपुर) की यात्रा के सिलसिले में निकले, तब सत्रह दिनों के लिए अयोध्या-नरेश महाराज प्रतापनारायण सिंह के आग्रह पर उनके यहाँ ठहरे थे। उन्होंने भी आपका आशातीत सत्कार किया था।

आप डुमराँव-नरेश महाराज सर राधाप्रसाद सिंह (सन् १८८१-६४ ई०) के आश्रित थे। पहले आपकी नियुक्ति बिहारीजी राधाकृष्ण-मंदिर) के पूर्व-भाग-स्थित शिवालय के पुजारी के रूप में हुई थी। आगे चलकर आप दरबारी कवि और पंडित के रूप में भी नियुक्त हुए। आपकी कविता बहुत ही सरस एवं सुन्दर होती थी। इसी कारण महाराज ने आपको पुरस्कृत भी किया था।[६] समस्यापूर्त्ति करने में भी आप बड़े सिद्धहस्त थे। कहते हैं,

१. इनके पिता पं० दुर्गादत्त जी के सगे ममेरे भाई होने के कारण आप इनके पितृव्य होते थे।
२. इनका परिचय इस पुस्तक के अगले खंड (१९वीं शती उत्तरार्द्ध) में द्रष्टव्य है।
३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।
४. ये आपके अग्रज व्रजकिशोरजी के ज्येष्ठ पुत्र और कवि भी थे, पर युवावस्था में ही इनका देहान्त हो गया।—सं०
५. इन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में स्वयं ही लिखा है—"और लोगों की देखादेखी हिन्दी-काव्य सीखने की मेरी अभिलाषा हुई। तब महाराज के दरबारी कवि पं० राधावल्लभ जोयसी (विप्रवल्लभ कवि) से श्रुतबोध पिंगल (संस्कृत-ग्रंथ) जगद्विनोद, भाषाभूषण, नागराज-रचित प्राकृतपिंगल पढ़ी। छन्द-रचना की प्रक्रिया भी इन्होंने सिखलाई।"—'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० ४४। "मुझे भी भाषा विषय का जो कुछ ज्ञान है, वह सब इन्हीं के चरण-कमलों की पवित्र धूलि की महामहिमा का फल है।"
—'देवनागर' (वही), पृ०२६२।
६. एक बार आपने एक कविता पर पुरस्कार प्राप्त किया था, जिसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

आबन के आब औ रुचिरताई के निलय,
सुखमा के आकर पयोद मन मौज के।
नेह के निधान औ बिधान पतिदेवन के,
गुन के वजीर औ मुनीम चित्त चोज के॥
मीनन के राज सिरताज हरिनीनन के,
'बल्लभ' नयन ये प्रधान रति-फौज के।
लाज के जहाज महराज सुभ कंजन के,
खंजन के नायब मुसाहिब मनोज के॥

—'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० १०।

डुमरॉव-राजधानी में आपके द्वारा हिन्दी-कविता का पर्याप्त प्रचार हुआ। आपने निम्न-लिखित ग्रंथों की रचना की थी, इनमें से अधिकांश आपके जीवन-काल में ही प्रकाशित हो चुके थे—(१) रसिक-रंजन-रामायण[1], (२) रसिकोल्लास भागवत[2], (३) अंगरत्नाकर[3], (४) विजयोत्सव[4], (५) कृष्णलीलामृतध्वनि[5], (६) अमृतलतिका[6], (७) गंगामृततरंगणी (८) वल्लभ-श्रुतबोध, (६) वल्लभ-विनोद, (१०) वल्लभोत्साह, (११) जैपुर-जलूस, (१२) खड्गवली और (१३) भाषाश्रुतबोध[7]।

आप सं० १९५८ वि० (सन् १९०१ ई०) में परलोक सिधारे।

उदाहरण

(१)

कालिंदी के कूलनि कदंबन की डारन में
डार्‌यो है सुरंग झूलो रेसम के डोरे में।
कहै 'बिप्रबल्लभ' यों सावन सुहावन में
आय गई आली छोटी बूँदन-झकोरे में॥
लै लै मकरंदन को सुमन सुगंधन को
बहै पुरवाई सुखदाई कुंज कोरे में।
हँसी-हँसी आली ह्वाँ झुलावैं मोद फँसि-फँसि
स्यामा-स्याम झूलैं तहाँ हेम के हिंडोरे में॥[8]

---

१. इसमें कवि की अपनी कविताओं के साथ अन्य कवियों की कविताएँ भी इस प्रकार संगृहीत हैं कि कथा-भाग कहीं से नहीं टूटता। ऐसा जान पड़ता है कि सभी कवियों ने सम्मिलित रूप से इसकी रचना की है। —सं०।

२. इसकी शैली भी 'रसिक-रंजन-रामायण' की तरह ही है।

३. इसमें नायिका के शरीर के सभी अंगों का वर्णन दोहा-छन्द में किया गया है।

४. इसमें श्रीरामचन्द्र की विजयादशमी के उत्सव का वर्णन दोहा, चौपाई और भुजंगप्रयात छंदों में किया गया है।

५ इसमें अमृतध्वनि-छंदों में श्रीकृष्णलीला वर्णित है।

६. इसमें पंचदेव, राधा, गंगा और श्रीकृष्ण की स्तुतियाँ हैं।

७ श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त ने उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त आपके और भी ग्रंथों की चर्चा की है। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) महिम्नस्तोत्र का हिन्दी-अनुवाद, (२) वीरोल्लास और (३) गंगा लहरी।
—देखिए, 'गृहस्थ' (वही), पृ० १६५।

८. 'समस्यापूर्त्ति' (जुलाई, सन् १८९७ ई०), पृ० १७।

(२)

उदधि मथैया कालोनाग को नथैया प्रभु,
द्रुपदसुता को बर चीर बढ़वैया है।
ब्रज उबरैया कर छिगुनी धरैया गिरि,
इन्द्र को झरैया मद बेल को सुभैया है।
मुरली ररैया मोर मुकुट लसैया सीस,
पाप को हरैया, धर्मधुर को धरैया है।
नन्द को कन्हैया नन्दरानी को पिवैया दूध,
विश्व को भरैया 'बिप्रबल्लभ' सहैया है॥[1]

(३)

सोवत अटा पै इक नागरि नवेली अति,
रूप तिलउत्तमा ते उत्तम तुलै रह्यो।
उघरे उरोजन पै जाल सो प्रकाश पेखिवे,
भ्रमित अली को भ्रम बल्लभ सो मिटै रह्यो।
बदन भयंक अकलंक लखि गोखन तें,
अमरष तें कूद्यो अरी मेरे मन ठै रह्यो।
कठिन कुचोपरि चकि दूर तें गिर्‌यो यातें,
देखि यह चंद ताते टूक-टूक ह्वै रह्यो॥[2]

(३)

कर्ण अरज्जुन भीम युधिष्ठिर जीवित है इनते सुपतीजे।
साह अकब्बर बिक्रम औ बलि बावन पावन की सुध कीजै॥
'बल्लभ' खान महान जहान सबै मिलि या बिनती सुन लीजै।
कीरति के बिरवा कबि है इनको कबहूँ कुह्मिलान न दीजै॥[3]

---

१. 'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० ४७।
२. वही, पृ० ४८-४९।
३. 'देवनागर' (वही), पृ० २६१।

(५)

सुन्दर स्याम सुमेघ सो गात सुबिज्जु सो पीत पितांबर छाजै।
सीस लसै धनुइन्द्र किरीट, गरे बक पाँति-सी माल सुभ्राजै॥
बाजत किंकिनि नूपुर की धुनि ज्यो घन मंद सुमंदहि गाजै।
'बल्लभ' के द्दग में यह बल्लभ पावस सो नँद नन्द विराजै॥[1]

*

हरनाथप्रसाद खत्री

आपका जन्म सन् १८३१ ई० में, पटना-जिले के बिहारशरीफ नामक नगर (मुहल्ला आशानगर) के एक खत्री-परिवार में, हुआ था।[2]

आपके पिता का नाम बाबू पुच्छूलाल था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा बिहार-शरीफ में ही हुई। पटना के नार्मल-ट्रेनिंग स्कूल से पास होने के बाद क्रमशः छपरा, लालगंज, रोसड़ा तथा दरभंगा के मिडिल स्कूलों में कार्य करते हुए सन् १८८० ई० में आप मधुबनी के एक मिडिल स्कूल में हिन्दी-अध्यापक के पद पर आये और जीवन-पर्यन्त उसी पर कार्य करते रहे।

आपमें शैशव से ही विद्याभिरुचि थी। किन्तु साहित्य-रचना की सच्ची प्रेरणा आपको मधुबनी आने पर ही मिली और तभी से जीवन-भर आप निरन्तर लिखते रहे। हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, बँगला और अँगरेजी-भाषा का भी आपको अच्छा ज्ञान था।

आप एक बड़े ही लोकप्रिय और सदाशय शिक्षक थे तथा अनुशासन के क्षेत्र में आदर्श माने जाते थे। धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण बड़े ही विनम्र तथा मृदुभाषी भी थे। आपके दो पुत्र हुए—लक्ष्मीनाथ प्रसाद और शशिनाथ प्रसाद।

---

१. 'देवनागर' (वही), पृ० २६३।

२. आपके ज्येष्ठ पौत्र श्रीसिद्धिनाथ सहगल (रामकृष्ण कॉलेज, मधुबनी, दरभंगा) और उसी कॉलेज के प्रो० श्यामानन्द दास से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर। कुछ लेखक आपको मधुबनी (दरभंगा) का ही निवासी कह गये हैं, जो भ्रामक है।—देखिए, 'जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ' (वही), पृ० ६६७।

हिन्दी में आपने अनेक पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें अधिकांश बालोपयोगी ही हैं। उनमें प्रमुख हैं—(१) व्याकरण-वाटिका,[१] (२) गुरुभक्ति-दर्पण,[२] (३) बाल-विनोद,[३] (४) कन्या-दर्पण,[४] (५) मानव-विनोद,[५] तथा (६) वर्ण-बोध[६]।

आपका निधन सन् १९१० ई० में, २३ जुलाई, शनिवार, को ८ बजे प्रातःकाल हुआ।

उदाहरण

(१)

घट समुद्र लख ना पड़े, उठे लहर अपार।
गुरु नाविक समरथ बिना, कौन उतारे पार॥
मुझ औगुन है तुझ्झ गुन, तुझ गुन औगुन मुझ्झ।
जो मैं बिसरूँ तुझ्झको, तुम मत बिसरो मुझ्झ॥[७]

(२)

पितुगृह सिखवो चाहिये, शिल्पऽरु विद्या ज्ञान।
करिके पाक अनेक विधि, कन्या पावहु मान॥[८]

---

१. कुल २०० पृष्ठों के इस पुस्तक में हिन्दी-व्याकरण की सभी आवश्यक बातों का उल्लेख है। सन् १९१५ ई० में बिहार और उड़ीसा के शिक्षा-विभाग द्वारा हाई-स्कूलों के लिए यह स्वीकृत हुई थी। तब से बीस-पचीस वर्षों तक स्कूलों में इसका खूब प्रचार रहा। सन् १९०५ ई० के लगभग मैथिल-प्रिंटिंग-वर्क्स (मधुबनी) से सर्वप्रथम इसका प्रकाशन हुआ था। इसका तीसरा संस्करण सन् १९१५ ई० में हुआ।— सं०।

२. केवल १८ पृष्ठों की इस पुस्तिका के पूर्वार्द्ध में 'गुरु-माहात्म्य' है, जिसमें कबीर, तुलसी आदि संत-कवियों के गुरु-महिमा सम्बन्धी दोहे हैं। इसका उत्तरार्द्ध 'शिष्य-विनय' है, जिसमें गुरु-वन्दना-विषयक आपके स्वरचित सवैया, छप्पै, कुंडलियाँ, मनहर कवित्त और दोहे हैं। इसका प्रकाशन सर्वप्रथम सन् १८९५ ई० में खड्गविलास प्रेस, (पटना) से हुआ था।—सं०।

३. केवल २२ पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तिका की रचना आपने अनपढ़ लड़कों को पढ़ुआ बनाने के लिए की है। इसमें कुल चार अध्याय हैं। इन अध्यायों के बाद सात छोटे-छोटे पाठ हैं, जिनमें छोटे बच्चों को ईश-वन्दना, शिष्टता, अनुशासन, स्वच्छता आदि के उपदेश रोचक शैली में दिये गये हैं। इसका प्रकाशन सन् १९०० ई० के लगभग मैथिल-प्रिंटिंग-वर्क्स (मधुबनी) से हुआ था। इसका दसवाँ संस्करण सन् १९१२ ई० में हुआ।—सं०।

४. केवल ३७ पृष्ठों की इस पुस्तिका की रचना कन्याओं के हितार्थ की गई है। इसमें चार अध्याय हैं। इसका तीसरा संस्करण सन् १९२५ ई० में हुआ था।

५. केवल ७५ पृष्ठों की इस पुस्तक में भी चार ही अध्याय हैं, जिनमें लड़की के ब्याह से पुत्र-पालन तक की एक लम्बी रोचक कथा है। इसका प्रकाशन सर्वप्रथम सन् १८८४ ई० में 'बिहार-बन्धु' प्रेस (पटना) से हुआ था। इसे ही आप की सर्वप्रथम प्रकाशित कृति होने का श्रेय है। —सं०।

६. यह पुस्तक भी 'कन्या-दर्पण' की तरह अक्षरारम्भ करनेवाले बालकों के लिए उपयोगी है।

७. श्रीसिद्धनाथ सहगल (वही) से प्राप्त ('गुरुभक्ति-दर्पण' से)।

८. उन्हीं से प्राप्त ('कन्या-दर्पण' से)।

(३)

हे लड़के और लड़कियो! तुम्हें दो बातों का नित अभ्यास रखना चाहिये, एक विद्या पढ़ना, दूसरा परिश्रम करना, क्योंकि नित विद्या पढ़ने से ज्ञान और बुद्धि बढ़ती है और मेहनत करने से देह निरोग और बलवान रहती है।[१]

(४)

मनुष्य को उचित है कि अगर भाई बन्धुओं में झगड़ा हो तो उसे आपस में ही मिटा लें न कि नालिश करके दोनों घर बिगाड़ें।[२]

※

गणेशानन्द शर्मा

आप मुरार (गया) के निवासी श्रोत्रिय ब्राह्मण थे।[३] आपके पिता का नाम गुरुदयालु शर्मा था। सं० १८९० वि० (सन् १८३३ ई०) में आपका जन्म और सं० १९४० वि० (सन् १८८३ ई०) में माघकृष्ण द्वादशी को देहावसान हुआ था। आपका रचनाकाल सं० १९१२ वि० (सन् १८५५ ई०) माना गया है। आप संस्कृत और हिन्दी के कवि थे। आपकी दो पुस्तकें हैं—(१) ऋतुवर्णन और (२) नायिका-नायक-तत्त्व। स्फुट रचनाएँ भी हैं। आपकी रचनाओं का कोई उदाहरण नहीं मिला।

※

रामकुमार सिंह[४]

आपकी रचनाओं में आपका उपनाम 'कुमार' मिलता है।

आप शाहाबाद-जिले की सूर्यपुरा-रियासत के अधीश्वर और उसी जिले के डुमराँव-राज्य के दीवान थे।[५]

---

१. श्रीशिवनाथ सहगल (वही) से प्राप्त ('बाल-विनोद' से)।

२. उन्हीं से प्राप्त ('कन्या-दर्पण' से)।

३. 'गया के लेखक और कवि' (वही), पृ० ४१।

४. आपका प्रस्तुत परिचय श्रीजगदीश शुक्ल (सूर्यपुरा शाहाबाद) द्वारा लिखित परिचय के आधार पर तैयार किया गया है।—देखिए, 'नईधारा' (वही, वर्ष १०, अंक १०, जनवरी, सन् १९६० ई०), पृ० ५४-५६।

५. "सुप्रसिद्ध डुमराँव-राज्य की दीवानी का सम्बन्ध बहुत दिनों से आपके पूर्वजों में चला आता था, इसीसे आपके और आपके पूर्वजों के नाम के पहले 'दीवान' की उपाधि अवश्य लिखी जाती थी।"—'श्रीराजराजेश्वरी-ग्रंथावली' (राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे', प्रथम सं०, सं० १९९४ वि०), पृ० ६।

आपका जन्म शाहाबाद-जिले के 'सूर्यपुरा' नामक प्रसिद्ध ग्राम में, सं० १८९० वि० (सन् १८३३ ई०) में हुआ था।[१] आपके माता-पिता तथा अग्रज का देहान्त आपकी बाल्यावस्था में ही हो गया। आपको असहाय एवं अकेला जानकर आपके शत्रुओं ने आपके प्राण भी लेने के अनेक प्रयास किये, किन्तु असफल रहे।[२] आपके एकमात्र पुत्र राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह ('प्यारे' कवि)[३] ब्रजभाषा के परमोत्कृष्ट कवि हुए। हिन्दी के वर्त्तमान प्रख्यात कथाकार राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह[४] आपके ही पौत्र हैं।

आप बहुत ही गंभीर प्रकृति के एक विचारशील और धर्मनिष्ठ पुरुष थे। साथ ही बड़े विद्यानुरागी और शिव-पार्वती के अनन्य उपासक थे। प्राचीन काव्य एवं कवियों के प्रति आपके हृदय में अधिक आदर का भाव था। शान्त-रस की तथा भक्तिपरक रचनाएँ आपको विशेष प्रिय थी। आप स्वयं भी शान्त-रस एवं भक्ति-पक्ष के एक बड़े ही भावुक कवि थे। आपकी पुस्तकाकार कोई कृति नही मिलती, केवल स्फुट रचनाएँ ही मिलती हैं।

सं० १९३८ वि० (सन् १८८१ ई०) की चैत्र शुक्ल द्वादशी को अड़तालीस वर्ष की आयु में आप पक्षाघात से आक्रान्त हो अकस्मात् परलोकगामी हुए।

उदाहरण

(१)

जुगलछबि हो निरखत थाके नैन।
बृन्दाबन रमनीय सरद-निसि कोमल मलय समीर॥
मधुकर-निकर कराकुल मधुकुल कुसुमित बकुल गँभीर।
माधवि-मालति-माल-निकुंजन कोकिल कल बहु रंग॥
बिहरत जलद दामिनि-दुति जुग कर कर मिलि लपटि सोहात।
मर्कत-मनि-तरु मनहुँ लपटि रहि हेम-बेलि बिलसात॥

१. 'नईधारा' (वही) पृ० ५४।
२. आपने अपनी इस स्थिति का उल्लेख अपनी इन पंक्तियों में किया है—
'मातु पिता बर बन्धु सभी सुरधाम गये मोहि बालहिं त्यागी।
जानि अबोध अनाथ मोही रिपु-जुत्थ भये बध में अनुरागी।
सो दल नासि नेवाजि 'कुमार' हि गोद लगाय कियो बड़भागी।
काह भई करुणा वह मातु जो पालित बालक की सुधि त्यागी।
—श्रीराजराजेश्वरी-ग्रंथावली (वही), पृ० २१२।
३. इनका परिचय इसी पुस्तकमाला में यथास्थान द्रष्टव्य।
४. इनके पुत्र श्रीउदयराज सिंह भी हिन्दी के एक सफल कहानी-लेखक तथा उपन्यासकार हैं।

नील जलज किसलय अरुनाकृत जुग मुख सरस सुरङ्ग।
पिअत अलोल अनोन्य सरस्मित जुग लोचन जुग भृंग॥
व्यापित ससि-दुति कबि द्रुम-रन्ध्रन जुगपद जुगल कृतंक।
मनहुँ निरखि रबि छित बहु बपु धरि मिलत निसंक मयंक॥
यह सोभा राधा-माधव की नूतन रहस बिलास।
अति अभिराम 'कुमार' जुगल ससि बसि हिय करहु प्रकास॥[1]

(२)

जयति गिरिकिसोरि मातु भवनिधि को तरनी॥
चन्द्रबदनि चन्द्रमाल सहस चन्द्र बाल माल।
चन्द्रकला-सी रसाल त्रिबिध ताप-हरनी॥
षन्मुख मुखपञ्च चार अतुलित महिमा बिचार।
चकित थकित भ्रमित सहससीस नमित धरनी॥
आदि-मध्य-अन्त-रहित बरनत गति बेद थकित।
मूलप्रकृति ज्योति-रूप देव-दनुज-सरनी॥
षन्मुख-हेरम्ब-अम्ब दारिद-दुख-कुल-कदम्ब।
मेरी अवलम्ब अम्ब शंकर-प्रिय-धरनी॥
हौ 'कुमार' अति अबोध नेकहुँ नहि पद-प्रबोध।
केवल पद-आस मातु सुत-प्रमोद-करनी॥[2]

(३)

तन में मन में इन नैनन में कमला सुभ मूरति आइ बसे।
कहिबे सुनिबे गुनिबे में वही पद-पंकज को महिमा दरसे।
बर माँगत हौ कर जोरि यही बिनसे दिल से मति और नसे।
सरसे बरसे रसना गुन को पद को सिर से कर से परसे॥[3]

१. 'श्रीराजराजेश्वरी-ग्रन्थावली' (वही), पृ० २१३।
२. वही, पृ० २१२।
३. वही, पृ० २११।

(४)

हरि ते न छुटो हर ते न मिटो बिधि ते न घटो दुख दारुन भारी।
बहु धाय थक्यो हिय हारि गिर्यो छुधितातुर द्वार तेरे हरि-प्यारी।
लघु बालक द्वार पुकार करै करुणा-रस-सागर आयु बिचारी।
पथ अमृत-पान ते पालिये मातु 'कुमार' हि गोद लगाय निहारी॥[1]

(५)

सेइ उमा-पद-पंकज को जग जीवन को सुख लाहु लहो रे।
जो बिधि बिस्नु महेसहि पालत सो पद को रज सीस धरो रे।
जोग न जाप न ज्ञान कछू करुना-रस के बस आस गहो रे।
मूल बिभूतिनि ब्रह्मस्वरूपिनि रूप-सुधारस पाइ जियो रे॥[2]

❋

रामचन्द्र लाल[3]

आपका उपनाम 'गुनहगार' था, जो आपकी रचनाओं में मिलता है।

आप शाहाबाद जिले के 'डुमराँव' नामक नगर के निवासी थे।[4] आपका जन्म सन् १८३४ ई० के अगहन में हुआ था।[5] आपके पिता का नाम प्राणपति लाल और पितामह का मुंशी रामसहाय लाल था। आप सरल स्वभाव के एक बड़े ही कार्यदक्ष पुरुष थे। आप हिन्दी के अतिरिक्त फारसी के भी एक अच्छे विद्वान् थे। आपने धर्मग्रंथों का भी अध्ययन किया था। हिन्दी में पुस्तकाकार प्रकाशित आपकी कोई रचना नहीं है। कुछ स्फुट रचनाएँ ही उपलब्ध हैं।[6] आपका निधन सन् १७०३ ई० के अगहन में हुआ था।

---

१. 'श्रीराजराजेश्वरी-ग्रंथावली' (वही), पृ० २११।

२. वही।

३. आपका परिचय बाबू शिवनन्दन सहाय (वही) द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर तैयार किया गया है।

४. आपके पूर्वज बलिया (उत्तरप्रदेश) के हल्दी-राज्य में काम करते थे। उस राज्य की अवनतावस्था के कारण सन् १८५७ ई० के सैनिक विद्रोह के समय आपके पिता सपरिवार डुमराँव (शाहाबाद) चले आये। वे बड़े ही धर्मपरायण पुरुष थे और शताधिक आयु भोगकर स्वर्गवासी हुए। कहते हैं, अंतिम क्षण तक उनकी शारीरिक शक्ति का ह्रास नहीं हुआ था।—बाबू शिवनन्दन सहाय द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

५. आपके बनाये दो सौ भजन आपके पौत्र श्रीरामजी को प्राप्त हुए हैं, जिन्हें वे प्रकाशित करनेवाले हैं।

६. बाबू शिवनन्दन सहाय (वही) द्वारा प्रेषित।

उदाहरण

(१)

जग में सिव सम नहि कोउ कृपाल। ढरि जात सेवक पर लखि बेहाल ॥
रीझत सम्भू दिए धतुर भाँग। होवत प्रसन्न बजाए गाल ॥
कर जोरत अघ हरत निमिष माँह। जन रच्छक शंकर भुआल ॥
हर भए दयाल दुख गए पताल। करि दिए निहाल त्रिनेत्र भाल ॥
'गुनहगार' तजि संसय अपार। बमभोला भजु सर्वकाल ॥[1]

(२)

मूढ़ मन करत कठिन कठिनाई।
यद्यपि सहत कष्ट अति दारुन तदपि न दुष्ट लजाई।
कोटि उपाय करौ करुनानिधि छुटत न हिय जड़ताई ॥
जब लगि नेह निगाह छोह कर होत न नाथ सहाई।
जात न विषय वासना मन कर अधिक-अधिक गरुआई ॥
दीपक माँहि पतंग परै जिमि देह-दसा बिसराई।
तिहि विधि काम-दीप के ऊपर परत है यह बरिआई ॥
'गुनहगार' त्रिपुरारि चरन भजु-तजु चित की बिकलाई।
सिवसंकर जब कृपा करहिंगे सकल तोर बनि जाई ॥[2]

(३)

हे हरि लो सुधि बेगि हमारी।
गोहरावत गए बीति बहुत दिन काहे मोहि बिसारी ॥
कर जोरे पर द्रवहु पलक महिं हरत कष्ट अघ भारी।
जानि पतित जो हमहिं बिसारो और पतित किन तारी ॥
अगुन मोर छमिए करुनानिधि आरत दीन बिचारी।
'गुनहगार' यह दास चरण के है बस सरन तिहारी ॥[3]

---

१. बाबू शिवनन्दन सहाय (वही) द्वारा प्रेषित।
२. उन्हीं से प्राप्त।
३. वही।

बैजनाथ द्विवेदी[१]

आपका जन्म सन् १८३८ ई० (सं० १८९४ वि०) के जनवरी अथवा फरवरी मास में टेकारी (गया) के तिहाईगंज मुहल्ले में हुआ था।[२]

आपके पिता का नाम पं० 'दिनेश द्विवेदी[३] तथा पितामह का पं० केशव द्विवेदी[४] था। आप जब कुल छ वर्ष के थे, तभी आपके पिता की मृत्यु हो गई। अतः, आपका लालन-पालन आपके पिता के शिष्य पं० गजाधर शुक्ल ने किया, जो आपके फुफेरे बहनोई थे। आगे चलकर आपने उन्ही से रस, रीति, पिंगल आदि का अध्ययन किया।

आपको अपने पिता की तरह पूर्ण रूप से टेकारी-दरबार का राज्याश्रय नही प्राप्त था, किन्तु टेकारी-राज के एक राजा मोदीनारायण सिंह की विधवा रानी अश्वमेधकुँवरि की आज्ञा से लिखे 'गया-गदाधर-वास-प्रकाश' नामक आपके एक ग्रन्थ की सूचना मिली है, जो अप्राप्य है। वस्तुतः, आपको बकसंडा (गया) के धनी जमीदार बाबू सीताराम[५] का आश्रय प्राप्त था। आप कभी-कभी देव (गया) और मकसूदपुर (गया) के राजाओं के यहाँ भी आते-जाते थे, पर उन दोनों से सम्बद्ध आपका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही होता।

आप 'हिन्दी की परवर्त्ती रीति-धारा के कवि थे', ऐसा कहा जाता है।[६] आपने यथाङ्कित दस ग्रन्थ रचे थे—(१) श्रीसीतारामाभरण-मंजरी[७], (२) नख-शिख[८],

१. आपका प्रस्तुत परिचय प्रो० अमरनाथ सिन्हा (गया कॉलेज, गया) लिखित 'कवि बैजनाथ द्विवेदी' शीर्षक लेख के आधार पर तैयार किया गया है। प्रो० सिन्हा को प्रस्तुत कवि से सम्बद्ध सामग्री बा० अवधबिहारी लाल लिखित 'दिनेश कवि और बैजनाथ कवि का जीवन-परिचय' (हस्तलिखित ग्रथ) से प्राप्त हुई है। —देखिए, 'शतदल' (अर्द्धवार्षिक, वर्ष १, अंक २, जनवरी, सन् १९६१ ई० तथा वर्ष २, अंक ३, मई, सन् १९६१ ई०), पृ० ७५-८० तथा पृ० ५२-५७।

२ वही, पृ० ७५।

३. इनका वास्तविक नाम पं० शिवदीन द्विवेदी था। इनका परिचय प्रस्तुत इतिहास के प्रथम खंड में प्रकाशित है।

४. इनके पूर्वज मूलतः बैसवाड़ा के निवासी थे। ये ही जीविका की तलाश में टेकारी (गया) आकर बस गये थे।

—देखिए 'साहित्य' (त्रैमासिक, वर्ष ११, अक ४, जनवरी, सन् १९६१ ई०), पृ० २८।

५. इनके पूर्वज टेकारी-राज में दीवान थे। इन्होंने बकसंडा नामक गाँव खुद खरीदा था। बाबू अवधबिहारी लाल ने अपनी काव्य-पुस्तक में इनके विषय में जो लिखा है, वह इस प्रकार है—"The author's grand father B. Sita Ram, resident of Mouza Baksanda was a big Zamindar of Gaya district, having properties in the districts of Patna and Monghyr also",

—देखिए, 'शतदल' (वही, वर्ष २, अंक ३, जनवरी, सन् १९६१ ई०), पृ० ५३।

६. 'शतदल' (वही, वर्ष १, अंक २, जनवरी सन् १९६१ ई०), पृ० ७५।

७. यह छ परागों में विभक्त एक अलंकार-ग्रन्थ है, जिसमें कवि केशव की परम्परा का अवलबन किया गया है। इसकी रचना आपने स० १९२१ वि० में अपने आश्रयदाता बाबू सीताराम की आज्ञा से की थी।

८. इसका वर्ण्य विषय नायक-नायिका का नख-शिख है। इसकी रचना वैशाख कृष्ण, (बुधवार) स० १९२२ वि० को हुई थी।

(३) रामरहस्य[1], (४) वृत्त-निदोष-कदम्ब[2], (५) वाम-विलास[3], (६) उद्दीपन-शृंगार-मंजरी[4], (७) अनुभव-उल्लास[5], (८) चित्राभरण, (९) पंचदेवता-वंदन-चालीसा[6] तथा (१०) भूषणचंद्रिका।

उदाहरण

चन्द्र चाँदनी चमक की, चूर-चूर ह्वै जात।
राम अंगुलिन नष अभा, जव पूरन दरसात॥
बीति गयो दिन माझ अब, तजहु मानिनी रोष।
अस्मर कर तरवार धरि, तोरत मानो कोष॥[7]

*

नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह[8]

आपका उपनाम 'ईश'[9] था।

आपका जन्म इतिहास-प्रसिद्ध बाबू कुँवरसिंह के राजवंश में, उन्हीं की राजधानी जगदीशपुर (शाहाबाद) मे, सं० १८९६ वि० (सन् १८३९ ई०) की आश्विन-पूर्णिमा को, अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण (धनुलग्नोदय) में हुआ था।[10]

---

१. यह दो विलासों में विभक्त एक रस-ग्रन्थ है। वर्ण्य विषय राम-चरित्र से सम्बद्ध है।

२. यह तीन प्रसूनों में विभक्त एक रीति-ग्रन्थ है, जिसमें काव्य-दोषों की चर्चा की गई है। इसके विषय प्रतिपादन में भी केशव की परम्परा अपनाई गई है। इसकी रचना सं० १९२३ वि० की श्रावण शुक्ला पञ्चमी, (बुधवार) को हुई थी।

३. पाँच अध्यायों में विभक्त इस ग्रन्थ में नायिका-भेद से सम्बद्ध विषयों की चर्चा है। इसकी रचना स० १७३४ वि० में हुई थी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गया के मन्नूलाल पुस्तकालय में है।
—देखिए, काव्य ५३।

४. यह एक उद्दीपन-विभाव से सम्बन्धित रीति-ग्रन्थ है, जिसमें रसेतर उद्दीपनों पर विचार नहीं किया गया है। इसकी रचना स० १९२४ वि० की ज्येष्ठ शुक्ल दशमी (सोमवार) को हुई थी।

५. तीन खण्डों में विभक्त इस ग्रन्थ में अनुभाव, सचारीभाव तथा शृंगाररस का विवेचन हुआ है। इसकी रचना स० १९२४ वि० को कार्त्तिक कृष्ण षष्ठा को हुई थी।

६. यह आपकी अन्य रचनाओं से भिन्न एक भक्ति-सम्बन्धी रचना है। इसकी रचना आपने अपने आश्रयदाता के ज्येष्ठ पुत्र गुरुबखशलाल की प्रेरणा से की थी।—सं०

७. 'शतदल' (वही), पृ० ७८-७९।

८. आपका परिचय श्रीरामप्रीत शर्मा 'प्रियतम' (प्रधान मन्त्री, नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा) लिखित आपकी जीवनी के आधार पर तैयार किया गया है।
—देखिए, 'साहित्य', वही, वर्ष ३, अंक १ अप्रैल, सन् १९५२ ई०), पृ० ६०-६८।

९. इस नाम के एक और कवि १८वीं शती में हो गये हैं, जो मिथिला-निवासी और महाराज नरेन्द्र सिंह (सन् १७४४-६१ ई०) के दरबारी कवि थे। उनकी एक पुस्तकाकार-रचना 'नरेन्द्र-विजय' नाम से मिलती है।—देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १०३-४।

१०. वही। बाबू कुँवरसिंह से आपको पुरस्कार-स्वरूप तलवार एवं दुशाला प्राप्त हुआ था। दोनों वस्तुएँ आपके वंशधरों के पास आज भी वर्त्तमान हैं।—सं०

आपके पितामह का नाम बाबू तेगबहादुर सिंह, पिता का नाम बाबू तुलसीप्रसाद सिंह[१] और माता का नाम श्रीमती पनवासकुँवरि[२] था। आप अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। आपके अग्रज का नाम भुवनेश्वरप्रसाद सिंह था। आपका विवाह सारन-जिले के 'पतारि' नामक ग्राम में श्रीमती धर्मराजकुँवरि से हुआ था। आपके तीन पुत्र[३] और दो कन्याएँ थी। जगदीशपुर के पास ही दलीपपुर में आपका गढ़ है।

आप बचपन से बड़े होनहार और कुशाग्रबुद्धि थे। अमरकोश, सारस्वतचन्द्रिका, सिद्धान्तकौमुदी आदि कंठस्थ करने के बाद आपने संस्कृत के काव्यों, पुराणों और धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया। साथ-ही-साथ अरबी, फारसी और हिन्दी की शिक्षा का क्रम भी चलता रहा। इसके बाद आपने पिङ्गल, रस, अलंकार आदि शास्त्रों के अनुशीलन का भी अभ्यास किया। विद्याध्ययन के अतिरिक्त आपने अस्त्र-शस्त्र-संचालन और घुड़सवारी में भी पर्याप्त दक्षता प्राप्त कर ली।

जब आप नवयुवक थे, तभी सन् १८५७ ई० के सैनिक-विद्रोह का आरम्भ हो गया। विद्रोह के पश्चात् आपने अँगरेजी भाषा एवं साहित्य का भी अध्ययन किया। आप एक विद्याव्यसनी रईस[४] और एक कुशल चित्रकार भी थे। आपका बनाया हुआ शेर बब्बर का चित्र अबतक आपके वंशधरों के पास है।

प्राचीन ग्रंथों के संग्रह की ओर आपकी विशेष रुचि थी; इसी कारण आपका संग्रहालय बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। डुमराँव (शाहाबाद) के पण्डित नकछेदी तिवारी को आपने अपने संग्रहालय से कई प्राचीन अप्रकाशित ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ प्रकाशनार्थ दी थीं।[५]

आप हिन्दी के एक कुशल कवि थे। सिपाही-विद्रोह के बहुत दिनों बाद देश में पूर्ण शान्ति स्थापित होने पर आप काव्य-रचना करने लगे। यों तो आप किशोरावस्था में भी काव्य-रचना किया करते थे, पर उन दिनों की परिपाटी के अनुसार छन्दःशास्त्र

---

१. ये मालवा (मध्यप्रदेश) के अंतिम राजा संग्रामशाह के पुत्र शान्तनुशाह से चौदहवीं पीढी में हुए थे। बड़े अध्ययनशील विद्वान् थे। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और फारसी भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार था।—सं०

२. ये हथिनी-बरॉंव ग्राम (सासाराम, शाहाबाद) के एक प्रतिष्ठित जमींदार की कन्या थीं।

३. इनमें ज्येष्ठ पुत्र बाबू विश्वनाथप्रसाद सिंह के प्रथम पुत्र श्री दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह ने आपसे ही वंशानुगत साहित्यानुराग पाया है —स०

४. मैंने आपका दरबार देखा था। उस राजसी दरबार में साहित्यानुरागी विद्वानों और गुणियों तथा कलावन्तों का जमघट दर्शनीय था। मैं अपने बड़े बहनोई मुंशी कालिकाप्रसाद के गुरु प० धनजय पाठक के साथ अपनी किशोरावस्था में कई बार आपके यहाँ गया था। पाठकजी आपके दरबारी पंडित थे। आपके दरबार में अधिकतर काव्यपाठ और साहित्य-चर्चा हुआ करती थी। समस्या-पूर्त्तियाँ भी होती थीं। शतरंज का खेल, संगीत, वाद्य, आल्हा, शास्त्रीय प्रसंग, काशीनरेश-वाले हिन्दी-महाभारत का पाठ, काव्यलक्षण-विवेचन आदि वहाँ प्रायः हुआ करते थे।—स०

५. मुबारक कवि के 'अलक-शतक' और 'तिल-शतक' नामक प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथों को तिवारीजी ने आपसे ही लेकर भारतजीवन प्रेस (काशी) से निकाला था। भूमिका में उन्होंने यह स्वीकार भी किया है।—स०

का अध्ययन-मनन कर लेने के बाद ही काव्य-सृष्टि करने की परम्परा थी। अतः, आपके वास्तविक प्रौढ रचना-काल का श्रीगणेश सं० १९३२ वि० (सन् १८७५ ई०) से ही हुआ। इसी वर्ष की वसन्तपंचमी (सोमवार) को आपका 'शिवाशिवशतक'[1] नामक काव्य की रचना समाप्त हुई थी और इसके एक वर्ष बाद 'शृंगारदर्पण'[2] की। इन रचनाओं के अतिरिक्त आपकी अन्य दो रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—'धर्मप्रदर्शनी'[3] और 'पंचरत्न'।[4] इन पुस्तकाकार रचनाओं के साथ आपकी बहुत-सी स्फुट शृंगार-रसात्मक रचनाएँ भी, तत्कालीन समस्यापूर्त्ति-सम्बन्धी पत्रिकाओं में उपलब्ध होती हैं। आपकी कुछ भोजपुरी-रचनाएँ भी पुराने कागजों में मिली हैं। आपके काव्य-गुरु मुंशी ठाकुरप्रसाद 'जगदीशपुरी' थे। सं० १९७० वि० (सन् १९१५ ई०) की फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को लगभग ७६ वर्ष की आयु में आपका देहान्त हुआ था।[5]

उदाहरण

(१)

सरद घटा के सँग चपला छटा है
कैधों घनसार माँह कैधों केसर लकीर है।
कैधों सत्ययुग माँह द्वापर की सीव सोहै
कैधो हास्य संग ही किरिन रसवीर है।

---

१. इस पुस्तक में शिव-पार्वती-स्तुति-सम्बन्धी एक सौ कवित्त और सवैये हैं। यह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'कवि-वचन-सुधा' नामक पत्रिका (काशी) में सं० १९३२ वि० में 'शैवशाक्त-मन-रंजिनी' नाम से सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी। फिर, डुमराँव (शाहाबाद) के प० नकछेदी तिवारी 'अजान कवि' ने उसे 'शिवाशिवशतक' नाम से सन् १८९८ ई० में काशी के भारतजीवन प्रेस से प्रकाशित किया।—सं०

२. इसमें बरवै छन्दों में नख-शिख वर्णन है। इसे दलीपपुर-निवासी प० धनंजय पाठक ने, जो आपके अंतरंग दरबारियों में थे, सन् १८८६ ई० में दानापुर के सेंट्रल प्रेस से छपवाकर निकाला था।

३. लगभग ३०० पृष्ठों का यह एक आदर्श नीति-ग्रंथ है। यह भारत-सम्राट् सप्तम एडवर्ड को समर्पित है। इसमें लिखे आपके मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक निबन्ध बड़े अनूठे हैं। इसी ग्रंथ से आपकी स्वाध्यायपरायणता, मननशीलता तथा आंग्ल-भाषा के विशेष अध्ययन का परिचय प्राप्त होता है। स० १९०६ वि० (सन् १९१० ई) में पहले-पहल यह पुस्तक बम्बई के श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस से छपकर प्रकाशित हुई थी; किन्तु इसकी रचना उससे पहले ही हो चुकी थी, जब हिन्दी में सुचिंतित निबन्धों की बड़ी कमी थी। इसके अंत के उन्नीस पृष्ठों में आपकी भक्ति वैराग्यपूर्ण कविताएँ भी संगृहीत हैं। —सं०

४. इस ग्रन्थ की रचना आपने अपने जीवन के अंतिम दिनों में की थी, इसी कारण इसका प्रकाशन नहीं हो सका। इसके पाँच तरग हैं—प्रथम तरग में देवस्तुति, द्वितीय में रासविलास-वर्णन, तृतीय में समस्या-पूर्त्तियाँ, चतुर्थ में ऋतु-वर्णन और पचम में भक्ति-वैराग्यपूर्ण भजन हैं। प्रथम तरग में 'श्रीबिहारी नवरत्न' शीर्षक के अन्दर जो कवित्त हैं, वे बाबू रामशरण सिंह (सुखसागर कवि) की 'चित्तविनोदिनी' नामक पुस्तक में, जो स० १९५७ वि०(सन् १९०० ई०) में भारतजीवन प्रेस (काशी) से प्रकाशित हुई थी—संगृहीत होकर छप चुके हैं।—सं०

५. कुछ विद्वानों के अनुसार आपका निधन सं० १९७१ वि० (सन् १९१५ ई०) की फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को हुआ था।—देखिए, 'माधुरी' (वर्ष ५, खंड २, सख्या ६, ६ जुलाई, सन् १९२७ ई०,) पृ० ८४४।

मलय सों मिली है कैधों चम्पक की लतिका
यों ईश्वर प्रसाद शिवा शिवकी न जोर है।
देवगुरुदिप्ति कला मसि पै परी है कैधों
रजत अहा सों लगी कंचन-जंजीर है ॥[१]

(२)

कैधों लोक-लोक में कपूर धूरि पूरि रही
कैधों ए चमेलिन की अवली बरसति है।
कैधों सची-हास को प्रकास दस दिसि फैलो
कैधों यह छीरधि की छन्दै दरसति है।
ईश्वरप्रसाद हिममयी सब देखि परै
कैधों चन्द-किरिन-समूह सरसति है।
कैधों अमीरस सों लिप्यौ है पंचभूत
कैधों गिरिजा तिहारी प्यारी कीरति लसति है॥[२]

(३)

आरस में रस नीरस में पर के बस में सुबसै रहते में।
रोस में औ अपसोस में जोस में होस अहोस समय लहते में।
आस निरास अवास प्रवास में हास बिलास हिये चहते में।
बासर रैन बितीत हों मेरे सदाशिव 'ईश' शिवा कहते में॥[३]

(४)

तुम पावनि को करनो हौ अपावन ईश्वरी तू हम दीन खरो।
तुम तो जगतारनि हो जग में हम सोक-भरो तुम सोक-हरो।
सिसु 'ईस' प्रसाद हौ अम्बिका तू अधमाधिप हौं तुम दाया धरो।
अब और कछू कहते न बनै सरनागत हौ रुचे सोई करो॥[४]

---

१. 'शिवाशिव शतक' से, —देखिए, 'साहित्य' (त्रैमासिक, वर्ष ३, अंक १, अप्रैल, सन् १९५२ ई०), पृ० ६८।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

(५)

जग उपजैया मन मोद सिरजैया
सद्बुद्धि प्रगटैया तिहुँ ताप ते रितैया तू ।
दारिद दरैया कर्म-रेख को टरैया
मुनि-मानस रमैया पापी पावन करैया तू ।
ध्यान के धरैया हिम कंज बिकसैया
प्रभा-पुञ्ज पसरैया तम-तोम को नसैया तू ।
ए री जग मैया कौन दूसरो सहैया
परी भौर लाज-नैया याकी एक ही खेवैया तू ॥[1]

(६)

जनु निय तनु नापन हित मनसिज धीर ।
हास्य सिगार रउद्रहि किये जँजीर ॥ (लर संयुत वेणी)
बेनी पीठ सहित यों सुन्दरि बाम ।
ज्यों पुखराज-सिला पै साँपिनि स्याम ॥ (पीठ संयुत वेणी)
परि चिकनी पटिया पै मन बिछलाय ।
अलक छोर गहि लटकै नट लौं आय ॥ (माँग की पाटी)
अरुन सेत कारे रज सत तम ऐन ।
उतपति पालन लय के करता नैन ॥ (नेत्र-वर्णन)
चख चंचल बिच पूतरि सोहति स्याम ।
मनहुँ मीन बाहन पै राजत काम ॥ (पुतली-वर्णन)
रच्यो काम करिगरवा जबहि कपोल ।
बसि गइ तासु पुतरिया मनहुँ अडोल ॥ (कपोल-तिलक)
यह सुलालिमा गोरी गालनि नाहिं ।
पिय अनुराग झलक है दरपन माहि ॥ (कपोल की लाली)
नहि नागरि गर महियाँ हीरा हार ।
करत प्रदच्छिन ससि को नषत कतार ॥[2] (हीरा-हार-वर्णन)

---

१. 'शिवाशिवशतक'—(बा० नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह, प्रथम सं०, सन् १८९२ ई०) कवित्त २२, पृ० ७ ।
२. 'शृंगार-दर्पण' (वही प्रथम सं०, सन् १८८९ ई०), पृ०३,४,६, १२ और १९ ।

(७)

ईस तुम्हारे अंग में ब्रह्माण्डन के तोम।
ऐसे बिलसत हैं लसत ज्यों सरीर में रोम ॥
अपने में देखत नहीं ढूँढ़त बनन बजार।
बिलसत बालक गोद में डौड़ी नगर मँझार ॥
करौ अनेकन जोग जप तप मख पूजन दान।
वह जुलमी रीझत नहीं बिन आपा बलिदान ॥
जो जानत सो कहत नहि, कहत सो जानत नाहि।
बेद चरित ह्वै नेति कह, और कहै को ताहि ॥[1]

(८)

१. मैं बहुत दिन तक रोया, फिर हँसाने का इरादा वही करता है जिसने रुलाया। २. प्रेमियों की जुबानें आसमान पर और दुनियादारों के कान जमीन पर हैं, उनके प्रेम की बातों को ये कैसे सुन सकते हैं। ३. यह दुनिया तभी तक है जबतक परमेश्वर की प्रभा प्रेमियों के दिल में जगह नहीं करती जब वह प्रकाशित होती है तब रोशनी के साथ अँधेरा कैसे रह सकता है। ४. जबतक हम अपने दुश्मन को घर से नहीं निकालते दोस्त मेरा घर में नहीं आता है। ५. जब आराम चाहोगे तकलीफ़ सामने खड़ी है जब तकलीफ़ सहोगे आराम से सामना है। ६. मैं बहुत दूर था, मेरे साथियों ने मुझसे दूर होकर मुझको उसके समीप कर दिया। ७. वही मैं हूँ कि पहले दोस्तों में भी दुश्मनी का असर पाता था। अब दुश्मनों में भी दोस्ती को देखता हूँ। ८. सन्तोष से पराई चीज भी अपनी हो जाती है और लालच से अपनी हाथ की भी चली जाती है दूसरों के हाथ में। ९. अपथ्य खाना और दवा हकीम से मांगते रहना मूर्खता है ऐसे पापकर्म करना और क्षमा मांगना ईश्वर से। १०. हाथी का सिर पर धूल डालना स्थूल शरीर के मिट्टी में मिलने का उपदेश है। ११. ज्यों ज्यों सूर्य सीधा शिर पर आ जाता है अपनी छाया घटते-घटते अपने बदन में गायब हो जाती है ऐसे ही परमेश्वर के सामने हो जाने पर दुनिया की दशा है।[2]

---

१. 'धर्मप्रदर्शनी' (बा० नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह, प्रथम सं०, सं० १९६३ वि०) पृ० २८२,२८७ तथा २८९।
२. वही, पृ० २६५,२६६,२७०,२७३, २७५ तथा २७७।

जयप्रकाश लाल

आप सारन-जिले के अपहर नामक ग्राम के निवासी और डुमराँव (शाहाबाद) के महाराजा राधाप्रसाद सिंह के दीवान थे।[1] आपका जन्म सन् १८४० ई० में आरा नगर में हुआ था।[2] कहते हैं, डुमराँव-राज में आपके जैसा प्रभावशाली, प्रतापी, दानी, गुण-ग्राहक तथा प्रबन्ध-कुशल दीवान कभी कोई नहीं हुआ।[3] आपको सरकार से 'रायबहादुर' और 'सी० आइ० ई०' की उपाधियाँ मिली थीं। आप बिहार-बंगाल-कौंसिल के माननीय सदस्य भी थे। लखनऊ में जो अखिलभारतीय प्रथम कायस्थ-महासम्मेलन हुआ था, उसके सभापति आप ही हुए थे। बर्मा-प्रदेश में आपके समय में ही डुमराँव-राज की ओर से बहुत-सी भूमि खरीदी गई थी, जिसकी आबादी का प्रबन्ध आपने किया था। आपके एक अग्रज शिवप्रकाश लाल[4] ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। आप एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आपकी घनिष्ठ मैत्री थी। हिन्दी में 'जगोपकारक'[5] नामक धर्म-विषयक आपकी एक पुस्तक सन् १८७२ ई० में प्रकाशित हुई थी। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले। आप सन् १८९७ ई० में परलोक सिधारे।

※

भगवान प्रसाद[6]

आप 'श्रीसीतारामशरण भगवान प्रसाद' के नाम से प्रसिद्ध थे। इससे भी अधिक आपकी प्रसिद्धि थी 'रूपकला' जी के नाम से। आपकी रचनाएँ प्रायः इसी उपनाम से मिलती हैं।

आप निवासी तो थे सारन-जिले के मुबारकपुर नामक ग्राम के; किन्तु आपका जन्म सं० १८९७ वि० (सन् १८४० ई०) में, श्रावण कृष्ण नवमी को, इलाहाबाद के आलमगंज मुहल्ले में, हुआ था।[7] आलमगंज की नील-कोठी में आपके पितामह श्रीकेवलकृष्ण जी मीरमुंशी थे। आपकी माता का नाम था श्रीमती शिवव्रती देवी और

१. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, सं० १९८५ वि०), पृ० ११६८।

२. 'बालक' (मासिक, अंक १, जनवरी, सन् १९३५ ई०), पृ० १२।

३. 'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० ११-१२।

४. इनका परिचय इसी पुस्तक के परिशिष्ट में यथास्थान द्रष्टव्य। मिश्रबन्धुओं ने इनको आपका लघुभ्राता लिखा है। —देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही), पृ० ११६८।

५. इसका प्रकाशन सूरजमल नामक किसी व्यक्ति ने पटना से किया था।—देखिए, 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (माताप्रसाद गुप्त, प्रथम सं०, सन् १९४५ ई०), पृ० ४५२।

६. आपका प्रस्तुत परिचय मुख्य रूप से 'श्रीसीतारामशरण भगवान प्रसादजी की जीवनी' (वही) तथा 'हरिऔध-अभिनन्दन-ग्रन्थ' (पृ० ५३८-३९) के आधार पर तैयार किया गया है।

७. 'श्रीसीतारामशरण भगवान प्रसाद की जीवनी' (वही), पृ० १४। कुछ लेखकों ने आपका जन्मकाल सं० १८९७ वि०, श्रावण शुक्ला नवमी को बताया है। —देखिए, 'सरस्वती' (मासिक, भाग १२, संख्या १०, अक्टूबर, सन् १९११ ई०), पृ० ४८२।

पिता का मुंशी तपस्वी राम[१], जो एक बड़े विद्यानुरागी और रामोपासक सद्गृहस्थ संत थे। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में प्रयाग में ही त्रिवेणी-संगम पर मुण्डन-संस्कार के साथ आपका विद्यारम्भ भी हुआ और उसी समय आपका नाम भगवान प्रसाद रखा गया।[२] किन्तु, पढ़ने की कोई अच्छी व्यवस्था न हो सकी। लगभग सात वर्ष की अवस्था से ही आप अपने पितामह के साथ साधुओं के सत्संग में जाने लगे। विशेषतः वे आपको अपने साथ बदनपुर ग्राम में बाबा श्रीरामदासजी के पास कीर्त्तन और सत्संग में ले जाया करते थे। उसी समय आपके हृदय में भगवद्भक्ति का बीज अंकुरित हुआ।[३] आठ वर्ष की अवस्था में आप अपने माता-पिता के साथ मुबारकपुर (सारन) चले आये। यहीं आपकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हुआ। पहले दो-तीन वर्षों तक तो आपने घर पर ही ओल्हनपुर (सारन)-निवासी मौलवी अशरफ अली[४] से फारसी की शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् आप ग्यारह वर्ष की अवस्था में मुबारकपुर के मिडिल-वर्नाक्युलर-स्कूल में भरती हुए। यहाँ आपने मौलवी जहाँगीरबख्श शाहपुरी से फारसी-उर्दू और बाबू विनायक प्रसाद से हिन्दी की शिक्षा पाई। इसी समय के लगभग, सन् १८५८ ई० में, मुजफ्फरपुर[५] के मुंशी ठाकुरप्रसादजी की कन्या से आपका विवाह हुआ। किन्तु, आपके कोई संतति नहीं हुई।

मुबारकपुर में ही पं० प्रह्लाददत्त पाण्डेय और मुंशी शिवचरण भगत नाम के दो बड़े धार्मिक तथा सदाचारी रामानन्दी वैष्णव रहते थे, जिनसे आपको धार्मिक शिक्षाएँ मिलती रहीं। सन् १८५८ ई० में कार्त्तिक-पूर्णिमा को गोदना-सेमरिया के मेले में आपने परसा (सारन) ग्राम-निवासी स्वामी रामचरणदासजी[६] से विधिपूर्वक धार्मिक दीक्षा ग्रहण की। आगे चलकर सन् १८८०-८१ ई० में बेगूसराय (मुँगेर) के श्रीश्यामनायिकाजी ने गुरहट्टा (भागलपुर) के प्रसिद्ध संत श्रीरामचरणदास जी 'हंसकला'[७] से आपका परिचय कराया। उक्त संत-महात्माओं के अतिरिक्त आपके धार्मिक जीवन पर आपके चाचा तुलसीरामजी[८] का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था।

---

१. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य है।
२. आपका विद्यारम्भ पं० श्रीरामदीनजी और मौ० शुजाउद्दीन साहब ने कराया था। इन दोनों की गणना प्रयाग के प्रसिद्ध पण्डितों और मुल्लाओं में होती थी। —सं०
३. "खेल ही खेल में आप अपने ग्राम के श्रीरामचरण साहु से तौलनेवाली एक छटंकी बड़े आग्रह से माँगकर प्रति दिन उसकी पूजा करने लगे और इस काम में आपके माता-पिता ने सहर्ष सहयोग दिया।"—'संकीर्त्तन-संदेश' (माला १, पुष्प ७-८, दिसम्बर सन् १९६१ ई०), पृ० ६।
४. कहते हैं, मौलवी साहब फारसी के एक अच्छे ज्ञाता, चिकित्सा-शास्त्र में बड़े ही निपुण और आपके खानदानी उस्ताद थे।
५. 'संकीर्त्तन-सन्देश' (वही, पृ० ५) में लिखा है कि सन् १८५७ ई० में आपका विवाह दिघवारा (छपरा) के समीप रेपुरा-ग्राम के निवासी श्रीठाकुरप्रसाद की कन्या से हुआ था।
६. साम्प्रदायिक प्रथा के अनुसार इन्होंने ही आपका नाम 'श्रीसीतारामशरण' रखा था।
७. इन्होंने आपका नाम 'रूपकला' रखा, जो आपकी रचनाओं में सर्वत्र मिलता है।
८. इनका साधु-नाम 'रामप्रसादशरण' था। ये अयोध्या के रामघाट पर विरक्त होकर निवास करते थे। इन्होंने ही आपको एक हस्तलिखित रामायण की पोथी देकर नित्य पाठ करने का अभ्यास करा दिया था। —सं०

सन् १८५६ ई० में आप मिडिल- परीक्षा में, चार वर्षों के लिए चार रुपये मासिक की छात्रवृत्ति लेकर उत्तीर्ण और छपरा-जिला-स्कूल मे भरती हुए। स्कूल मे आपकी गणना सच्चरित्र, शान्त और गंभीर लड़को मे होती थी। सन् १८६३ ई० में जब आप एंट्रेंस-क्लास मे आये, तब आपने एक पुस्तिका (तन-मन की स्वच्छता) लिखकर तत्कालीन स्कूल-इन्सपेक्टर डॉ० फेलन को समर्पित की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होने आपको ३०) मासिक वेतन पर सन् १८६३ ई० में १४ अगस्त को स्कूलो के सब-इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त कर लिया। उस समय आपकी अवस्था तेईस वर्ष की थी। कार्यदक्षता के कारण आपकी तरक्की लगातार होती गई। सन् १८६७ ई० में आप डिपुटी-इन्सपेक्टर होकर पूर्णिया गये और वहाँ से सन् १८६६ ई० में आप मुंगेर आये, जहाँ लगातार बारह वर्षों तक रहे। सन् १८८४ ई० तक आप तीन सौ रुपये मासिक वेतन की श्रेणी और राजपत्रित पदाधिकारियो में आ गये। सन् १८८६ ई० से आप लगातार पटना में रहे। इसके एक साल पहले ही आपके पिता का देहान्त हो गया था। पटना में रहते समय आप बाबा भीषमदास की ठाकुरबारी (लाकरगंज) का ही भोग लगाया हुआ अन्न (महाप्रसाद) पाया करते थे।

सन् १८६० ई० में वैशाखी पूर्णिमा को आपकी सहधर्मिणी का स्वर्गवास अपने मायके मे हुआ था। पटना से ही, सन् १८६३ ई० की ३१वी अक्टूबर को, एक सौ छियालीस रुपये दो आने की मासिक पेन्शन पर, आपने सरकारी सेवा से अवसर-ग्रहण किया।[1] पूर्व-निश्चयानुसार, सेवाकार्य से मुक्त होते ही, उसी वर्ष के नवम्बर मास में, आपने अयोध्या-वास के लिए पटना छोड़ दिया। सन् १८६३ ई० में ही ५ नवम्बर (रविवार) को आप, काशी में श्रीविश्वनाथजी के दर्शन करते हुए, पहले-पहल अयोध्या-वास करने पहुँचे थे।

अयोध्या पहुँचते ही आपने प्रमोद-वन कुटिया से अँचला, लँगोट, कमण्डलु इत्यादि प्राप्त करके विधि-पूर्वक गृहस्थाश्रम-त्याग किया। इस समय तक आपकी केवल माता ही जीवित थी, जिनके लिए आप नियमित रूप से प्रतिमास ५१) भेजा करते थे।

अयोध्या में आप पहले हनुमत्-निवास मे रहे। पीछे जब बाबू बलदेवनारायण सिंह ने प्रमोद-वन में आपके नाम पर 'रूपकला-कुंज' नामक एक सुरम्य भवन बनवा दिया तब वही आपका स्थायी निवास हो गया। वहाँ नित्य आपका प्रवचन हुआ करता था। अयोध्या में जानकी-नवमी के उत्सव को आपने ही प्रचलित किया था। आपके वस्त्र रामरज-रंग में रँगे होते थे।

रामायण, गीता, भक्तमाल आदि धर्मग्रंथों का अध्ययन, संत-महात्माओं और गुरुजनों की संगति और विशेषतः एकांतवास आपको बहुत ही प्रिय था। धर्म के मामले में भी आप बड़े ही उदार थे। मस्जिदों और गिरजों के प्रति भी आपकी वही श्रद्धा थी, जो मन्दिरों के प्रति।

---

१. 'संकीर्त्तन-सन्देश' (वही, पृ० ७) के अनुसार आपने एक ईश्वरीय चमत्कारपूर्ण अलौकिक घटना के कारण अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था, अवसर-ग्रहण नहीं किया था।

आपने किसी को अपना शिष्य नहीं बनाया। सभी को मित्र-तुल्य ही मानते रहे। अयोध्या में आपके प्रेमियों की संख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती गई।[१] आपके प्रेमी आपके सम्बन्ध में अनेकानेक चामत्कारिक घटनाओं की चर्चा किया करते हैं।[२]

आपने सन् १६१२ ई० में ही हरिनाम-यश-संकीर्त्तन-सम्मेलन नामक एक अखिल-भारतीय आध्यात्मिक संस्था की स्थापना की थी, जिसके अधिवेशन आज भी प्रत्येक वर्ष भारत के विभिन्न भागों में होते हैं।

पालकी पर चलते समय आपके कहार भी 'भज सीताराम जय सीताराम' कहते चलते थे और हजामत बनाने के समय हजाम भी 'सीताराम सीताराम' बोलते हुए ही अपना काम करता था। आप नित्य नियमपूर्वक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-कृत एक सवैया बड़े अनुराग से पढ़ा करते थे।[३]

भोजन में बादाम का शर्बत और सत्तू आपको सबसे अधिक रुचिकर लगता था। वस्त्र में पसन्द था मोटिया और ननकलाट।

आप सन् १६१२ ई० में दिनांक ४ जनवरी को सवा तीन बजे रात्रि में साकेतवासी हुए।[४] कहते हैं, आपको अपनी मृत्यु-तिथि की सूचना पहले से ही थी, जिसका संकेत आपने अपने कतिपय भक्तों को कर दिया था।[५] अपनी परमधाम-यात्रा की वेला में आप श्रीरामपूजा जी महाराज 'दिव्यकला' को अपना उत्तराधिकारी बना गये।[६]

---

१. आपके जीवनी-लेखकों ने आपके प्रेमियों की एक लम्बी सूची प्रकाशित की है।—देखिए, 'श्रीसीतारामशरण भगवान प्रसाद की जीवनी' (वही), पृ० १०६—१२५ तथा 'श्रीरूपकला-चरितामृत' (सं० रामलोचन-शरण, प्रथम सं०, सन् १६५६ ई०), पृ० १८८-१८६।

२. इस प्रकार की अलौकिक घटनाओं के लिए —देखिए, 'श्रीसीतारामशरण भगवान प्रसादजी की जीवनी' (वही), तथा 'श्रीरूपकला-चरितामृत' (वही)।

३. बलि साँवरी सूरति मोहनी मूरति आँखिन को तनि आय दिखाओ।
चातकि-सी मरे प्यासी परी इन पापिन्ह रूप-सुधा निज प्याओ॥
छबि पीत जनेऊ की दामिनी-सी करुना करिके इतहू चमकाओ।
इतहूँ अब आयके आनँद के घन नेह की मेह पिया बरसाओ॥

—'श्रीरूपकला के संस्मरण' (रघुनाथ प्रसाद मुख्तार, प्रथम सं० सन् १६५० ई०)

४. 'श्रीरूपकला : एक झाँकी' (पृ० १५) के अनुसार ३ जनवरी (रविवार, एकादशी) को ३८ वर्ष ३ मास तक अवध-वास के बाद आप परम धाम सिधारे। मृत्यु के समय अन्तिम क्षण में आपने तीन बार यही दोहराया—"प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन, जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।"

५. नवम्बर, सन् १६३१ ई० के अन्तिम सप्ताह में आपने पटना के अपने कृपापात्रों के पास अन्तिम पत्र में लिखा था—"जासु नाम भवभेषज हरन घोर त्रय सूल, सो कृपाल मोहिं तोहि पर रहैं सदा अनुकूल।"

६. देखिए—'श्रीरूपकलाप्रकाश' (श्रीरघुवशभूषण, प्रथम सं०, सं० १६८६ वि०), 'श्रीरूपकलाजी—एक झाँकी (अखौरी वासुदेवनारायण, प्रथम सं०, सं० १६८३ वि०), 'Shree Rupkala and His life and teachings' (A. B N. Sinha, First Edn. 1935) and 'Bhagwan Rupkala and His Mission' (A.B.N. Sinha, Second Edn. 1960).

रामानन्दी सम्प्रदाय के एक सिद्ध वैष्णव महात्मा होने के अतिरिक्त आप हिन्दी के एक कुशल लेखक तथा कवि भी थे। आपकी गणना बिहार में सर्वप्रथम हिन्दी-प्रचार करनेवाले चार सज्जनो में होती है।[१] आपने हिन्दी में निम्नलिखित पुस्तको की रचना की थी—(१) तन-मन की स्वच्छता[२], (२) शरीर-पालन[३], (३) भागवत गुटका[४], (४) श्रीपीपाजी की कथा[५], (५) श्रीभगवद्वचनामृत[६], (६) भक्तमाल की टीका,[७] (७) श्रीसीतारामानसपूजा[८] (भावना-अष्टयाम), (८) भगवन्नाम-कीर्त्तन,[९] (९) श्रीसीतारामीय प्रथम पुस्तक,[१०] तथा (१०) मीराबाई[११]। आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ भोजपुरी में भी मिलती हैं।

---

१. बिहार में सर्वप्रथम हिन्दी-प्रचार का श्रेय चार सज्जनों को है—'जॉर्ज ग्रियर्सन, रामदीन सिंह, रूपकलाजी और केशवराम भट्ट।' —'श्रीरूपकला : एक झाँकी' (वही), पृ० १०।

२. इसी पुस्तिका को समर्पित करने के परिणामस्वरूप तत्कालीन स्कूल-इन्सपेक्टर डॉ० फेलन ने आपको नौकरी दी थी। उन्हीं की आज्ञा से आपने 'तहारते जाहिर वो बातिन' नाम से इसका उर्दू-अनुवाद भी किया था। —सं०

३. यह एक बँगला-पुस्तक का अनुवाद है। आपने 'हिफजे सेहत की उमद: तदवीरें' के नाम से इसका उर्दू-अनुवाद भी प्रकाशित किया था। बिहार के मिडिल स्कूलों के पाठ्यक्रम में भी यह रही। —सं०

४. इसके पूर्वार्द्ध में भगवन्नामकीर्त्तन और उत्तरार्द्ध में भक्तों के काम की कितनी ही बातों का उल्लेख हैं।

५. इसकी रचना बिलकुल नये ढंग की है। इसमें भगवान् को ही श्रोता बनाकर सारी बातें कही गई हैं। पीपाजी के सम्बन्ध में जितने कवित्त भक्तमाल में हैं, वे सब इसमें सन्निविष्ट हैं। —सं०

६. यह एक प्रकार से भगवद्गीता के बारहवें अध्याय की टीका है। इसमें गीता के श्लोकों के आधार पर भक्तियोग की भी विशद व्याख्या की गई है।

७. इसमें पहले नाभाजी के छप्पय देकर उसके नीचे प्रियादासजी के कवित्त दिये गये हैं। उनके नीचे सरल हिन्दी में उनकी व्याख्या की गई है। स्थान-स्थान पर अन्यान्य धर्मग्रन्थों के प्रमाणों से भी कथा की पुष्टि की गई है। इसे गया के वकील बाबू बलदेवनारायण सिंह ने प्रकाशित किया था। फिर, यह लखनऊ के तेजकुमार प्रेस (नवलकिशोर प्रेस की एक विभक्त शाखा) से प्रकाशित हुई। —सं०

८. इसमें युगलसरकार श्रीसीतारामजी की आठों पहर की मानस-पूजा-विधि है।

९. इसमें नित्य पाठ करने योग्य कीर्त्तन संगृहीत हैं।

१०. इसमें अनेक ग्रन्थों से विभिन्न कोटि के धार्मिक श्लोक तथा हिन्दी-पद्य संगृहीत हैं।

११. यह राजस्थान की प्रसिद्ध कवयित्री 'मीराबाई' की जीवनी है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त आपकी कुछ पुस्तकें उर्दू में भी प्रकाशित हुई थीं।

उदाहरण

(१)

सुधि न लीन्हि पिय बिरहिनि हिय की।
सखि ! मोहि कत दिन तरसत बीते, सुधि न लीन्हि पिय बिरहिनि हिय की ॥
आह धुआँ मुख हिय बिरहागी, ठाढ़ि जरौं जैसी बाती दिय की।
अधिक दाह चित चातक कोकिल, बिरह अनल जिमि आहुति घिय की ॥
सब उर ब्यापक अन्तरयामी, जानत है पिय रुचि तिय जिय की।
साँचहु सपनेहु कब लगि देखिहौं, मधुर मनोहर छबि सिय पिय की ॥
छमानिधान बिलोकिहैं निज दिसि, करिहहिं खोज न मोरे किय की।
कृपानिधान दया-सुख-सागर, मनिहैं सखि ! बिनती लघु तिय की ॥
'रूपकला' बिनवति हनुमत ही, चन्द्रकला अरु गिरिवर-धिय की।
एको उपाय न सूझत आली ! मोहि आसा केवल श्रीसिय की ॥[१]

(२)

नेह नेह सब कोउ कहै, नेह करौ मति कोइ।
मिले दुखी बिछुरे दुखी, नेही सुखी न होइ ॥
नेह स्वर्ग ते उतर्यो, भू पर कीन्हों गौन।
गली गली ढूँढ़त फिरै, बिन सिर को घर कौन ॥
बिरह असी जा उर धसी, लसी रसीली प्रीति।
चहत न मरहम घाव पर, यह प्रेमिन की रीति ॥
प्रेम कठिन संसार में, नहि कीजै जगदीस।
जो कीजै तौ दीजिए, तन मन धन अरु सीस ॥
धनि बृन्दावन धाम है, धनि बृन्दावन नाम।
धनि बृन्दावन-रसिकजन, धनि श्रीश्यामा श्याम ॥
आली ! होली सुखद तेहि, जो श्रीसिय पद पास।
'रूपकला' फगुनहट लहि, झुरवति रहति उदास ॥[२]

---

१. 'श्रीभक्तमाल' (श्रीरूपकला-कृत भक्तिसुधास्वाद-तिलक, तृतीय सं०, सन् १९५१ ई०), पृ० १२२।
२. वही, पृ० ८०६।

(३)

साजि लेली भूषन सँवारि लेली बसन से हाथ लेली री।
कनक थार आरती से हाथ लेली री॥
ओढी पहिरी सुन्दरी सहेली सखी सहचरी ओही बीचे री।
से बिराजे श्रीकिशोरीजी ताही बीचे री॥
मिथिला जुवति गन गावेली मुदित मन साथ लेली री।
ए सामग्री गौरी पूजन से साथ लेली री।
हरियर फुलवरिया ललिता गिरजा-बरिया सखिन बीचे री।
ले बिराजे श्रीकिशोरी जी सखिन बीचे री॥
सियाजो के पूजा से प्रसन्न भइली गौरीजी असोस देली री।
से सुफल मनकामना आसीस देली री॥
'रूपकला' गावेली श्रीस्वामिनी बुझावेली बिनु जोगे-जापे री।
ए प्रीतमप्रेम पावेली बिनु जोगे-जापे री॥[१]

(४)

जय चकोर जानकि मुख चन्दा। मिथिला युवतिबृन्द मन फन्दा॥
मोहि सब भाँति तुम्हार भरोसू। समझौं पिय गुण अरु निज दोसू॥
जोरि पाणि बर माँगौ एहू। जन्म जन्म सियराम सनेहू॥
जेहि विधि पिय प्रसन्न मन होई। करुणासागर कीजिय सोई॥
पिय सनेह चितवन की प्यासी। रूपकला श्रीसिय की दासी॥

मुख मयंक की माधुरी, मधुर बयन मुसुकान।
चितवनि जनमनहारिणी, जयति जानकीजान॥[२]

---

१. 'भोजपुरी के कवि और काव्य' (श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, प्रथम सं०, सन् १९५८ ई०), पृ० १९३-९४।
२. 'श्रीसीतारामीय प्रथम पुस्तक' (प्रथम सं०, स० १९६८ वि०, सन् १९११ ई०), पृ० ३४-३५।

(५)

चाहे कोई कैसे ही बड़े भक्तिमान हों, रात दिन हरिगुण गाया करते हों, संसार के पापों को हरते भी हों, भगवन्नाम जपा करते भी हों, उनका हृदय सद्गुणों तथा भगवद्ध्यान से भरा भी हो, ज्ञानमान भी हों, (तनु कम्प और हिय चूर्ण भी हों), श्रीहरि तथा सन्तों के सन्मान में भी साँचे हों, और उसी में सुख मानते भी हों, रीति से नाम जपते भी हों, सांसारिक प्रपंच से बचे भी हों, प्रेम को ही जड़ वा सार जानते हों, ललाट में तिलक और उर में माला भी सुशोभित हों, यह सब ठीक है सब कुछ हो, तथापि भक्ति की आराधना कठिन ही है; ओह! कोई किस प्रकार से आराधना कर सकता है? भक्ति की विलक्षण सूक्ष्म गति समझ में नहीं आती, मन कांप उठता है, हृदय चूर-चूर हो जाता है। सारांश यह कि "श्रीभक्तमालजी" को पढ़े समझे और मनन किये बिना, श्रीभक्ति महारानी की आराधना और उनके स्वरूप का जानना अतीव दूर तथा असम्भव है।[1]

(६)

भगवत् के जितने अवतार है, वे सबही सुख के समुद्र हैं, जिनका वार-पार (ओरछोर) कौन पा सकता है; प्रत्येक की लीला का विस्तार-पसार, जीवों के ही उद्धार के निमित्त है। जिस भक्त का जिस अवतार के रूप नाम लीला धाम में मन लगै, और उसमें वह रँगै पगै, उसके हृदय में वही भाव ऐसा जाग उठता है (प्रकाशमान होता है) कि कहाँ तक उसकी प्रशंसा की जाय, उसका अन्त नहीं। सबही अवतार नित्य हैं, सबही ध्यान करने से चित्त को प्रकाशकारक; और सबही ऐसे सुखद हैं कि जैसे दरिद्री को धन का मिलना सुख देता है। हाँ, इतनी बात तो अवश्य है कि यदि सारांश तत्त्व का ज्ञान होवे, तब सुख की प्राप्ति होती है॥ जिस प्रकार से 'टेढ़ापन' रूपी दोष भी बालों (केशों) के सम्बन्ध में सुखद गुण ही होता है, वैसे ही मीन वाराह आदि तिर्यक् शरीर भी भगवत् की प्रभुता के सम्बन्ध से अति सुखदायी ही है।[2]

---

१. 'श्रीभक्तमाल' (वही), पृ० ३६-३७।

२. वही, पृ० ४९-५१।

(७)

(क) प्र०—वैष्णव के क्या लक्षण है ?

उ०—"वैष्णव वही है जो अपने निज दुख के प्रति उतना कठिन हो जैसे आम की गुठली, और पराये दुख के लिए जिसका हृदय इतना कोमल एवं सुमधुर हो जैसा आम का गूदा और रस। वैष्णव वही है जो घास की तरह नम्र हो और किसी के पाँव तले कुचले जाने पर भी हराभरा लहलहाता ही रहे। मन, बुद्धि, इन्द्रिय जिसकी परसेवावृत्ति में लगी रहे। किसी का भूलकर भी अनिष्ट न करना। आलस्यहीन होकर अपने कर्त्तव्य को नियमपूर्वक करते रहना। विलासिता को अपने पास फटकने न देना। सदा सावधान रहना। सात्विक भाव से, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का ग्रहण न करना। किसी की निन्दा न करनी और न कानों से सुननी।[1]

(ख) प्र०—परमात्मा को देखना क्यों कठिन है ?

उ०—जो सूँघने की वस्तु है उसे सूँघकर ही आप जान सकते है। जो खाने की वस्तु है उसका स्वाद खाकर ही जान सकते है। गाना सुना ही जा सकता है। स्वाद जिह्वा ही द्वारा जाना जा सकता है। इसी प्रकार परमात्मा को देखने के लिए किसी विशेष नेत्र की आवश्यकता है।[2]

(८)

(क) ज्ञान, योग, भक्ति वास्तव में कोई अलग वस्तु नहीं है। जैसे अनेक प्रकार का व्यंजन तैयार किया जाता है, मुख में उसका स्वाद भी अलग-अलग मिलता है, पर पेट में जाकर सब एकट्ठा होकर शरीर के

१. 'रूपकला-संस्मरण' (वही), पृ० ५३-५४।
२. 'श्रीरूपकलाप्रकाश' (वही), पृ० ४७।

रोम-रोम को परिपुष्ट करते है उसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि से ये तीन मार्ग निश्चित किये गये है, पर वास्तव में सब मिल ही कर अपना कार्य करते है। इन तीनों को अलग करना उन पर वाद-विवाद तथा माथापच्ची करना केवल भूल है।[१]

(ख) भाव, महाभाव, तब प्रेम। व्यक्तिगत विचार रहते भी ईश्वरप्रेम का संचार होना, उसमें मान होना, उसके लिए व्याकुल होना 'भाव' कहा जाता है। महाभाव उसे कहते है जिसमें देहबुद्धि का लेशमात्र न हो अपने आप की सुधि ही न रह जाय, अपने प्रेमदेव में ही लीन रहे। प्रेम को कैसे बताया जावे। प्रेमी तथा प्रेमदेव में कोई अन्तर ही नही। जैसे जल का कण जल में मिल जाय।[२]

(ग) प्रेम का दूसरा पहलू है विरह। प्रेम विरह एक दूसरे के साथ इस तरह ओतप्रोत हैं कि उन्हे बिलगाया नही जा सकता। अग्नि और उसकी दाहक शक्ति वैसे ही प्रेम और उसका विरह। यदि प्रेम विरह की आग इस हृदय में नही उठती तो प्रेम का मोल ही नष्ट हो जाता। विरह का अर्थ है अपने प्रेम के लिए पूर्ण अनुराग तथा अन्य वस्तुओं से प्रचुर वैराग्य। विरह तो प्रेम की कसौटी है।[३]

(घ) भगवान मनुष्य को रोग-शोक में डालकर नाम-स्मरण-चिन्तन का-सुअवसर दिया करते है।[४]

(च) जिसे आत्मसमर्पण नही आता वह निर्भीक नहीं हो सकता।[५]

(छ) भगवान जिसमें प्रसन्न हों वही कर्म है और जिससे हरि में भक्तिभाव हो वही विद्या है।[६]

*

१. 'रूपकला-संस्मरण' (वही), (क) पृ० ११८, (ख) १३७, (ग) १६३, (घ) ७२, (च) १३७, (छ) पृ० १७१ (ज) पृ० १७१।

रामबिहारी सहाय

आपका उपनाम 'बिहारी' था, जो आपकी रचनाओं मे मिलता है। आप सारन-जिले के नयागाँव नामक ग्राम के निवासी थे। आपका जन्म छपरा शहर के 'साहबगंज' मुहल्ले मे, एक श्रीवास्तव-कायस्थ-कुल में, सन् १८४० ई० मे हुआ था।[1]

आपके पिता का नाम मुंशी मनियारसिंह था। आप अपने पिता के परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र थे। आपके परिवार की गणना प्रसिद्ध धार्मिक परिवारों में होती थी। आप स्वयं भगवती दुर्गा के उपासक थे। कहते हैं कि एक बार निरपराध आप नौकरी से हटा दिये गये, जिससे खिन्न होकर आपने बड़ा सुन्दर 'दुर्गास्तोत्र' बनाया, और जगदम्बा की आराधना मे तत्पर हो गये। परिणामस्वरूप, आपकी शीघ्र ही पुन· नौकरी पर बहाली हो गई।

स्वभाव के आप बड़े ही मिलनसार और सरस हृदय थे। आपके कोई सन्तान नही थी। भोजपुरी भाषा के 'बटोहिया' गीत के सुप्रसिद्ध कवि बाबू रघुवीर नारायणजी[2] आपके भतीजे थे, जिन्हे आपका पर्याप्त स्नेह प्राप्त था। आप बहुत दिनो तक मुजफ्फरपुर की दीवानी अदालत मे पैमाइशी अमीन थे। उर्दू, फारसी के अतिरिक्त आप हिन्दी में भी सुन्दर कविता करते थे। हिन्दी में आपकी कोई पुस्तकाकार रचना नही प्राप्त होती, स्फुट काव्य-रचनाएँ ही मिलती हैं। आपने 'रामचरितमानस' की चौपाइयो (अर्द्धालियो) पर अनेक कवित्त-सवैये आदि रचे हैं। आपके रचे गंगास्तोत्र, दुर्गास्तोत्र, निर्गुणी-पद, ऋतुगीत और भजन भी उपलब्ध हैं।

उदाहरण

(१)

दिन-रात जहाँ हरि कीरति ह्वै हरिनाम के टेर सदा मनमानी।
'बिहारी' भने सबसे सम भाव कुभाव न काहू से है जहाँ जानी।
ग्यानी सबै गुनवन्त सबै सिलवन्त सबै सब ही जग जानी।
गुनखानी समाज सु सज्जन के परनाम करौ मै सप्रेम सुबानी ॥[3]

(२)

मोह अँधियारी रैन जहाँ न कबहुँ होत
बिपति बिहान के निसान नहि राज है।
भनत 'बिहारी' चोर लम्पट लवार उल्लू
निश्चर असुर के न जहाँ कछु काज है।

---

१. श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण (दहियावाँ, छपरा) से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर।

२. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य है।

३. श्रीदानदेय कपिल (हिन्दीमंदिर, शीतलपुर, सारन) द्वारा प्राप्त एक जीर्ण-शीर्ण पाडुलिपि से, जो बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के साहित्यिक-इतिहास-विभाग में सुरक्षित है।

ग्यान-मारतण्ड उदै दिवस प्रकास भास
रामनाम रामजस यही साजबाज है।
बेदपाठी सास्त्र के जनैया पउरानिक है
सोई मुदमंगलमय संत को समाज है ॥[1]

(३)

खासे खसखाने में बिरचित सुरंग सेज,
आभा बिकास दीप दिनकर ते दौगुनो।
फहरें गुलाब के फुहारे चहुँ ओरन ते,
फैले सुचि गन्ध चोआ चन्दन ते चौगुनो।
कहै 'बिहारी' कवि तुलै ना छपाकर छबि
छाये है कलंक जाके रोम रोम औगुनो।
सोभा है अपार रूप राधिका बखानै कौन,
गिरिजा ते गिरा ते रूप रम्भा ते सौगुनो ॥[2]

(४)

तरके बराह-दन्त अरके दिगदन्ती रद,
पचकी गति कूर्मों की कमठ पीठ दरके।
चरके सुमेरु मेरु धरके दिल देवन के,
फरके फनीस तेज ठरके नाग नर के।
कहत 'बिहारी' कबि खरके भूप देसन के,
आसन सिहाँसन पाकसासन के लरके।
करके सरासन भाग भरके गजेन्द्र धीर,
सरके सान सूरों के हरके बैल हर के ॥[3]

(५)

ओढ़े मृगछाला कर डमरु है बिसाला
सोहे ससिभाला उर भूषण बर ब्याला है।

---

१. श्रीपाण्डेय कपिल (वही) द्वारा प्राप्त उसी जीर्ण-शीर्ण पाण्डुलिपि से।

२. बिहार-हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन के षष्ठ अधिवेशन (मुजफ्फरपुर) के सभापति राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर के अभिभाषण से। —देखिए, 'बिहार की साहित्यिक प्रगति' (वही), पृ० १६७।

३. वही।

करत बिष नेवाला साथ भैरव बिकराला
पीवत भंग-प्याला अरु रहत मतवाला है।
भूत-प्रेत के रसाला नाच नाचत बैताला
कहत 'बिहारी' सब देवन में आला है।
देवन प्रतिपाला रिद्धिसिद्धि देने वाला
अतिसय किरपाला सो बसह बैलवाला है ॥[1]

(६)

संतन सों भाव नीको, दाव नीको दुर्जन सों
बन्धु सों बनाव नीको, चाव नीको राम को।
गीता को ज्ञान नीको, स्रवन पुरान नीको
दीनन को दान नीको, गाँठन को दाम को।
सेवा पितु-मातु नीको, लायक सो नात नीको
कहता 'बिहारी' बात, नीको परिनाम को।
गंगा-जल-पान नीको, गुरुजन को मान नीको
सुमिरन सदा ही नीको, राधा के नाम को ॥[2]

※

रामलोचन मिश्र[3]

आप का उपनाम 'भक्तभूषण' था।

आपका जन्म सं० १८६८ वि० (सन् १८४१ ई०) मे, चैत्र शुक्ल ५ (शनिवार) को, सारन-जिले के वनियापुर-थाने के मझवली ग्राम में हुआ था।[4] आपके पिता का नाम था पं० रोहिणी मिश्र। आपकी ख्याति एकप्रत्युपन्नमति रामायणी के रूप में थी। आप एक अनन्य रामभक्त और आशुकवि थे। हिन्दी मे आपकी निम्नांकित कृतियाँ प्रकाशित हुई थी—

(१) श्री सत्यनारायण-कथा का हिन्दी-पद्यात्मक अनुवाद, (२) वहुला-व्रत-कथा का हिन्दी-पद्यात्मक अनुवाद, (३) चर्पट-मंजरी (मोह-मुद्गर) का हिन्दी-पद्यात्मक अनुवाद, (४) रामायण-महत्व, (५) रामनाम-महिमा, (६) ऋतु-संगीतावली, (७) पुण्यपर्व-वर्णन,

१. श्री अवधेन्द्रदेव नारायण (वही) द्वारा प्राप्त।
२. वही।
३. आपका परिचय आपके कनिष्ठ पुत्र पं० श्रीधर्मनाथ शास्त्री (राजवैद्य, श्रीभास्करमहौषधालय, सदर-बाजार, दानापुर-कैण्ट, पटना) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर तैयार किया गया है।
४. वही।

(८) राम-भक्ति-भजनावली, (९) पिंगला-गीत, (१०) गंगा-सरयू-महिमा, (११) समस्या-पूर्ति, (१२) पत्र-पद्यावली, (१३) आत्मजीवनी, (१४) स्फुट कवितावली, (१५) हनुमत्प्रार्थना, (१६) प्रासंगिक कवितावली, (१७) पिङ्गल-छन्दगणाष्टक-वर्णन, (१८) शाकद्वीपीयद्विज-वर्णन।

आपका देहान्त सं० १९७० वि० (सन् १९१३ ई०) में, माघ शुक्ल ११ बृहस्पतिवार को, ७२ वर्ष की आयु में, हुआ था।

उदाहरण

(१)

राम नाम कहा करो पाप से डरा करो तू
भरा करो कान में सदा ही राम नाम को।
घर में रहो वा गिरि-कन्दरा बसो तू जाय
बिना राम नाम मुख चाम कौन काम को।
नाम को प्रभाव चारो जुग में प्रचंड जान
कलि में प्रधान राम नाम तरु-काम को।
कहे रामलोचन दुखमोचन राम नाम ही है
ताते राम नाम में बितावो आठो याम को॥[1]

(२)

पिता यदि दीजै तो श्री दशरथ महाराज ऐसो
बन्धु यदि दीजै तो श्रीराम चारो भैया सो।
माता यदि दीजै तो श्रीकौसल्या सुमित्रा जी सो
भार्या जो दीजै तो अरुन्धती सुकन्या सो।
पुत्र यदि दीजै तो सुपुत्र श्रीश्रवण ऐसो
मित्र यदि दीजै तो सुदामा जी कन्हैया सो।
कहे रामलोचन जौने ही योनि जन्म दीजै
रामभक्ति दीजै अरु प्रीति रघुरैया सो॥[2]

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के साहित्यिक-इतिहास-विभाग में सुरक्षित 'श्रीरामनाम-महिमा' की प्रतिलिपि से।

२. वही।

(३)

भजु मन राम-सिया सुखरासी।
रामचन्द्र रघुनन्दन रघुबर राघव अवध-निवासी ॥
रघुकुल तिलक सिया के स्वामी काटतु है जम-फाँसी।
मनमोहन मधुसूदन माधव मन्मथ मथुरा-वासी।
माखनचोर मुकुन्द मुरारी अरिमर्दन अबिनासी।
चारो युग चतुरानन कर्त्ता चारि लाख चौरासी।
चारि पदारथ करतल ताके जाकर माया दासी।
पावत मुक्ति सुनावत शंकर मरत जीव जो कासी।
रामलोचन एक अधम सरन महँ राखु दुसह दुखनासी ॥[1]

(४)

अवगुन जौ प्रभु हेरो हमारो।
तौ नहि कल्प कोटि करुनानिधि यहि जन को निस्तारो ॥
वेद पुरान कहत करुनाकर बर-बर अधम उधारो।
पाप करत निसि बासर बीतत अब लौ हिय नहि हारो।
भटकत फिरत न सूझत मारग लै निज सिर अघ भारो।
जनमत मरत दुसह दुख पावत तुम बिनु कौन उबारो।
गिद्ध न हौ गनिकादि अजामिल सब पतितन ते न्यारो।
नाम पतितपावन तव शंकर कागभुसुण्डि उचारो।
रामलोचन पर करहु कृपा अब जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारो ॥[2]

※

अक्षयकुमार[3]

आपका जन्म सं० १६०० वि० (सन् १८४३ ई०) के माघ मास में, मुजफ्फरपुर-जिले के 'बाघी' नामक प्रसिद्ध स्थान में हुआ था।[4]

---

1. परिषद् के साहित्यिक-इतिहास-विभाग में सुरक्षित 'श्रीरामनाममहिमा' की प्रतिलिपि से।
2. वही।
3. आपका परिचय मुख्य रूप से श्रीरघुनाथप्रसाद 'विकल' (किदवईपुरी, पटना) से प्राप्त सूचना के आधार पर तैयार किया गया है।
4. 'मैथिल देश सोहावनो, मध्य बसे इक ग्राम। बाघी नाम प्रसिद्ध है, तहाँ जन्म को ठाम ॥'
—'रसिकविलास रामायण' (अक्षयकुमार, प्रथम सं०, सन् १९३६ ई०), पृ० १।

आपके पिता का नाम श्रीनन्दलाल सिंह और पितामह का श्रीमहताब सिंह था। आपके दो पुत्र हुए—श्रीकामताप्रसाद और श्रीबिन्दाप्रसाद। इनमें द्वितीय आज भी जीवित हैं। प्राचीन पद्धति से शिक्षित होने के कारण आप हिन्दी के अतिरिक्त फारसी और उर्दू के भी एक अच्छे ज्ञाता थे। आरम्भ में बहुत दिनों तक आपने हाजीपुर की मुन्सिफी अदालत में वकालत की। इसके बाद अपने चचेरे भाई की 'रियासत'[१] में मैनेजर नियुक्त हुए।

आपके यहाँ फारसी-उर्दू के अतिरिक्त हिन्दी-संस्कृत-पुस्तकों का भी बड़ा विशाल संग्रह था। वस्तुतः, इसी संग्रह के कारण आप साहित्य के अध्ययन और पुस्तक-लेखन में प्रवृत्त हुए। आप एक धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश के आरम्भिक दिनों में ही आपने श्रीराम के बाल-चरित्र पर कुछ स्फुट कविताओं की रचना की थी। उसी के प्रसाद-स्वरूप आपने आगे चलकर अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसिकविलास रामायण' की रचना अपने ज्येष्ठ भ्राता के आज्ञानुसार की, जो प्रकाशित भी हुआ।[२] आपने 'वर्णबोध' नाम से एक छंदोबद्ध हिन्दी-व्याकरण की भी रचना की थी, जो दुर्भाग्यवश अभी तक अप्रकाशित ही है। आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ मिलती हैं।[३]

आप सन् १९०१ ई० में २ मार्च को परलोकवासी हुए।

उदाहरण

(१)

राघो जी अनुज-सहित कौसिक मुनि संग में
मैथिल-पति नग्र निकट जैसे हि पधारे हैं,
शोर भयो शहर में अद्भुत छबि छटा देखि
देखन हित बृन्द बृन्द आइ के जुहारे है।
गिरत काहु झुकत काहु लरखरात पांव धरत
देह को न खबर जानि परत मतवारे है;
निरखत विदेह को ब्रह्मज्ञान बिसरि गये
डूबे मन पेमनिधि मिलत ना किनारे हैं ॥[४]

---

१. इस 'रियासत' के मालिक थे बिहार-विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति और केन्द्रीय संसद्-सदस्य रायबहादुर श्यामनन्दन सहाय के पूर्वज। —सं०

२. इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण बिहारबन्धु प्रेस (बाँकीपुर) से छपकर सन् १९०१ ई० में आपके ज्येष्ठपुत्र तथा सायंस कॉलेज (पटना) के भूतपूर्व प्राचार्य श्री कामताप्रसाद द्वारा प्रकाशित हुआ था। सन् १९३६ ई० में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। —सं०

३. आपकी रचनाओं की सुरक्षा के लिए आपके पौत्र श्रीसुधाकरप्रसादजी (राँची-विश्वविद्यालय, राँची) तथा पौत्री श्रीमती मणिवर्मा (कदमकुआँ, पटना) प्रयत्नशील हैं। —सं०

४. 'रसिकविलास रामायण' (वही) पृ० ४।

(२)

कामिनी को सैन आज जुर्‌यो है विदेह नगर
चितवन को तीर चढ़े भृकुटी कमानों पर,
सीस-फूल आदि बहु भूषण सँवारे सिर
सारी जरतारी लहरा रही निशानों पर।
चाहती है वार करन देखति सब दाव-घात
खैंचति कमान ताकि ताकि श्रेष्ठ बानों पर,
जैसेही रघुवीर की छूटी एक नैन बान
घायल-सी घुमी गिरि अपने ठेकानो पर।[1]

(३)

जनक-नन्दनि बिलोकि रघुबर घनश्याम-रूप
नैनन में लाय प्रेम-बिबस पलक डार ली,
प्यारे के रूप को बिलोके नहि और कोउ
और रूप देखूं नहिं याही व्रत धार ली।
बीती बहु काल सङ्ग सखियाँ सशंक भईं
बोली उठि हाहा यह करत काह लाड़ली
किन्ही काहु टोना कि डिठौना काहु डारि दिन्हि
सुनि सङ्कोच लाज बिबस नैन तब उघार ली॥[2]

(४)

कह केवट क्यो अनरीत करो हमको उतराइ मे जौ कुछ दैहो।
कहुँ लेत है नाई से नाई कछू मोहि जाति के पांतिनि ते निकसैहो॥
भवसिधु अगाध कि घाट तुम्हे यही घात कि जौ उतराई चुकैहो।
जब जाव तुम्हारे घाट प्रभु तब तो हमरे मुंह में मसि लैहो॥

१, 'रसिकविलास रामायण' (वही), पृ० ४-५ ।
२. वही, पृ० ६ ।
३. वही, पृ० १५ ।

(५)

हरषे हनुमंत सुनत बानी । अक्षेश को सम्मति मन आनी ॥
धरि रूप विशाल भये ठाढ़े । प्रजलित तन तेज प्रभा बाढ़े ॥
कहि बसहु इहाँ दुख सहि तबलौं । सीता-सुधि मैं लाऊँ जबलौ ॥
जय जानकि जीवन कहि धाये । गिरि गहन सिखर पर चढ़ि आये ॥'[1]

*

शिवप्रकाश लाल

आप सारन-जिले के 'अपहर'-ग्राम के निवासी थे।[2] आपका जन्म सं० १९०० वि० (सन् १८४३ ई०) में हुआ था।[3] आप डुमराँव-राज के प्रतापी दीवान जयप्रकाश लाल के अनुज[4] और एक बड़े ही धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। आपके द्वारा रचित निम्नांकित हिन्दी-पुस्तकों का पता चला है—

(१) भागवतरस-संपुट, (२) भजन-रसामृतार्णव, (३) विनयपत्रिका टीका, (४) गीतावली टीका, (५) रामगीता-टीका और (६) इतिहास-लहरी।[5] आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

*

हरिनाथ पाठक

आपका जन्म गया-जिले के 'पाठकबिगहा' नामक ग्राम में, सं० १९०० वि० (सन् १८४३ ई०) में, मार्गशीर्ष कृष्ण-प्रतिपदा (भौमवार) को, हुआ था।[6]

---

१. वही, पृ० ६७।
२. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० ११६८।
३. डॉ० ग्रियर्सन ने आपका जन्म-काल सन् १८४४ ई० बतलाया है। —देखिए, डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (सं० किशोरीलाल गुप्त, प्रथम सं०, सन् १९५७ ई०), पृ० २७७।
४. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही), पृ० ११६८।
५. मिश्रबन्धुओं ने आपकी रचनाओं में भ्रमवश डुमराँव के महाराज शिवप्रकाश सिंह की कई रचनाओं को सम्मिलित कर दिया है। ऐसा भ्रम और भी कई स्थानों में दीख पड़ता है। —देखिए, वही।
६. आपके पूर्वज आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व मुसलमानी शासन-काल में, अत्याचार-पीड़ित हो, अपनी वंशानुगत जन्मभूमि जगदीशपुर (शाहाबाद) छोड़ गया-जिले में आ बसे। गया में आने पर सबसे पहले उनकी मुलाकात टेकारी के राजा से हुई, जिन्होंने उनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर जहानाबाद सब-डिवीजन के 'किंजर' ग्राम (गया) के निकट 'बढ़ता' ग्राम (गया) में १०१ बीघे जमीन दे दी। आगे चलकर उन्हें बेलखरा-राज्य (गया) से भी कुछ जागीर प्राप्त हुई। उसी जागीर में 'पुनपुन' नदी के तीर पर सर्वप्रथम उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया, जिसका नाम रखा 'गंगाबीघा'। कुछ दिनों बाद जब यह स्थान पुनपुन नदी के गर्भ में चला गया, तब पुनपुन से और भी पूरब हटकर उन्होंने 'पाठकबिगहा' ग्राम बसाया। —श्री उमानाथ पाठक (जिला स्कूल, भागलपुर) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

आपके पिता का नाम था पं० शिवराम पाठक। आप पाँच भाई थे। पाँचो में आप तीसरे थे।[१] तेरह वर्ष की अवस्था में 'वैदविगहा' ग्राम के प० शोभानाथ पाठक की कन्या से आपका पाणिग्रहण-संस्कार हुआ था। किन्तु, आप अल्पकाल में ही विधुर हो गये। तब से ईश्वर-भक्ति की साधना में ही आपके दिन बीते। आपका बचपन बहुत ही कष्ट मे व्यतीत हुआ। पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण आपने गया जिले के मकसूदपुर नामक ग्राम मे, अपने गुरु के यहाँ रहकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। कुछ दिनों तक विद्याध्ययन के लिए आपको कटक (उड़ीसा) भी जाना पड़ा था।

शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आपका सम्पूर्ण जीवन एक प्रकार से, टेकारी-राज्य (गया) में ही व्यतीत हुआ। एक दानवीर के रूप में आपकी अच्छी ख्याति थी। गरीबों की सेवा करना आपका प्रधान कर्त्तव्य था। आप बराबर अहियापुर (गया) के राधाकृष्ण-मंदिर मे रहकर कृष्ण-भक्ति के पद बनाया करते थे। कहते हैं, रात में आपको भगवान् कृष्ण के दर्शन भी होते थे।

आप ज्यौतिष, दर्शन एवं व्याकरण के धुरंधर विद्वान् थे। हिन्दी और संस्कृत-भाषाओं पर आपका अद्‌भुत अधिकार था। आपके अक्षर बड़े सुन्दर होते थे। संस्कृत में आपने अनेक पुस्तकों की रचना की थी। हिन्दी मे आपने श्रीवाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्‌भागवत के जो पद्यानुवाद किये थे, वे 'ललित रामायण' एवं 'ललित भागवत' के नाम से प्रकाशित हुए थे।[२] पुस्तकाकार आपकी तीसरी हिन्दी रचना है—'सत्यनारायण-विनोद'। इनके अतिरिक्त, आपने हिन्दी में, विशेषकर मगही भाषा में, अनेक स्फुट पदों की रचना की थी, जिनका अब पता नही चलता। सं० १९६१ वि० (सन् १९०४ ई०) मे आश्विन-शुक्ल षष्ठी (गुरुवार) को, कुंभलग्न मे आप गोलोकवासी हुए।[३] आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले।

※

बालगोविन्द मिश्र

ज्यौतिष-गणना के अनुसार आपका नाम 'कमलेश' पड़ा था। साहित्यकारों के बीच आप इसी नाम से प्रसिद्ध भी थे। आपकी रचनाएँ 'कमलापति', 'बालगोविन्द' और 'गोविन्द' नामों से भी मिलती हैं।

---

१. सभी भाइयों के नाम क्रम से इस प्रकार हैं—नेत्रनाथ, भवनाथ, हरिनाथ, देवनाथ और लक्ष्मीनाथ।

२. ये दोनों पुस्तकें बन्शीलाल बुकसेलर, चौक, पटनासिटी, के यहाँ से प्रकाशित हुई थीं, पर अब दुर्लभ हैं।
—श्रीनरेन्द्रनारायण सिंह (नदवारा, बैरगनिया, मुजफ्फरपुर) द्वारा प्राप्त सूचना के अनुसार।

३. कहते हैं, अपनी मृत्यु के पूर्व आपने एक पद बनाकर रख दिया था, जिसमें आपकी मृत्यु की तिथि एवं समय का उल्लेख था। वह पद भी न मिला।—सं०

आपका जन्म गया जिले के जहानाबाद सब-डिवीजन में, अरवल थाने के अन्तर्गत 'बेलखरा' नामक ग्राम में, सं० १९०१ वि० (सन् १८४४ ई०) की चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा को हुआ था।[१]

आप शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम पं० रामबक्श मिश्र और पितामह का नाम पं० बखुरीराम मिश्र था। आपका कुल विद्वत्ता एवं सदाचार के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था।[२] आपने अपना विद्यारम्भ अपने पिता से किया। आप उन्ही से लगातार ग्यारह वर्षों तक वेद, व्याकरण, ज्यौतिष और काव्य-साहित्य पढ़ते रहे। इसके पश्चात् काशी जाकर आपने वहाँ के प्रसिद्ध पंडित श्रीसखाराम भट्ट से व्याकरण एवं धर्मशास्त्र का अध्ययन किया। फिर, आगे चलकर सुविख्यात विद्वान् श्रीगंगाधर शास्त्री के पिता श्रीनृसिंहदत्त शास्त्री से भी काशी में ही आपने साहित्यशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। इन्ही दिनों आप भारतेन्दुजी के सहपाठी भी रहे। उनसे आपकी गहरी मित्रता थी।[३]

आपने अपने जीवन के बाईसवें वर्ष में अपनी पढ़ाई छोड़ दी। उसके बाद आप काशिराज के यहाँ, रामनगर-दरबार में पाँच वर्षों तक रहे। तत्पश्चात् लगभग तीन वर्षों तक विजयनगरम् के महाराज के संस्कृत-विद्यालय (काशी) में आप साहित्य-अध्यापक थे। सं० १९३१ वि० से सं० १९५० वि० (सन् १८७४ से १८९३ ई०) तक आप तीर्थाटन और देशी रजवाड़ों की राजधानियों में भ्रमण करते रहे। सं० १९५१ वि० (सन् १८९४ ई०) में आप श्रीमान् महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के दरबार में मिथिला चले आये, और सन् १८८७ ई० (सं० १९५४ वि०) तक रहे। मिथिलेश के दरबार से लौटकर आप स्थायी रूप से अपने जिले में ही रहने लगे। वहाँ टिकारी के राज-हाइस्कूल में हिन्दी का अध्यापन-कार्य करते रहे। इसी समय बंगाल की संस्कृत-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आपने 'काव्य-निधि' की उपाधि प्राप्त की।

आपके चार पुत्र हुए, जिनमें दो (श्रीप्रभाकर मिश्र और श्रीरामदूत मिश्र) का देहान्त सं० १९५९ वि० (सन् १९०२ ई०) में हो गया।[४] शेष दो पुत्र (श्रीनित्यानन्द मिश्र और

---

१. 'किशोर' (मासिक, सं० २००० वि०, जनवरी सन् १९४४ ई०, वर्ष ६, अंक १०), पृ० ३७८।

२. आपके पिता, पितामह एवं बड़े चाचा पं० शिवबक्श मिश्र नक्षत्र-विद्या और गणित-ज्यौतिष के उद्भट विद्वान् थे। वे लोग रात में तारों को देखकर पंचांग निर्माण करते थे, जिसे देहात के ब्राह्मण लिखकर ले जाते थे। उनलोगों के बनाये हुए पंचांग आजतक उनके वर्त्तमान वंशधरों के पास हैं। उन्हें देखकर इन विद्वानों की विद्वत्ता, श्रमशीलता और लगन का परिचय मिल जाता है। आपके पितामह, 'निर्णय-सिन्धु'-प्रणेता पं० कमलाकर भट्ट के, शिष्य थे। आपके बड़े चाचा ने काशी के स्वनामधन्य विद्वान् श्री रामनिरंजन स्वामी से शिक्षा पाई थी। ये टिकारी-राज के प्रधान राज-पंडित और वेद, धर्मशास्त्र तथा ज्यौतिष के पारंगत विद्वान् थे। हिन्दी, संस्कृत और फारसी में इनकी रची हुई कविताएँ अच्छी हैं। अपने समय के ये धुरंधर पंडित थे। —सं०

३. इसके प्रमाण में आज भी भारतेन्दुजी के लिखे लगभग पच्चीस पत्र आपके वंशधरों के पास वर्त्तमान हैं। इन पत्रों के देखने से एक नई बात का पता चलता है कि भारतेन्दुजी संस्कृत के गेय पद भी बनाते थे। ये पत्र सुरक्षित हैं, पर दुर्लभ हैं। —सं०

४. आपके ये दोनों पुत्र भी उच्चकोटि के विद्वान् थे।

(२)

तेरे तात-मात उत बोलि ना पठाये मोहि,
निज मन तें ये नाहिँ आवनो सकतु हैं।
द्विज 'कमलेस' इतै गुरुजन मेरे सबै
हाय इतहू ते उतै नाहीं पठवतु है॥
तुव नव रंग रूप यौवन रसीले बोल
सुमिरि-सुमिरि प्रान जीवन धरतु हैं।
एरी प्रान प्यारी! तेरो विरह-पयोनिधि मे,
लाज को जहाज आज बूड़न चहतु है॥[1]

(३)

आई करि गौन पंच दिवस रही पी-भौन,
तुरत बिदाई ते जुदाई दुख दैन भौ।
कहि ना सकत कछू लाज गुरु लोगन तें
सुखद सुभौन सो कलेस ही को ऐन भौ॥
द्विज 'कमलेस' नेकु चैन दिन-रैन हूँ न,
गत सुख-सैन भौ बिनिद्र युग-नैन भौ।
ती की सुधि रसिक वियोगी उपरोगी भयो,
ललित लला को भीम भोगी मनों मैन भौ॥[2]

(४)

ए अलि, अकेली चारु चम्पक की बारी बीच,
ओढ़ि पट पौढ़ि मैं रही री परंजक मैं।
मंद मंद आय तित नन्द-सूनु औचक ही,
मैन-मदमाते मोहि लीनो गहि अंक मैं।
कहत बनैन, पै छिपावती न तोसों कछु,
राच्यो रति-रंग 'कमलेस' निरसंक मैं।
बसिगौ हमारो उर अन्तर सु वाके ख्याल,
गसिगौ कलंक कान्ह मो मन-मयंक मैं।[3]

---

१. श्रीमोहनशरण मिश्र (वही) द्वारा प्राप्त।

२. उन्हीं से प्राप्त।

३. वही।

(५)

मन्द मन्द वूँद बरसावै सरसावै पीर
उमड़ि घुमड़ि घूमि घेरि आसमानै री।
विज्जु छिटकावै चारु चोट चमकावै तैसो
बिरह जगावै पिकी-कूक-काम गानै री।
ही तें कढि प्रानै करि चाहत पयानै बानै
वेधै 'कमलेस' वीर बैरी पंच बानै री
अरज न मानै नेकु हरज न वाको जऊ
गरज न जानै मेघ गरज न जानै री ॥[1]

(६)

भोरै आजु आये कित सु-निसु बिताये नाथ
विनु गुन मंजु मोती-माल कित पाये है।
पीक-पंक-चिह्ननि लसाये अलसाये नैन
उर्जे अरुनाये अर्ध इंदु अति भाये है।
कवि 'कमलेस' भाल जावक लगाये लाल
कालिमा सुकज्जल की अधरनि छाये है।
सुख सरसाये औ बिनोद बरसाये आजु
मेरो मन भाये बर बानक बनाये है॥[2]

(७)

सहज सुवालको के संग सुख पावैं श्याम
गोधन चरावे गुहरावे नाम टेरि टेरि।
आवैं ढिग जे ते नित्य विवुध-बिरोधी तिन्है
पकरि पछारि मारैं भूमि रन गेरि-गेरि।
सारदा सुरेस संभु गिरिजा गनेस आदि
गावैं 'कमलेस' जासु गुन-गन फेरि फेरि।
कुंज-वन जावैं, वर बाँसुरी वजावैं राग
रागिनी सुनावैं औ चितावैं हँसि हेरि हेरि ॥[3]

※

१. श्रीमोहनशरण मिश्र (वहीं) द्वारा प्राप्त।
२. इन्हीं के द्वारा प्राप्त।
३. वहीं।

रामफल राय

आपका जन्म सं० १६०१ वि० (सन् १८४४ ई०) की विजयादशमी को, सारन-जिले के 'ताजपुर'-ग्राम के ब्रह्मभट्ट जाति के एक परिवार में हुआ था।[1] आपके पिता का नाम था भृगुनाथ राय, जो यदुनाथ राय के नाम से भी प्रसिद्ध थे।[2]

आप दुर्गा के उपासक थे। कहते हैं, मृत्यु के कुछ काल पूर्व आपका मस्तिष्क विकृत हो गया था।[3]

आपकी गणना हिन्दी के सुकवियों में होती है। आपके काव्य-गुरु थे सारन-जिले (दरौली-थाना) के पँचबेनिया-ग्राम-निवासी चन्द्रेश्वरी कवि।[4] सारन तथा उसके आसपास के भाट लोग आज भी अधिकतर आपकी रची कविताएँ सुनाते हैं। आपके कई छंदों की भाषा पद्माकर की तरह सजी-सँवरी हैं। अनुप्रास-योजना में भी आप सिद्धहस्त थे। हिन्दी में पुस्तकाकार आपकी दो ही रचनाएँ मिलती हैं—(१) विविध-विनोद[5] और (२) पावस-बत्तीसी।[6]

आपकी मृत्यु लगभग ४५ वर्ष की आयु में, सं० १६४५ वि० (सन् १८८८ ई०) के आसपास हुई।

उदाहरण

(१)

लता लागे तरु में तमालन में पात लागे
लोनो-लोनी छटा छिति पर दरसै लगै।
बोलि-बोलि केकी भेकी द्वन्द्व हैं मचावें सोर
धावा धुरवा के चहुँ ओर दरसै लगै॥
नाहक रिसानी मैं अजानी रितु पावस में
'रामफल' प्यारे बिना पीर सरसै लगै।
दोऊ पद बंदि के गोबिन्द गुहराती आज
बुंद-बारि बारिद बुलन्द बरसै लगै॥[7]

---

१. श्रीपाण्डेय 'कपिल' (शीतलपुर-बरेजा, सारन) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर। यह ग्राम छपरा-नगर से प्रायः १४ मील पश्चिम सरयू नदी के पावन तट पर स्थित है।

२. श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (दलीपपुर, शाहाबाद) ने इनका नाम 'भीमराय' बतलाया है।

३. कहा जाता है कि एक दिन स्वप्न में माँ दुर्गा ने आपके कानों में निम्नांकित पंक्ति कही—'था रम दो के घर निशा चढ़े कमठ के नूर।' तभी से आपका मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया। यदि यह आपकी ही रचना मानी जाय, तो यही आपकी अंतिम रचना थी। इसकी पूर्ति बरेजा (सारन)-निवासी रामकृष्ण त्रिवेदी नामक किसी व्यक्ति ने इस रूप में की थी—'पी प्याला बिश्वास का चढ़े दार मंसूर।' —सं०

४. श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (वही) के कथनानुसार ये आपके मामा थे। इनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रकाशित है।

५. यह पुस्तक अभी तक अप्रकाशित है। इसमें दुर्गाष्टक और दुर्गा-स्तुति की कविताएँ संगृहीत हैं।

६. यह पुस्तक भी अप्रकाशित ही है। इसमें नवों रसों और दसों महानायिकाओं पर बत्तीस घनाक्षरी छंद हैं।

७. श्रीपाण्डेय 'कपिल' (वही) द्वारा प्राप्त।

(२)

गूँथत है बेनी ढरि-ढरि जात बार-बार
आनन पै मुकुता लटकि सरसै लगै।
बाईं आँख फरकि सरकि जात नीबी कुंद
कंचुकी दरकि कै उरोज सरसै लगै॥
गाय-गाय चातक जनावे कान्ह-आगमन
सगुन सुहावन अनन्द दरसै लगै।
मूँदि मारतंड को घुमड़ि करि घेरि-घेरि
बुंद बारि बारिद बुलन्द बरसै लगै॥[1]

(३)

सुरसरि जटान है छटान सों बिराजमान
गोरे गात पंचमुख चक्षु त्रय लाले को।
धारे कंठ गरल प्रभा सो कहै 'रामफल',
मानौं जल-बिन्दु कंज जम्बु हू जमाले को॥
फुफके भुअंग अंग अम्बिका अरधंग माहिं
जारे है अनंग उपवीत गर डाले को।
चारो फल देनहार कृपानिधि है उदार
भजु रे मन बार-बार चन्द्रभाल वाले को॥[2]

(४)

गज चर्म को दुकूल सोहै कर में त्रिसूल
जपैं हिय मंत्र मूल ओढ़े ब्याघ्र छाले को।
भृंगी टेरि भावे औ मसान छार लावे
सर्व रागन को गावे रीझै धुनि सुनि गाले को॥
भैरोगन बीरभद्र मंत्री संगी सैन साजि
त्रिपुर सँहारि चढ़ि बृषभ बृद्ध छाले को।
चारो फल देनहार कृपानिधि है उदार
भजु रे मन बार-बार चन्द्रभाल वाले को॥[3]

---

१. श्रीपाण्डेय 'कपिल' (वही) द्वारा प्राप्त।
२. श्रीदुर्गाशंकर प्रसाद सिंह (वही) द्वारा प्राप्त।
३. उन्हीं से प्राप्त।

(५)

पीत पटा छाजत छटा नील निचोल अमोल।
तकि-तकि छबि छकि-छकि दुहुँनि झूलत रंग हिंडोल॥
ज्यों-ज्यों बरसत मेह लखि त्यों-त्यों सरसत नेह।
परसत प्यारी के पिया प्यारी पिय की देह॥[१]

(६)

पीत बसन प्यारे पहिरि, प्यारी हरित दुकूल।
रंग हिंडोलै रचि दियो, जानि समै मुद-मूल॥
झुलत झुलावत सखि-सखा, गावत राग मलार।
केलि-भवन बन-कुंज में, दम्पति करत बिहार॥[२]

※

व्रजविहारी लाल

आप शाहबाद-जिले के मटुकपुर-ग्राम के निवासी थे।[३] आपका जन्म उक्त ग्राम में ही, सं० १९०१ वि० (सन् १८४४ ई०) में, अगहन सुदी ६ को, हुआ था।

आपके पिता का नाम था पं० गुरुप्रसाद पाण्डेय। आपके पूर्वज पहले मौजा रानीपुर परगना अमौढ़ा, जिला गोरखपुर के निवासी थे।[४]

आपकी शिक्षा फारसी और उर्दू से आरम्भ हुई थी। आपका विवाह बचपन में ही हो गया। विवाह के पश्चात् आप अपने श्वशुर बा० काशीप्रसादजी[५] के साथ काशी में ही रहने लगे। उन्हीं की प्रेरणा से आप संस्कृत और हिन्दी के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए। एक प्रकार से वे ही आपके काव्य-गुरु थे। काशी में रहते समय आपका परिचय हिन्दी-सर्वस्व भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी से हुआ। उन्होंने साहित्य-रचना की दिशा में आपको बड़ा प्रोत्साहन दिया। सं० १९१७ वि० (सन् १८६० ई०) में, अपने पिता की मृत्यु हो जाने के पश्चात्, आपको पुनः मटुकपुर वापस आकर परिवार का भार सँभालना पड़ा।

---

१. श्रीपाण्डेय 'कपिल' (वही) द्वारा प्राप्त।
२. श्रीपुण्यात्मा 'विशारद' (सारन-जिला-निवासी) द्वारा प्राप्त।
३. श्रीगंगाप्रसाद (मध्यमेश्वर, काशी) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।
४. ये लोग पाण्डेय-उपाधिधारी श्रीवास्तव दूसरे-कायस्थ थे। मुसलमानी शासन-काल में इस वंश की बड़ी प्रतिष्ठा थी। ये लोग अमोढा और उसके आसपास के भू-भाग के मालिक थे। रुहेलों के आक्रमण के कारण भागकर ये शाहाबाद-जिले में गंगा-तट पर मड्डकपुर-नामक ग्राम बसाकर रहने लगे।—सं०
५. ये भी एक अच्छे विद्वान् और कवि थे। काशी में सिरिश्तेदार थे।

अँगरेजी-राज के कर्मचारियों के बीच आपकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। सन् १८५७ ई० के गदर के बाद राजभक्त होने के कारण आपने दरबारी की प्रतिष्ठा प्राप्त की और महारानी विक्टोरिया की पहली जुबली[1] के दरबार (बाँकीपुर, पटना) में निमंत्रित किये गये। बंगाल-प्रान्त के तत्कालीन गवर्नर ने सन् १८७३ ई० में (२७ नवम्बर को) आपको ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किया था। इसी प्रकार सन् १८७५ ई० में आप रोड-सेस-कमिटी के भी सदस्य बनाये गये।

आपका जीवन बहुत ही सात्त्विक और धार्मिक था तथा आप कट्टर सनातनी थे। विवाह की फजूलखर्ची, तिलक-दहेज की कुप्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, समुद्र-यात्रा आदि के आप बड़े विरोधी थे, किन्तु छुआछूत, जात-पाँत, खान-पान आदि में बहुत विचारवान् थे। अपने जीवन के अंतिम दिनों में आप स्वयंपाकी भी हो गये थे और अपनी जमीन्दारी का कुल भार अपने ज्येष्ठ पुत्र ताराप्रसाद को सौंपकर पुनः काशीवास करने चले गये। काशी में ही, ७१ वर्ष की आयु में, सं० १९७१ वि० (सन् १८१४ ई०) में पौष-कृष्ण १० को, १० बजे रात्रि में, पंचगंगा घाट पर आप कैलासवासी हुए।

आप एक बहुत बड़े विद्याव्यसनी थे। वेद-वेदांग, दर्शन, पुराण, साहित्य आदि प्रायः सभी विषयों का आप सानुराग अनुशीलन करते थे। संस्कृत और फारसी के तो आप मननशील विद्वान् थे ही, आपका विशेष प्रेम हिन्दी पर ही था और उसी की सेवा में आपने अपना समय व्यतीत किया। आपकी रचनाएँ समय-समय पर 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' में छपा करती थीं। आपके द्वारा रचित १३ गद्य-पद्यमयी पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, जो अब दुर्लभ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) प्रबोधचन्द्रोदय (नाटक), (२) रत्नावली नाटिका,[2] (३) संगीत-हरिश्चन्द्र,[3] (४) संगीत-लता,[4] (५) संगीत-सुधा,[5] (६) नीतिदृष्टान्त रामायण,[6] (७) नीति-दृष्टान्तमाला,[7] (८) बालबोध,[8] (९) कजली-कल्याण, (१०) आर्यमत-मार्त्तण्ड, (११) दिवान्ध-दर्पण,[9] (१२) वाराणसी-आदर्श[10] तथा (१३) विद्यासुन्दर नाटक। खेद है कि आपकी रचनाओं के अच्छे उदाहरण नहीं मिलते।

---

१. यह जुबली १ जनवरी, सन् १८७७ ई० को मनाई गई थी।

२. यह एक गीत-रूपक है।

३. यह भी एक गीत-रूपक ही है। इसमें आपका जीवन-परिचय प्रकाशित है। परिषद् के प्राचीन ग्रन्थ-शोध-विभाग में यह सुरक्षित है।

४. यह एक शृंगार-रसात्मक-काव्य है।

५. यह एक भक्ति-रसात्मक-काव्य है।

६. इसमें रामायण पर रचित नीतिमय दोहे संगृहीत हैं।

७. इसमें भी नीति के दोहे ही संगृहीत हैं।

८. यह बहुत दिनों तक बिहार में पाठ्य-पुस्तक थी।

९. यह एक प्रहसन है। यह अप्रकाशित ही रह गया। इसी में बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य-विनोद हैं।

१०. इसमें काशी के तीर्थों की सूची है।

उदाहरण

(१)

नहिं आये कंत हमारा रे सखिया।
जब लगि अली कलि बिकसत नाहीं
तब लगि पंथ निहारा रे सखिया
निसि-दिन बिरह-अगिन तन जारे
नैन भये जलधारा रे सखिया
स्रवत नैन-जल ब्रज-बिरहिन के,
भरि गये नदिया नारा रे सखिया।[1]

(२)

बालेपन से हौं रह्यौं, कासी माँहि स्वतन्त्र।
याके प्रति महिमा भयो, मो प्रति अद्भुत मंत्र॥
हुते ससुर मम योग्यवर, श्री कासी परसाद।
गुन-निधान विद्या विसद, यामे नहि किछु वाद॥
तिनके हौं आधीन ह्वै, सुनि बहु बचन विवेक।
आर्य-धर्म-अभ्यास लहि, प्रगट्यो विषय अनेक॥
श्रद्धा बाढ़ी धर्म में, इष्ट देव प्रति चाव।
आदि भूमिका दृढ़ यहै, सुधर्‌यो प्रकृत सुभाव॥[2]

❋

उमानाथ मिश्र

आप समकूरा-ग्राम (तारनपुर, पुनपुन, पटना) के निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थे।[3] आपके पिता का नाम था पं० दीनदयाल मिश्र। आपका जन्म आषाढ शुक्ल पंचमी को सन् १८४५ ई० में हुआ था। गाँव की पाठशाला और गुरु के घर में आपने संस्कृत की

१. श्रीगंगाप्रसादजी (काशी) द्वारा प्राप्त।
२. उन्हीं से प्राप्त।
३. श्रीपारसनाथ सिंह (तारनपुर, पुनपुन, पटना) द्वारा प्राप्त परिचय के आधार पर।

शिक्षा प्राप्त की थी। लेखक के अतिरिक्त आप सफल गणितज्ञ भी थे। आपकी रचनाएँ हैं—(१) गणित-बतीसी (२) गणित-छतीसी (३) रेखागणित (४) गणितसार (५) रससार (निबन्ध) और (६) खेती-बारी।[१] आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

*

ठग मिश्र[२]

आप डुमराँव (शाहाबाद) के निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे।[३] आपका जन्म सं० १९०२ वि० (सन् १८४५ ई०) में हुआ था।[४] आपके पिता का नाम था पं० जानकी मिश्र[५] और पितामह का पं० गंगाफल मिश्र।[६] आपके एक अनुज भी थे, जिनका नाम था पं० लॅगटू मिश्र। आपके पुत्र पं० विश्वनाथ मिश्र[७] अभी हाल तक जीवित थे।

अपने यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात् आपने भोजपुरेश के पुरोहित पं० ईश्वरदत्त मिश्र से प्रक्रिया व्याकरण (सारस्वतचन्द्रिका) तथा काव्य का अध्ययन किया। इसके बाद आपने दलीपपुर (जगदीशपुर, शाहाबाद) के म० म० पं० रघुनन्दन त्रिपाठी, विद्यासागर से 'चन्द्रालोकालंकार' और पं० राधावल्लभ जोयसी ('विप्रवल्लभ' कवि) से पिंगल तथा व्रजभाषा के अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया। साहित्य का अध्ययन समाप्त कर आप संगीत की ओर प्रवृत्त हुए। इस दिशा में आपके गुरु हुए संगीताचार्य बच्चू मलिक। उनके निर्देशन में संगीत-शास्त्र का अध्ययन कर आपने सितार और मृदंग बजाने का भी अभ्यास किया।

---

१. ये सारी रचनाएँ पुस्तकाकार में खड्गविलास प्रेस (बाँकीपुर, पटना) से प्रकाशित हुई थीं। 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ३८७ में उल्लिखित 'उमानाथ मिश्र' आप ही जान पड़ते हैं, जिनकी 'खेतीबारी' नामक पुस्तक सन् १८८९ ई० में खड्गविलास प्रेस से ही प्रकाशित हुई थी।—सं०

२. आपका अति संक्षिप्त परिचय श्रीत्रिभुवननाथ सिंह 'नाथ' तथा श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त ने भी लिखकर प्रकाशित कराया था।—देखिए, 'माधुरी' (मासिक, वर्ष ६, खड १, संख्या २, सितम्बर, सन् १९२७ ई०), पृ० २९८ तथा 'गृहस्थ' (साप्ताहिक, भाग १५, अंक ४५, गुरुवार, दिसम्बर, सन् १९३१ ई०), पृ० ५-७।

३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), क्रम-सं० २२५२, पृ० १२३०।

४. मिश्रबन्धुओं ने आपका जन्म काल सं० १९०३ वि० (सन् १८४६ ई०) बतलाया है। —देखिए, वही।

५. ये डुमराँव के महाराज महेश्वरबख्श सिंह के दरबारी पंडित थे।

६. ये प्रो० अक्षयवट मिश्र के प्रपितामह थे। इनकी विशेष ख्याति इनकी सुन्दर हस्तलिपि के कारण भी थी। इनके इसी गुण से मुग्ध होकर महाराज जयप्रकाश सिंह ने इन्हें अपने आश्रय में रखा था। इनके दो पुत्र थे—बड़े पं० संगम मिश्र और छोटे पं० जानकी मिश्र—देखिए, 'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० २८-२९।

७. ये व्याकरण तथा ज्यौतिष के अच्छे ज्ञाता थे।

आप पहले महाराज राधाप्रसाद सिंह के आश्रय में रहकर 'राजकुमारजी' की पूजा करते थे। कहते हैं, उक्त महाराजा के दरबार में आपका बड़ा सम्मान था। किन्तु, कुछ ही दिनो के बाद आप पराधीनता का बंधन तोड़कर देशाटन के लिए निकल पड़े। इस यात्रा-क्रम में आप सबसे पहले दरभंगा पहुँचे। उस समय महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह लाट साहब से खिताब पाने के उपलक्ष्य में अपने दरबार में आनन्दोत्सव मना रहे थे। उस दरबार में उपस्थित होकर आपने अपने आशुकवित्व-गुण का परिचय दिया,[१] जिससे महाराज बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने आपको प्रचुर पुरस्कार प्रदान किया। दरभंगा से आप गया-जिले के मकसूदपुर के दरबार में पहुँचे। वहाँ के राजा ने आपको एक समस्या दी, जिसकी पूर्त्ति आपने बड़े ही अच्छे ढंग से की। इस पर राजा ने आपका सम्मान किया। इसी प्रकार अनेक वर्षों तक आप विभिन्न राज्य-दरबारों में भ्रमण करते और पुरस्कार प्राप्त करते रहे। देश-भ्रमण से जो घर लौटे, तो फिर कहीं निकले नहीं। एक सच्चे कर्मकांडी ब्राह्मण की तरह आपका सारा दिन पूजा-पाठ में ही व्यतीत होता था। आप प्रतिदिन त्रिकाल-संध्या-तर्पण और प्रति अमावस्या को पिंडदान करते थे। अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक आप जगदम्बा की पूजा-भक्ति में ही मग्न रहे। दुर्गासप्तशती का पाठ आपका नित्य का नियम था। वासन्ती एवं शारदीय नवरात्रों में विन्ध्यवासिनी भगवती की आराधना के लिए आप प्रत्येक वर्ष विन्ध्याचल धाम जाया करते थे। मकर-संक्रान्ति में प्रयाग भी आप नियमित रूप से जाते थे।

आप फारसी और उर्दू के भी ज्ञाता थे। हिन्दी और संस्कृत के तो आप एक अच्छे पंडित थे ही। प्राचीन कवियों की हजारों कविताएँ आपको कंठस्थ थीं। आप स्वयं भी ब्रजभाषा में बड़ी ही सरस, सुग्राह्य और रोचक कविताएँ किया करते थे। आप सं० १९५१ वि० (सन् १८९४ ई०) में परलोकगामी हुए।

---

१. उस दरबार में आपने जो पंक्तियाँ पढ़ी थीं, वे इस प्रकार हैं—

(क) महाराज आये सब सोभा के समाज-युत,
डेरा कियो तितै जितै जाको मन भायो है।
दियो है खिताब लाट साहब जू पटना मे,
राजन समाज 'ठग' मुख ते सुनायो है।
सोभा के समाज लैके पुर को पधारे जबै,
तबही ते जाचकन रतन लुटायो है।
आनद बधाई बाजै लक्ष्मीश्वरसिंहपुर,
मानों राजगद्दी माँह अवध सुहायो है।
—'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० ३३।

(ख) पाटलिपुत्र सुआइगो लाट त्यौं आनँदयुक्त बुलाइ नृपालन।
भाई भुपालन के सँग लै शुभ चौस मैं खिल्लत दै हियहालन।
तापै कहे नृप जाहु घरे 'ठग' नित्य हरो दुखिया-दुख जालन।
विज्ञ सुजान सऊ उपदेस दै नीति सो राज करो तुम पालन॥
—वही, पृ० ३३-३४।

उदाहरण

(१)

अबुध अधीर छिन थीर न रहत नेक
बावरो सो चंचल सुबास-रस पागै ना।
सुमन सरोज जूही मालती को दूर करि
सेमर सो आसा भूरि पूरि कहुँ लागै ना॥
कौने-कौने ठौर 'ठग' कादर कपूत फँस्यो
करु दृगकोर जाते विषय-रोग रागै ना।
चरन-सरोज विन्ध्यवासिनी तिहारे छोड़ि
मधुप हमारो मन और कहूँ भागै ना॥[1]

(२)

जेते जगतीतल में प्रकट चराचर हैं
जिन्हें निज जानि नेह अँखियाँ दरस तू।
कहे 'ठग' स्वेत जस छायो लोक-लोकन में
जीवन के मूल यातें सबमें सरस तू।
जाचक निहाल करी पौरे-पौरे जाय-जाय
नेह भरे नैनन सो प्रीतिहू परस तू।
करो करजोरे जगदम्ब या अरज तोते
निज-पद-भक्तन पै भक्ति ही बरस तू॥[2]

(३)

ननदी औ जेठानी करैं घर वेर कमोरिन मै रंग घोरियो ना।
इत आई हूँ सास की चोरी अबै हम पाब परै झकझोरियो ना।
रस रंग सुढंग करो हित सो 'ठग' नेह ते तो मुख मोरियो ना।[3]
यह मानिये मोरी निहोर लला तुम लाल गुलाल सो बोरियो ना॥[4]

---

१. 'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० ३० ।

२. वही ।

३. इस पंक्ति के उत्तरार्द्ध का पाठान्तर इस प्रकार मिलता है—'तेह उते मुख मोरियो ना'—देखिए, 'गृहस्थ' (वही), पृ० ५ ।

४. 'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० ३२ तथा 'गृहस्थ' (वही), पृ० ५-७ ।

(४)

'ठग' पापी कपूत कलंकी तऊ पर कंटक में झकझोरियो ना।
नित ही षट सत्रु जो मेरे अहैं तिनको निज फंद सों छोरियो ना।
मम सारी कुबानिन को सुनिकै अब हाय हिये विष घोरियो ना।
जगदम्ब भरोसो यही तुमरो भव बारिधि में हमैं बोरियो ना॥[१]

*

बनवारीलाल मिश्र

आप भागलपुर के लालूचक मुहल्ले के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।[२] आपका जन्म सं० १९०२ वि० (सन् १८४५ ई०) में हुआ था। आप हिन्दी और देश के अनन्य भक्त थे। मृत्यु-शय्या पर पड़े-पड़े भी हिन्दी की पुस्तक सुनते और देश की दशा पूछते रहते थे। *भगवद्गीता, उपनिषदें* और *तुलसी-सतसई* आपकी प्रिय पुस्तकें थीं। साहित्यकारों का सम्मान करने में भी आप अद्वितीय थे। आपने कई सभाएँ खुलवाई थीं। कहते हैं कि आप एक असाधारण साहसी पुरुष थे। जब आप कुल १८ वर्षों के थे, तभी आपने केवल लाठी से एक बाघ को मार डाला था। आपके पाँच पुत्र थे, जिनमें पं० शिवदुलारे मिश्र हिन्दी के द्विवेदी-युगीन कवि हैं, जो भागलपुर में आज भी वकालत करते हैं। आपके एक मित्र भगलू तिवारी[३] थे, जो टिकारी-ग्राम (गया) में निवास करते थे। उन्होंने ही आपको हिन्दी में काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त किया। आपकी काव्य-रचनाएँ खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों में ही मिलती हैं। आपकी पुस्तकाकार रचनाओं के नाम हैं—(१) ज्ञानविनोद (ज्ञानवाटिका), (२) नाटक, प्रहसन आदि।

आप सं० १९७४ वि० (सन् १९१७ ई०) की कार्त्तिक सुदी गोपाष्टमी को परलोक सिधारे।[४]

---

१. 'मनोरमा' (मासिक, वर्ष ३, भाग २), पृ० ७२-७३ में प्रकाशित प्रो० अक्षयवट मिश्र के लेख से। —देखिए, 'गृहस्थ' (वही), भी, पृ० ७।

२. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग, प्रथम सं०, सं० १९९१ वि०), पृ० १०४।

३. भागलपुर-निवासी प० शिवरत्नमिश्रजी के कथनानुसार आपने अपनी सारी रचना इनके नाम पर ही की थी। ये कुछ कविता करना भी जानते थे। लेकिन 'श्रीकमला' (मासिक) में लिखा है कि 'न जाने क्यों आप भगलूमिश्र के नाम से ही अपनी कविता छपवाते थे।'—देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही), पृ० १०४-५ तथा 'श्रीकमला' (मासिक, दिसम्बर, सन् १९१७ ई०, भाग २, अंक १२), पृ० ४५०।

४. 'श्रीकमला' (वही), पृ० ४५०। मिश्रबन्धुओं ने आपका निधन-काल सं० १९७२ वि० (सन् १९१५ ई०) बतलाया है। —देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही), पृ० १०५।

उदाहरण

काया बीच में जाकर बैठा देखत सकल तमासा है ;
देखो वह है अजब खिलाडी समझे में नही आता है।
पंच बयारि लगे मन डोले तिहूँ लोक भरमाता है ;
जहँ-जहँ मनुआ खेल करत है, तहँ-तहँ खेल खिलाता है।
चित माया दोउ नाच नचावत कुल परिवार बनाता है ;
असे रहत चहुँ ओर से मन को ता बिच आप न आता है।
है वह सदा सबन ते न्यारा छाया कर दरसाता है ;
मन थिर करके देखहु 'भगलू' आपै आप लखाता है।[1]

*

गुरुसहाय लाल

आप गया-जिले के 'नादिरा' ग्राम-निवासी कायस्थ थे।[2] आपके पिता का नाम मुंशी नूरनारायण लाल था।

आपका जन्म सं० १९०३ वि० (फसली सन् १२५३) में २१ आषाढ (३० जून सन् १८४६ ई०) को हुआ था[3]। बचपन से ही आप बड़े शान्त स्वभाव के थे। पाँच-छः वर्ष की उम्र तक आप की प्रकृति एवं प्रवृत्ति विलक्षण रही। किसी ने खिला दिया, तो खा लिया ; न माँगते, न हठ करते। प्रेत का भय आपको छू नही गया था। शैशव से ही आपके मन का रुझान भगवद्भक्ति की ओर था। वाक्-सिद्धि का चमत्कार भी आपमें झलकता था। सात-आठ वर्ष की अवस्था में आपने हिन्दी पढ़ना और नागरी लिखना सीखा। उस समय आप अपने पिता के साथ 'नवादा' (गया) में रहते थे, जहाँ वे

---

१. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० १८५।

२. 'कल्याण' (मासिक, मानसांक, अगस्त, सन् १९३८ ई०), पृ० ९१७।

३. (क) श्रीईश्वरीप्रसाद वर्मा 'शब्द' (मछुआटोली, पटना ४) द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर। 'कल्याण' (वही), (पृष्ठ ९१७-१८) में आपका परिचय, 'मानस के प्राचीन टीकाकार' शीर्षक लेख में छपा है। वह श्रावण, अगस्त, सन् १९३८ ई० (सं० १९९५ वि०) में प्रकाशित हुआ था। उक्त लेख के लेखक महात्मा अंजनिनन्दनशरणजी ने लिखा हैं कि कोई चालीस वर्ष हुए, लगभग सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर आपने यह नश्वर शरीर छोड़ा। इस हिसाब से आपका जन्मकाल सन् १८२८ ई० निश्चित होता है।—स०

(ख) 'कल्याण' के लेखानुसार आपका जन्म पटना-जिले के 'नादिरा' ग्राम में हुआ था। श्रीयशोदानन्द अखौरी आपका जन्मस्थान पटना-जिले का 'ओन्दा' नामक ग्राम (विहार के निकट) बतलाते हैं।—देखिए 'कल्याण' (वही), पृ० ९१७ तथा 'विहार की साहित्यिक प्रगति' (वही), पृ० २९६।

मुख्तार थे। वहीं आपने अपने बहनोई मुंशीलालजी से फारसी पढ़ी और 'हरे कृष्णाय गोविन्दाय वासुदेवाय नमोनमः' के जप का पाठ अभ्यस्त किया।

बारह वर्ष की अवस्था में आपकी इच्छा के विरुद्ध आपका विवाह भदोखरा-निवासी मुंशी सुवंशलाल की पुत्री से हुआ। पर जब चार वर्षों के बाद द्विरागमन हुआ, तब आपका मन सांसारिक माया-प्रपंच से विरक्त-सा रहने लगा और आप साधु-संतों की खोज में व्यस्त रहने लगे। आप जिले के 'बराबर' पहाड़ पर भी महात्माओं के दर्शन और सत्संग के लिए जाया करते थे।

एकाएक फारसी की पढ़ाई से भी आपका मन उचट गया। आपकी मनःस्थिति देख-समझकर आपके मुख्तार पिता ने आपको अपना 'ताईद' (सहायक-लेखक) बना लिया। नवादा मे ही आपने मौलवी काजी लालजमा खाँ से अरबी पढ़ी। फिर मुंशी रामशरण लाल से पढ़ने लगे। अपने गाँव (नादिरा) मे भी मखदुमपुर-तेलहाड़ा (बाढ़, पटना) के मौलवी शुजायत अली से आपने अरबी का ज्ञान प्राप्त किया। इस तरह विद्याध्ययन से अनुराग बढ़ा, तो अपने पिता से पिङ्गल और काव्य तथा पं० मतिरामजी से 'सारस्वत व्याकरण' पढ़ने लगे। पं० ठाकुरदत्तजी से आपने श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ी। विद्यानुराग-वृद्धि के इसी क्रम में आपने पुनः छः महीनों तक बंगोलिया (बिहारशरीफ) के एक नामी आलिम और कालिम फकीर मौलवी वजीर-उद्दीन से फारसी भी पढ़ी थी। किन्तु, आपके मन में वैराग्य का जो उदय हो चुका था, उसका प्रकाश दिन-दिन बढ़ता गया। बाबा सोहनदास 'रामजी' नामक एक सिद्ध सन्त के सत्संग से प्रभावित होकर उन्हे अपना गुरु बना लिया। आपका झुकाव क्रमशः सन्त-समाज के सत्संग की ओर होता गया, इसीलिए जीवन-निर्वाह के निमित्त कई स्थानों में रहने पर भी कही आपका मन टिका नही।

आपने कानपुर के महात्मा विश्वम्भरदासजी से योगाभ्यास की दीक्षा प्राप्त की और फिर बाबा बोधकृष्ण भारती को अपना गुरु बनाया। लगभग दस वर्षों तक आप योग-साधना में ही लगे रहे। सं० १९६२ वि० में चैत्र-कृष्णपंचमी (१४ मार्च, सन् १९०५ ई०) को ५८ वर्ष, ८ मास और २४ दिन की आयु मे आप परम धाम सिधारे।[१]

आपकी लिखी निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हैं—(१) सज्जन-विलास[२] (एक सौ अड़सठ शेरों में सत्संग-भक्ति-योग-सम्बन्धी विचार और भजन), (२) निर्वाणशतकम्[३] (एक सौ उन्नीस दोहों मे चुने हुए एक सौ अभ्यासों की युक्तियाँ), (३) श्रीगुरुगम-विलास[४] (गद्य में अष्टाङ्गयोग, प्राणायाम, खेचरी, षट्कर्म, समाधि आदि का वर्णन),

---

१. 'कल्याण' के लेखानुसार आप सन् १८९८ ई० में, लगभग सत्तर वर्ष की आयु में साकेतवासी हुए। —देखिए, वही, पृ० ६१८।

२. सं० १९३१ वि० (सन् १८७५ ई०) में प्रकाशित।

३. फसली सन् १२८२ के भाद्र मास (११ अगस्त, सन् १८७५ ई०) में प्रकाशित।

४. सं० १९६५ वि० में प्रकाशित।

(४) श्रीतत्त्वचिन्तामणि (श्रीमद्भगवद्गीता के 'ऊर्ध्वमूलमधःशाख' श्लोक पर सोलह पृष्ठों की टीका), (५) तत्त्वतरङ्गिणी (गद्य में लिखित पाँच तरंगों में सृष्टि, कला, विभूति, कैवल्य आदि का वर्णन), (६) अनुभव-प्रभाकर (गद्य में लिखित नव प्रकरण), (७) सन्त-मनः उन्मनी[1] (रामचरितमानस के बालकाण्ड की टीका), (८) पातंजल योगदर्शन[2] (केवल पाँच सूत्रों का भाष्य), (९) श्रीसद्गुरुस्तवराज (दो खंड—एक में पच्चीस छन्द और दूसरे मे इक्कीस), (१०) मानस-अभिराम[3] (रामचरितमानस की सड़सठ गुप्त प्रयोग-विधियाँ—सं० १९६९ वि० में मुद्रित) और (११) परतर-अभिधानम् (श्रुति-स्मृति के प्रमाणों के साथ योगादि के गूढ़ रहस्यों का वर्णन)।[4]

उदाहरण

तत्त्वों को देखा स्वांस में स्वर ले गये ब्रह्माण्ड में।
निःतत्त्व पद पाया नही स्वरोदय सधा तो क्या हुआ॥
कोई नासिका हिय तिर्कुटी ब्रह्माण्ड हू जा जा घुसें।
कुछ भी मरम अनबूझ ना अनुभव हुआ तो क्या हुआ॥
अनहद में सुरती जा लगी आनन्द में जीती पगी।
निज राम की धुन को गम नही बाजा बजा तो क्या हुआ॥
पढ़-पढ़ के नाना ग्रन्थ को वृत्ती अहं ब्रह्मास्मि।
अनुभव न तुरीयातीत का बकबक हुआ तो क्या हुआ॥
हिन्दू बने कोउ मुसलमान और पंडित बने कोउ मौलवी।
पाया नही पिरतम कभी मजहब मिला तो क्या हुआ॥
पूज्यो जो नाना देवता औ व्रत तीरथ भी किया।
सतगुरु सरन पाया नही रच पच मुआ तो क्या हुआ॥[5]

※

---

१. खड्गविलास प्रेस (बाँकीपुर, पटना) से प्रकाशित।
२. सन् १९०५ ई० में प्रकाशित।
३. सन् १९०६ ई० में प्रकाशित और सन् १९१२ ई० (सं० १९६९ वि०) में मुद्रित।—देखिए, 'गया के लेखक और कवि' (वही), पृ० ४१।
४. आपकी एक पुस्तक फारसी में भी प्रकाशित है—'सिर्रे अलफी', जिसमें ३८ शेर हैं। 'गुरुशरण'-उपनाम से लिखे आपके ४२ भजन भी हैं, जो अद्यावधि अप्रकाशित हैं। —सं०
५. श्रीईश्वरीप्रसाद वर्मा 'शब्द' (वही) से प्राप्त।

चतुर्भुज मिश्र[1]

आप गया-जिले के डुमरिया-नामक स्थान के निवासी थे। आपका जन्म सं० १९०३ वि० (सन् १८४६ ई०) में, श्रीरामनवमी को, हुआ था।[2]

आपके पिता का नाम था पं० यदुराज मिश्र और पितामह का पं० देवराज मिश्र। आपके एक सहोदर ज्येष्ठ भ्राता भी थे, जो नूनूराम के नाम से विख्यात थे।[3] संस्कृत और हिन्दी की प्रारम्भिक शिक्षा आपको अपने पिता से ही प्राप्त हुई थी। तत्पश्चात् आप लगभग तीन वर्षों तक स्कूल में पढ़े। स्कूली जीवन समाप्त करने के बाद आप कई वर्षों तक गया-ट्रेनिंग-स्कूल और हजारीबाग हाई स्कूल के संस्कृत-शिक्षक रहे। वहीं से आपने अवसर-ग्रहण भी किया। लगभग पचीस वर्ष की उम्र से ही आप साहित्य-सेवा की ओर प्रवृत्त हुए। गया और हजारीबाग में रहकर आपने प्राचीन काव्य-ग्रंथों का जमकर अध्ययन किया, जिसके परिणामस्वरूप आपने हिन्दी में अनेक ग्रंथो की रचना कर डाली। आप भक्ति-साहित्य के कवि थे। भक्तो के बीच आपकी रचनाओं को आज भी सम्मान प्राप्त है। आपके द्वारा रचित ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—(१) आल्हा-रामायण, (२) गयावासी रामायण, (३) गयावासी भागवत, (४) सरोज-रामायण, (५) उद्देश्य-आनन्द-कल्लोलिनी, (६) सुबोध-सूर्योदय (उपन्यास), (७) मनोहर रामायण, (८) सुबोध-चन्द्रोदय (स्वामी दयानन्द सरस्वती के मत का खण्डन), (९) गीता-सार और (१०) बिरह-बतीसी। इनमें आपकी प्रथम रचना सर्वाधिक प्रसिद्ध है।[4]

आप सं० १९७५ वि० (सन् १९१८ ई०) में हजारीबाग-जिले के 'जोरी' नामक ग्राम में, ७२ वर्ष की आयु में परलोक सिधारे।

उदाहरण

(१)

समय को पायकर कन्हुआ, तुरत घर से पधारा है।
मिली पुनि राधिका जाकर, जहाँ यमुना किनारा है॥
नहीं कोइ तीसरा वहँवाँ, मिले दोउ वीर हैं जहँवाँ।
विहरते तीर पै तरुतर, मानो गोटा किनारा है॥

---

१. इस नाम के एक और कवि १८वीं शती में हो गये हैं, जो मिथिला के निवासी थे। उन्होंने मैथिली में स्फुट काव्य-रचनाओं के अतिरिक्त 'भवानीस्तुति' नामक एक ग्रन्थ का प्रणयन भी किया था। कुछ लोग इनका स्थिति-काल १५वीं शती बतलाते हैं।—देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १४८।

२. "गुन नभ निधि पुनि चन्द्रमा, विक्रम संवत् क्यार।
रामजन्म नवमी तिथी, जन्म दीन करतार॥"
—देखिए, 'गयावासी भागवत' (पं० चतुर्भुज मिश्र, प्रथम सं०, सन् १८३५ ई० दशम स्कन्ध), पृ० २८४।

३. "यदुराजः पितास्माकं देवराजः पितामहः।
नूनूरामेति विख्यातो ज्येष्ठभ्राता सहोदरः॥"
—(वही), पृ० २८४।

४. [illegible]का प्रकाशन वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस (बम्बई) से हुआ था। आपके अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हैं।

चहकते डार पै चिड़ियाँ, मिले दस बीस एक बिरियाँ।
लगे पुनि गूँजने भौरा, कुहुँक कोकिल के न्यारा है॥
मिलो ज्यो आँख से आँखे, अधर रस चूमकर चाखें।
चमाचम सीस पै बेंदी, उगी जनु सुक्रतारा है॥
दई गल बाँह कान्हा ने, झुकाई सीस राधा ने।
लचक गइ अंग प्यारी के, दिया कन्हुआ सहारा है॥
अंधारी छा गई रातें, भये त्यों काम से ताते।
मयन के रंग मे राते, भयो चन्दा उजारा है॥
सुनो भुजचार की बाते, भये रस रंग में राते।
चले पुनि गीत को गाते, वही यमुना किनारा है॥[1]

(२)

सीता को सोच भारी, रोने लगी बेचारी।
भूले मुझे खरारी, सुध ना लिया हमारी॥
अब प्रान ही को खोवें, मिलने की आस धोवे।
भर नीद नाथ सोवें, हम बाट कबलो जोवें॥
त्रिजटा ने देख पाई, सपना तुरत सुनाई।
पहरा तुरत उठाई, बैठी किनार जाई॥
हनुमान ने बिचारा, कैसे करूँ सहारा।
परतीत ह्वै हमारा, त्यो मुद्रिका किनारा॥
अंगुठी तुरंत डारा, मानो गिरा अंगारा।
सीता करे विचारा, टूटा सरग से तारा॥
मन मे बिचार आई, अंगुठी तुरत उठाई।
तहँ राम नाम पाई, कैसे यहाँ पै आई॥
बनवास की कहानी, हनुमान ने बखानी।
यह बात मैंने जानी, तूही है राम रानी॥[2]

*

---

१. 'गयावासी भागवत' (वही, दशम स्कन्ध), पृ० २१।
२. 'मनोहर रामायण' (प० चतुर्भुज मिश्र, प्रथम सं०, सन् १९१४ ई०), पृ० २७।

सैयद अली मुहम्मद

आपका उपनाम 'शाद' था। इसी नाम से आप रचनाएँ करते थे।

आपका जन्म सन् १८४६ ई० मे पटनासिटी में हुआ था।[१] आपके पूर्वजों का सम्पर्क पुराने मुगल बादशाहों से था।[२] अपने बाल्यकाल मे आपने एक ब्राह्मण-पंडित की देखरेख में संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन किया था। यों, आपकी शिक्षा-दीक्षा फारसी और अरबी मे भी हुई थी, जिसके कारण उर्दू-भाषा पर आपका अद्‌भुत अधिकार था। आपकी गणना उर्दू के श्रेष्ठ कवियों में होती है। बिहार में तो अपनी उर्दू-शायरी के लिए आप सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं।[३] आपकी काव्य-कला-कुशलता से प्रभावित होकर सरकार ने आपको 'खाँ-बहादुर' की उपाधि से तो विभूषित किया ही था, आपके लिए एक हजार रुपये का सालाना वजीफा भी निश्चित कर दिया था, जो सन् सत्तावन के सिपाही-विद्रोह के समय से बन्द हो गया।

बहुभाषाविज्ञ होने के कारण आप उर्दू के अतिरिक्त हिन्दी में भी कविताएँ करते थे। आपके द्वारा रचित भोजपुरी-कविताओं को अच्छी प्रसिद्धि मिली। आप सन् १९२७ ई० के जनवरी मास मे परलोक सिधारे।

उदाहरण

(१)

काहे अइसन हरजाई हो रामा।
तोरे जुलुमी नयन तरसाई हो रामा॥
सास ननद मोका ताना देत हई।
छोटा देवरा हँसि के बोलाई हो रामा॥

---

१. 'शेर ओ सुखन' (अयोध्याप्रसाद गोयलीय, तीसरा भाग, प्रथम सं०, सन् १९५४ ई०), पृ० ११।

२. "आपके कई पूर्वज मुगलकालीन सल्तनत में ऊँचे-ऊँचे पदों पर थे। आपके परिवारवालों के हाथों में बहुत दिनों तक इलाहाबाद, मुलतान, अजीमाबाद, पूर्णिया, हुसेनाबाद आदि स्थानों की सूबेदारी थी।" —देखिए, 'भोजपुरी के कवि और काव्य' (वही), पृ० ९८।

३. "आपने उर्दू-कविता को एक नई शैली, एक नया रूप दिया है। नियाज फतहपुरी के विचार में आप गजलें बनाने में बड़े उच्चकोटि के कवि थे। आपमें 'मीर' और 'दर्द' की करुणा, मोमिन की गहराई, गालिब की ऊँची उड़ान और 'अमीर' और 'दाग' की सरलता सब एक ही वक्त में ऐसी मिली-जुली नजर आती है कि अब जमाना मुश्किल से कोई दूसरी नजीर पेश कर सकेगा। आपने बीसों पुस्तकें लिखीं, जो बहुत पसन्द की जाती हैं। इनमें ये संग्रह मशहूर हैं—मैखन-ए-इलहाम, फकरे बलीग, मरातुल खयाल, नवाये वतन, तारीखे सूब-ए-बिहार और जहूरे रहमत।"—देखिए, 'उर्दू शायरी और बिहार' (रजा नकवी, प्रथम सं०, सन् १९५७ ई०), पृ० ४८।

मोरा सैयाँ मोरो बात न पूछे।
तड़पि-तड़पि सारी रैन गँवाई हो रामा ॥
'शाद' पिया को ढूँढन निकली।
गलिअन-गलिअन खाक उड़ाई हो रामा ॥[1]

(२)

रुत फिरी सारी हरी डालो में फूटी कोपल
आ गये फूलों में फल।
एक यह उजड़ा हुआ दिल है कि न फूला न फला
और सूखा ही किया ॥
काली-काली वह घटाएँ वह पपीहों की पुकार
धीमी-धीमी वह फुहार।
अबके सावन भी हमारा योंही रोने में कटा
क्या कहें चुप के सिवा ॥[2]

*

हर्षनाथ झा

आप दरभंगा-जिले के 'उजान'-ग्राम (शारदापुर टोला) के निवासी श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। आपका जन्म सन् १८४७ ई० में हुआ था।[3] आपके पिता का नाम पं० व्रजनाथ झा और माता का नाम शीलवती देवी था। आपके पूर्वजो में नन्दन नाम के एक कवि हुए।[4] आप पं० मोदनाथ झा और पं० गोपाल ठाकुर के शिष्य थे। उन्ही के चरणों में बैठकर आपने, सन् १८६२ से ६८ ई० तक, आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् आप काशी चले गये। वहाँ आपने पं० राजाराम शास्त्री, पं० बाल शास्त्री, पं० नृसिंह शास्त्री जैसे प्रकांड पंडितो की देखरेख में अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया।

---

१. 'भोजपुरी के कवि और काव्य' (वही), पृ० ९८-९९। कुछ दिन पूर्व आपके पौत्र श्रीनकी अहमद, सिवान (सारन) में, जुडीशियल मजिस्ट्रेट थे। उन्हीं के यहाँ आपकी लिखी 'फिकरे बलीग' नामक पुस्तक की पाण्डुलिपि श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह को प्राप्त हुई थी। उसमें आपकी, सन् १८६५ से ७० ई० तक की, विभिन्न भाषाओं की, रचनाएँ संगृहीत हैं। हिन्दी की कोई रचना नहीं मिली, पर उर्दू की रचनाओं में भी हिन्दी का पुट मिलता है। उक्त भोजपुरी गीत श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंहजी को वहीं से मिली थी।—देखिए, वही, पृ० ९८।

२. 'उर्दू-शायरी और बिहार' (वही), पृ० ५३।

३. 'A History of Maithili literature' (वही), P. 349. श्रीजनार्दन झा ने आपका जन्म-काल सन् १८४६ ई० बतलाया है। —देखिए, 'सुधा' (मासिक, वर्ष ६, खंड २, जून, सन् १९३३ ई०), पृ० ४६०।

४. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १३६।

सन् १८७१ ई० में आप काशी से फिर मिथिला चले आये। मिथिला में आने पर आपकी नियुक्ति, मिथिला-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह (सन् १८८०-६८ ई०) के दरबार में, राजपंडित के रूप में, हो गई। अपने जीवन के अंतकाल तक आप उक्त दरबार में ही रहे। उक्त दरबार में रहकर आपने संस्कृत में अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। मैथिली में आपके द्वारा रचित ये नाटक मिलते हैं—(१) उषा-हरण,[१] (२) माधवानन्द[२] और (३) राधाकृष्ण-मिलन-लीला। ये सभी नाटक मिथिला के कीर्त्तनिया-नाटको की परम्परा में आते हैं। इन्ही नाटकों के कारण आपका स्थान उक्त परम्परा में अति उच्च माना जाता है। आपके नाटकों में 'उषा-हरण' और 'राधाकृष्ण-मिलन-लीला' अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुए। 'राधाकृष्ण-मिलन-लीला' ब्रज के रासधारियो द्वारा ब्रजभाषा में भी अनूदित होकर कई बार अभिनीत हुआ। उक्त नाटको के मैथिली-गीतों के अतिरिक्त मैथिली में आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने आपको प्रथम कोटि का मैथिल कवि बतलाया है। आपका निधन, ५१ वर्ष की आयु में, सन् १८६८ ई० में हुआ।[३]

उदाहरण

(१)

अबिरल जलधर गरजत घन रस बरिसत रे।
दादुल सङ्कुल रमसत दामिनि चमकत रे॥
तड़ित चमकत जलद गरजत करत दादुल सोर ओ।
तिमिर सङ्कुल करत आकुल निसिथ भादब घोर ओ॥
अबतरु देबकि नन्दन जन सुख चन्दन रे।
सुर ना मुनि क्रित बन्दन कन्स निकन्दन रे॥
उगल जदुकुल कमल दिनकर सकल जन सुख कन्द ओ।
नन्द नयन चकोर सम्पद पुरन सारद चन्द ओ॥

---

१. आपने इसकी रचना महाराज रुद्रसिंह के पोते एकरदेश्वर सिंह के आश्रय में की थी। इसका प्रकाशन भी डॉक्टर अमरनाथ झा के सम्पादन में 'हर्षनाथ काव्य-ग्रंथावली' के अन्तर्गत हुआ है।—सं०

२. डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० २७७।

३. अबतक इसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम सस्करण पं० चन्दा झा के सम्पादन में यूनियन प्रेस (दरभगा) से और द्वितीय प० ऋद्धिनाथ झा और डॉ० अमरनाथ झा के सम्पादन में इंडियन प्रेस (इलाहाबाद) से 'हर्षनाथ काव्य-ग्रंथावली' के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्राचीन पोथियाँ भी प्राप्त होती हैं। —सं०

अमल कमल दल गञ्जन लोचन खञ्जन रे ।
त्रिभुवन आपद भञ्जन जग अनुरञ्जन रे ।।
जगत रञ्जन बिपद भञ्जन बदन गञ्जित चान ओ ।
नबल जलधर रुचिर तनु बर बिजित म्रिगमद मान ओ ।।
मनि मानिक मुकुता कत कञ्चन अभरन रे ।
जत छल नन्द भबन धन पाओल गुनि जन रे ।।
तुरग, गज, रथ, कनक, मानिक, रतन, मुकुता माथ ओ ।
पावि नट भट गनक चटपट भेल सकल सनाथ ओ ।।
सुर गन सहित पुरन्दर करि सुभ डम्बर रे ।
देखल जदुकुल सुन्दर आएल अम्बर रे ।।
बरिस सुर गन कुसुम परसन मुदित पुलकित अङ्ग रे ।
देव दुन्दुभि बजत अम्बर होत मङ्गल रङ्ग ओ ।।
नारि छिनाओन दगरिनि कत धन पाओल रे ।
हरखित गोपबधू जन सोहर गाओल रे ।।
हरखि गाबहिँ नगर नागरि हरहिँ सुर नर ग्यान ओ ।
सुनत खग म्रिग रहत निश्चल छुटत मुनि जन ध्यान ओ ।।
हरखनाथ भन मन दय हरि परसन भय रे ।
करथु नृपति लक्ष्मीस्वर धन जन उपचय रे ।।
हरखनाथ सनाथ करि जदुनाथ त्रिभुवन धाम ओ ।
पुरथु मिथिला नगर नायक सफल अभिमत काम ओ ।।[१]

(२)

तड़ित-विनिन्द सुन्दर बेस । गज गामिनि परबेश ।।
अलक-कलित आनन अभिराम । जनि घन-वलित विमल हिम-धाम ।।
अधर ललित नासा अति सोभ । कीर बइसल जनि विम्बक लोभ ।।
निरखि जुगल कुच पंकज-काँति । चलति रोमावलि मधुकर पाँति ।।

१. 'Journal of the Asiatic Society of Bengal' (vol 53, Part I, Special No. 1884), P. 92-93.

अबिकल नूपुर किंकिणि राव। मदन-विजय जनि सामग गाव ॥
हर्षनाथ कवि मन दय गाब। नृप लक्ष्मीश्वर सिंह बुझ भाव ॥[१]

(३)

समय बसन्त पिआ परदेस। असह सहब कत बिरह कलेस।
सुमरि-सुमरि पहु न रहय धीर। मदन-दहन तहँ दगध सरीर ॥
मधुर गुंजित कुसुमित कुंज। लाग नयन जनि पाबक पुंज ॥
शीतल पंकज चम्पक-माल। हृदय दहय जनि विषधर-जाल ॥
श्रबन-दहन कोकिल कल गान। चान-किरन तन अनल समान ॥
हर्षनाथ कबि मन दय गाब। नृप लक्ष्मीश्वर सिंह बुझ भाव ॥[२]

(४)

सखि सखि ! ललित समय लखु भोर।
नागर नागरि रइनि रङ्ग कए शयन करए पिअ कोर।
धीवर-अङ्क मित्रङ्क-तरनि चढ़ि शशिकर-जाल पसार।
उडुगण-मीन बझाय चलल जनि गगन-पयोनिधि पार ॥
रविकर-कलित तिमिर-पट-मोचन प्रकट अरुण तनुभास।
लाजें पुरुब दिस मुनल कुमुदहश लखि कमलिनि करु हास ॥
मलय-पवन-कम्पित तनु कमलिनि कोप-अरुण कय अङ्ग।
उपगत मधुप करय निरादर कुमुदिनि सङ्ग पिशङ्ग ॥[३]
पति-वञ्चित रति युवति विकल-मति करति सौति अभिशाप।
पति-गञ्जन सहि विविध वचन्न कहि करय दोष-अपलाप ॥
गुञ्जय मधुप विहङ्गम कूजय शयन कुशल जनि भाख।
'हर्षनाथ' कवि बचन-सुधारस विरल रसिक जन चाख ॥[४]

*

१. 'An Introduction to Maithili Language of North Bihar containing Grammar, Chrestomathy and Vocabulary (G. A. Grierson, Extra Number of J.A.S.B., of 1882, Part II), P. 116.

२. वही।

३. इसी भाव से मिलता-जुलता 'भट्टिकाव्य' का यह प्रसिद्ध श्लोक है—

प्रभातवाताहतिकम्पिताकृतिकुमुद्वतीरेणुपिशङ्गविग्रहम्।
निरास भृङ्गं कुपितेव पद्मिनी न माननी संसहतेऽन्यसङ्गमम् ॥

—देखिए 'भट्टिकाव्यम्' (शेषराजशर्मा, प्रथम भाग, प्रथम सं, सं० १९९८ वि०, पृ० ३४।

४. 'मैथिली-गीत-रत्नावली' (वही), पद-सं० ९३, पृ० ५३-५४।

संसारनाथ पाठक[1]

आप 'बाबा रामायणदास' के नाम से प्रसिद्ध थे।

आपका जन्म सं० १६०७ वि० (सन् १८५० ई०) के अगहन मास के शुक्लपक्ष में हुआ था।[2] आप शाहाबाद जिले के 'बड़का-डुमरा' नामक ग्राम-निवासी भारद्वाज-गोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण थे।[3] आपके पिता का नाम पं० काशीनाथ पाठक[4] और पितामह का पं० देवराज पाठक था।[5] आप सात भाई थे, जिनमे आप सबसे छोटे थे।

आप जब कुल दो वर्षों के थे, तभी आपके पिता का देहान्त हो गया। अतः, आपके पालन-पोषण का भार आपकी माता पर आ पड़ा। आपकी माता ने कुल सात पैसे मे आपके लिए 'खालिकबारी' नामक एक फारसी की पुस्तक खरीद दी, जिसके सहारे आपने शीघ्र ही फारसी पढ़ना-लिखना सीख लिया। कुछ ही दिनो मे उर्दू के सिवा संस्कृत और हिन्दी मे भी आपने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। वास्तव में आप बहुत ही तीक्ष्ण बुद्धि के व्यक्ति थे। आपकी स्मरण-शक्ति भी बहुत तीव्र थी।

आरम्भिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् आपने एक नौकरी पकड़ ली। किन्तु, उसे शीघ्र ही छोड़कर आप चारों धाम की यात्रा करने निकल पड़े। तीर्थयात्रा से लौटने पर लगभग पच्चीस वर्ष की अवस्था में, अर्थात् सं० १६३२ वि० (सन् १८७५ ई०) मे, आप पुनः एक सरकारी नौकरी पर चले आये। इस नौकरी के सिलसिले मे, सं० १६३४ वि० (सन् १८७७ ई०) से सं० १६५४ वि० (सन् १८६७ ई०) तक, आपने बिहार के कई महत्त्वपूर्ण स्थानो का भ्रमण किया। इस समय तक आपका विवाह हो चुका था। जब आप आरा में थे, तब एक दिन अपने भतीजे की पत्नी की एक छोटी-सी बात पर[6] आपको अपने घर से विरक्ति हो गई। अतः, निश्चित समय के पूर्व ही, अर्थात् सं० १६५५ वि०

---

१. आपका प्रस्तुत परिचय हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्य-सेवी स्व० श्रीदामोदर सहाय सिंह 'कविकिंकर' (शीतलपुर-बरेजा, सारन) द्वारा लिखित आपकी जीवनी के आधार पर तैयार किया गया है।—देखिए, 'सुधा' (मासिक, वर्ष २, खण्ड २, संख्या ६, जुलाई, सन् १६२६ ई०), पृ० ५८७-६१।

२. वही, पृ० ५८७। आरा-निवासी श्रीशम्भुशरणजी आपका जन्म सं० १६०५ वि० (सन् १८४६ ई०) के अगहन मास के शुक्लपक्ष में हुआ बतलाते हैं।—'परिषद्' में उनके द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर।

३ आपके पूर्व-पुरुष पहले बलिया-जिले के 'मुरारपट्टी' नामक ग्राम में वास करते थे। लगभग दस-बारह पुश्त पहले वे वहाँ से 'बड़का-डुमरा' चले आये।—देखिए, 'सुधा' (वही), पृ० ५८७ तथा 'भोजपुरी के कवि और काव्य' (वही), पृ० ११५।

४. ये बड़े ही धार्मिक पुरुष थे और आरा की फौजदारी कचहरी में नाजिर थे।

५. ये भी एक बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। जिस समय रेल का नाम न था, उस समय इन्होंने पैदल ही भारत के सारे तीर्थ-स्थानों के दर्शन किये थे।

६. —देखिए, 'सुधा' (वही), पृ० ५८८।

(सन् १८९८ ई०) में अपनी नौकरी से त्यागपत्र[१] देकर आप घर से निकल पड़े। कहते हैं, जब आप जगन्नाथपुरी जा रहे थे, तब बालेश्वर में बहुत बीमार हो गये; किन्तु श्रीहनुमान्‌जी की कृपा से शीघ्र ही स्वस्थ हो गये।

आप बड़े सरलहृदय, निःस्वार्थ, परोपकारी और धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। भक्ति के क्षेत्र में आपको अविरल सिद्धि प्राप्त थी; क्योंकि श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला' और श्रीरामाजी जैसे चोटी के संतभक्त[२] भी आपका चरणस्पर्श किया करते थे। संसार से तो आपको इतनी विरक्ति हो गई थी कि जब आपके एकमात्र पुत्र के मृत हो जाने पर परिवार के लोग फूट-फूटकर रो रहे थे, तब आप खँजरी बजाकर भजन गा रहे थे। यों थे तो आप वैष्णव, किन्तु आपका विश्वास था कि अपने धर्म के अनुकूल कार्य करनेवाला चाहे किसी भी मत या सम्प्रदाय का क्यों न हो, सर्वमान्य है। आप हिन्दू और मुसलमान दोनों को अपने-अपने धर्म के अनुकूल आचरण करने का उपदेश देते थे। इसी कारण, आपका मत कुछ-कुछ कबीर से मिलता-जुलता है।[३]

आपने हिन्दी में साहित्यिक रचनाएँ भी की थीं। साहित्य में निश्चय ही आपकी अच्छी पैठ थी; क्योंकि शीतलपुर-बरेजा (सारन) के लब्धकीर्त्ति साहित्यसेवी श्रीदामोदरसहाय सिंह 'कविकिंकर' आपको ही अपना साहित्यिक गुरु मानते थे। आपकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) महामारी-निवारण-स्तोत्र,[४] (२) अलिफनामा,[५] (३) दोहावली, (४) कविता-कुंज, (५) भजनावली, (६) ज्ञानगीतावली, (७) शत-शिक्षा-

---

१. नौकरी से त्यागपत्र देते हुए आपने निम्नांकित पंक्तियाँ कही थीं—

> "अस जिय जानि छोड़ल कचहरिया।
> 'क' से काम 'च' से तन चिंता 'ह' से हरि नहिं आवै नजरिया;
> 'री' से रिस बिन कारन देखल यहि लगि मैं भाँग्यों भगरिया।
> जिमि सफरी सफारिन कर घातक दाव परे जस जल के झँझरिया;
> दास रमायन इमि गति तेरी अब अवलोकहु राम सहरिया।"

—'सुधा' (वही), पृ० ५८६।

२. इन दोनों संत भक्तों में से प्रथम का परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र देखिए। द्वितीय का परिचय अगले उत्तरार्द्ध-खण्ड में रहेगा। —सं०

३. आज भी सैदपुर (बड़का-डुमरा, शाहाबाद) में, आपकी स्मृति में निर्मित एक पाठशाला और एक औषधालय वर्त्तमान है। वहाँ एक रामायण-विद्या-मंदिर भी है, जो 'संमारबाबा की मठिया' के नाम से प्रसिद्ध है। —सं०

४. इसका प्रकाशन सन् १९०३ ई० में छपरा से हुआ था।

५. इसका प्रकाशन भी सन् १९०४ ई० में दो बार छपरा से ही हुआ था।

विचार,[1] (८) आत्माराम की नालिश,[2] (९) भक्ति-विनोद, (१०) संकीर्तन-माहात्म्य, (११) तिलक-माला-महिमा[3] तथा (१२) विचार-पत्रिका।[4]

आपका निधन सं० १९९८ वि० (सन् १९४२ ई०) मे, फाल्गुन-शुक्ल षष्ठी, शनिवार (२१ फरवरी) को, संध्या-समय, ९३ वर्ष की आयु मे हुआ था।

उदाहरण

(१)

हरि-हीरा हरदम हिय धारो।
सोवत-जागत चलत-फिरत निसि-बासर हरि-नाम उचारो।
हरि-हीरा श्रुति नारद-सारद सेस-महेस गनेस पुकारो।
मारुत-पूत दूत श्रीहरि के जलधि नाँघि गढ़ लंकहि जारो।
जन प्रह्लाद स्वादि हरि-हीरा अचल धाम अजहूँ बैठारो।
वारन-कारन देर न लायो मन-रथ चढि हरि तुरत उबारो।
लक्षा-गृह रक्षा करि लीन्हीं तनिक ताप नहि लागु बयारो।
द्रुपदसुता-हित बसन-वेष धरि सकल सभा मुख डारो छारो।
कौन कहे हरि-नाम-महातम नेति-नेति कहि बेदन हारो।
सतयुग-त्रेता-द्वापर-कलियुग उभय लोक जन-सोक निबारो।
और युगन कछु और भरोसो कलि केवल हरि-नाम सँभारो।
दास रमायन नाम-सुधा तजि भटकि मरत कत खोजत हारो॥[5]

(२)

मैं हरि पापिन कर सरदार।
सुरपुर नरपुर नाग तिहूँपुर छापि गई अखबार।
आवत छींक नीक बातनि सुनि अवगुन केर अगार।
छापा तिलक माल गर डार्‌यो विषय-विहंगम जार।

---

१. यह एक गद्य-रचना है।

२. यह एक गीति-नाट्य है।

३. संख्या ३ से ११ तक की पुस्तकें सन् १९३९ ई० में 'रामायण-ग्रंथावली' में प्रकाशित हुई थीं, पर वे उपलब्ध न हो सकीं।

४. श्रीदामोदर सहाय सिंह 'कविकिंकर' जी (वही)ने इसे आपका 'अमूल्य ग्रंथ' बतलाया है, जो अभी तक अप्रकाशित ही है।

५ 'सुधा' (वही), पृ० ५८९-९० ।

सुन्यो अजामिल ब्राह्मन पापी सो सूई कहँ फार।
नर्क निगोड़ मोड़ि मुख भागे सुनतहिँ नाम हमार।
हमसे तुमसे दाँव पड़ी है को जीतो को हार।
दास रमायन को जीतहुगे तौ जानौं खेलवार ॥[१]

(३)

साग औ सत्तू मिले लतरी तनि सिंधु के लौन परे रगरी।
भोजन-पात्र को हो पथरी अरु ओढ़न को कमरी-कथरी।
डासन को कुस को सथरी अरु बासन चहौं सरजू-कगरी।
दास रमायन माँगत है तुलसी कर माल हिय में हरी ॥[२]

(४)

टेक विवेक विभूति को, जानत चातक हंस।
कै जानै कोइ संतजन, अरु सब व्यर्थ प्रशंस ॥
रुपया कबहुँ न लीजिए, रुपया रूप बिगार।
चाह बढ़ावत जगत में, मान बिडारनहार ॥
कनक कामिनी को तजै, संत जानिए सोय।
दास रमायन पीजिए, तेहि चरनन को धोय ॥
धन के भागी चारि जन, धरम अगिन नृप चोर।
प्रथम भाग नहीं देहुगे, तब तीनों लइ छोर ॥[३]

(५)

दुनिया लाबूद सराय में कर्मचन्द बढ़ई ने अष्टधातु का पचरंगा मकान कायागढ़ नामी बनाया है जिसकी दीवारें

---

१. 'सुधा' (वही), पृ० ५६० ।
२. वही ।
३. वही, पृ० ५६०-६१ ।

तीनकोन है। इस चौदह मंजिला इमारत में महाराजा आत्माराम उर्फ जीवलालसिंह बागी सरकार रहते हैं जिनकी रानियाँ महरानी सुमति वो कुमति कुअरी वो दीवान लाला मनुलाल साहब मैनेजर है। बाबू हरषू सिंह और विषादू सिंह दरबान पहरेदार है महारानी लोगो की कनीजक (लौंड़ी) सुबुधिया और कुबुधिया हमेशा वास्ते फ़रमा-बरदारी के हाजिर रहती है। चुनाञ्चे महाराज साहब के दिल बहलाने को छः शख़स बवहृदे समाजी, जो दर परदे नामोगिरामी डकैत है। अपनी-अपनी नटिनी साथ लिये नाच वो तान में मशगूल है। वो महाराज मौसूफ़ के आगे शुभ अशुभ नामी दो बोतलें धरी है जो आठ किस्म की जड़ियो के अर्क़ से चुलाये गये शर्बत से भरी है। इससे कुछ नशादार हो गये है। वो गान तान नाच साथ नशेबाजी ऐश अशरत के जारी हैं। इधर से उनके पीछे भेष बदलकर बाबू कालू सिंह कोतवाल बमूजिब एजाजत जनाब यमराज साहब बहादुर अफसर कलांनी हाकिम मजाज अपने दोनों हाथों मे स्याह वो सफेद रंग के मुरछल लिये हुए हयात रूपी सफेद मच्छड़ को उडा रहे हैं जो इन मच्छडो से हजार गुना छोटा बारीक है और जो इस मकान की चौदहवी छत पर बैठा है। जरा नामी बाघिन सामने चिकार कर रही है। वो रोग नामी गोला हर तरफ घहरा रहा है। तो भी हजरत अपनी ऐशबाजी से बेदार नही होते। उम्मीद है कि यह दरबार महाराजा बागी साहब का तभी तक है जब तक कि एक झटका इन मुरछलों का उस मच्छड को नहीं लगता। मसल मशहूर है कि बन का गीदड़ जायगा किधर।[1]

※

---

१. यह गद्यांश 'लक्ष्मी' के सम्पादक को श्रीदामोदरसहाय सिंह 'कविकिंकर' (वही) से प्राप्त हुआ था। सम्पादक महोदय ने इसे 'विचार-रूपक' शीर्षक से पाठकों के मनोरंजनार्थ 'लक्ष्मी' में प्रकाशित भी किया था।—देखिए, 'लक्ष्मी' (मासिक, भाग १४, दर्शन १, जुलाई, सन् १९१९ ई०), पृ० २७।

यज्ञदत्त त्रिपाठी

आपका उपनाम 'यज्ञ' था। आपकी रचनाओं में कहीं-कहीं 'जगमोहन' नाम भी मिलता है।

आप सारन-जिले के 'बलुआ' नामक ग्राम के निवासी एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। आपका जन्म सं० १९०७ वि० (सन् १८५० ई०) में हुआ था।[१]

आप देखने में बड़े ही सुन्दर थे। आपके शरीर की गठन निराली थी। मृदुभाषी भी आप एक ही थे। गुणज्ञ होने के अतिरिक्त आप सभा-चतुर भी थे। संगीत से आपका विशेष प्रेम था। सितार बजाने में ऐसे प्रवीण थे कि अच्छे-अच्छे सितारियों को परास्त कर डालते थे। मझौली-नरेश राजा खड्गबहादुरमल्ल[२] (लाल कवि) तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी से आपकी हार्दिक मित्रता थी।

हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत एवं फारसी में भी आपकी अच्छी योग्यता थी। आप शिव के बड़े भक्त थे। वे ही आपके इष्टदेव थे और उन्हीं की भक्ति में रचित आपकी अधिकांश रचनाएँ हैं। पुस्तकाकार आपकी एक ही रचना 'यज्ञलहरी'[३] मिली है। आप सन् १९१४ ई० के आसपास परलोक सिधारे।

उदाहरण

(१)

एकटक हेरत न फेरत अनत नैन
मुदित चकोर जिमि चन्द्र छवि ध्याये ते।
नटत मयुर जैसे मन में आनन्द भर्‌यो
देखि-देखि गगन सघन घन छाये ते।
जैसे गजराज सुख-सिन्धु में मगन होत
भावत न आने रेनु रेवा तन लाये ते।
वैसे 'यज्ञ' जन-मन-मधुप प्रमोद भर्‌यो
सम्भु-पद-पदुम-पराग-पुंज पाये ते॥[४]

---

१. पं० बालमुकुन्द पाण्डेय 'कुन्द'-लिखित परिचय के आधार पर।—देखिए, 'कवि' (मासिक, वर्ष ४, संख्या ४, वैशाख, सं० १८८३ वि०), पृ० १४-१५।

२. बाबू रामदीन सिंह ने इन्हीं के नाम पर खड्गविलास प्रेस खोला था। पहले-पहल इनसे बाबू साहब की भेंट बक्सर (शाहाबाद) में हुई थी, जब ये अपने मामा महाराज राधाप्रसाद सिंह (डुमराँव-नरेश) से मिलकर काशी जा रहे थे। ये ब्रजभाषा के अच्छे कवि और हिन्दी के नाटककार थे। रतिकुसुमायुध, महारास नाटक, भारत-ललना, डायरी आदि इनकी सत्रह-अठारह पुस्तकें खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुई थीं। बाबू साहब से इनकी प्रगाढ़ मित्रता थी। खड्गविलास प्रेस से आजीवन इनका अविच्छिन्न सम्बन्ध बना रहा।—देखिए, 'हरिऔध-अभिनन्दन-ग्रन्थ' (वही), पृ० ५११।

३. इसमें शिव की स्तुति, घनाक्षरी और सवैया छन्दों में, की गई है।

४. 'कवि' (वही), पृ० १४-१५।

(२)

अमल अकास त्यों प्रकास चाँदनी की नीकी
जहाँ-तहाँ देखो दल वादल विलायगो
त्योंही रेनु-रहित अपङ्क अवनी पैं कोऊ
कासन को कुसुम विकासन बतायगो।
सिथिल सिखण्डिनि की मंडली गही है मौन
मंजुल मरालगन जोई गीत गायगो।
दसहूँ दिसा में अरु बासर-निसा में
'जगमोहन' हमारे जान सरद समायगो ॥[1]

(३)

चंपक चमेलिन पैं चाँदनी पैं चन्दन पैं
चूतन पैं चारु चञ्चरीक चरचंत है।
छायक छपाकर पैं छैल छोनि छारन पैं
छाजित छतानन पैं छबि छलकन्त है।
'यज्ञ' जलपात पैं जहाँ पैं जगमग जोति
जुत्थ-जोखितानन पैं जोबन जगंत है।
लाँवी-लाँवी लट पैं लुगाइन पैं लालन पैं
ललित लता पैं लेत लहर बसंत है ॥[2]

(४)

कढ़ैं प्रेम भरे अरवरा मुख ते श्रुति
प्रेम ही की धुनि धारते है।
दृग ते लखैं प्रेम ही की दुति को
पग प्रेम ही के मग डारते है।
कवि 'यज्ञ' जू प्रेमी मिलैं जितही
तित प्रेम की पूँजी पसारते है।
धनि वैं प्रिय प्रेम-भरे हिय सों
नित प्रेम ही प्रेम पुकारते है ॥[3]

---

१. 'कवि' (वही), पृ० १८-१५।
२-३. वही।

(५)

एरे मन मेरो मैं तोसों कहौ ढेरो होय
शंकर को चेरो मानि काटत भव-फन्दै रे।
मग है अँधेरो यहाँ कोई नाहि तेरो
चोर बिषै आनि घेरो सब छाड़ छल छन्दै रे।
कहै जन 'यज्ञ' यहाँ सुख को बसेरो नाहिं
हेरि जनि भूलै नेक गिरदा मख रंदै रे।
एरे मतिमन्दै होय भव ते निरद्वन्दै एक
आनँद के कन्दै भालचन्दै क्यों न बन्दै रे ॥[१]

※

१. 'कवि' (वही), पृ० १४-१५।

द्वितीय अध्याय

[वे साहित्यकार, जिनका जन्म-काल अनुमित है।]

अजितदास

आप बारा (शाहाबाद) निवासी कविवर वृन्दावनजी 'जैन'[1] के पुत्र थे।[2] आरा-निवासी मुन्नीलालजी की सुपुत्री से विवाह होने पर आप अपने जन्म-ग्राम से आकर ससुराल (आरा) में ही बस गये। विशेषतः आपको ही पढ़ाने के लिए आपके पिता ने 'छन्दशतक'[3] नामक ग्रन्थ रचा था।[4] आपके पिता 'श्रीरामचरितमानस' की शैली में एक जैन-रामायण भी लिखना चाहते थे, पर लिख न सके। उनके मरने के बाद उनकी आज्ञा से आपने ही उसे ७१ सर्गों तक लिखा। पर असमय काल-कवलित हो जाने के कारण आप भी उसे पूरा न कर सके।[5] इसके अतिरिक्त आपकी अन्य रचनाएँ नहीं मिलतीं। आपकी रचनाओं के उदाहरण भी हमें नहीं मिले।

※

कमलाधर मिश्र

आप रत्नमाला (बगहा, चम्पारन) के निवासी थे।[6] आपके पिता का नाम पं० लक्ष्मीधर मिश्र[7] था। प्रसिद्ध विद्वान, वैद्यराज और साहित्यसेवी पं० चन्द्रशेखरधर

---

१. इनके परिचय के लिए 'हिन्दी-साहित्य और बिहार', (प्रथम खण्ड, पृ० १६४-६५) द्रष्टव्य। इनका मृत्यु-काल सन् १८५८ ई० (सं० १९१५ वि०) के लगभग है। इसी आधार पर यह अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८१०-१५ ई० (सं० १८६७-७२ वि०) के आसपास हुआ होगा।—सं०

२. साप्ताहिक 'शाहाबाद' (आरा, 'अमर-शाहाबादी-१३'), पृ० १०। मिश्रबन्धुओं ने आपका निवास-स्थान 'जौनपुर' बतलाया है, जो ठीक नहीं ज्ञात होता।—देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय-भाग), पृ० १०७५।

३. मिश्रबन्धुओं के मतानुसार "छन्दशतक में १०० उत्तम छन्द छाँट कर कवि ने कहे हैं और प्रत्येक छन्द का नाम उसी छन्द में कह दिया है। यह ग्रन्थ बहुत विलक्षण है।"—'मिश्रबन्धु-विनोद' (मिश्रबन्धु, द्वितीय सं०, सं० १९८४ वि०, द्वितीय भाग), पृ० ८७२।

४. "अजितदास निज सुवन के पढ़न हेत अभिनन्द।
श्रीजिनन्द सुछन्द को रच्यों छन्द यह वृन्द॥" —'छन्दशतक' की प्रशस्ति।

५. आपके कनिष्ठ पुत्र हरिदासजी ने भी इसे पूर्ण करने का प्रयास किया। किन्तु, दुर्भाग्यवश वे भी वैसा न कर सके। इसकी भी पाण्डुलिपि आरा में हरिदासजी के घर में थी। हरिदासजी के अतिरिक्त आपके दो पुत्रों के नाम थे—सुन्दरदास और पुरुषोत्तमदास। —सं०

६. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ५७-५८।

७ ये भी एक उद्भट विद्वान हुए। दक्षिण हैदराबाद तथा मध्यप्रदेश तक ये शास्त्रार्थ के लिए ससम्मान आमंत्रित होते थे। युद्ध-कला में भी ये पूर्ण दक्ष थे। रामनगर-राज्य (चम्पारन) की ओर से पटना के नवाब मीरगर्दाहिया के साथ और नेपाल पर चढ़ाई किए हुए अँगरेजी सेना के साथ बड़ी बहादुरी से लड़े थे।
—श्रीगणेश पाठक 'विशारद', (पटखौली, मलकौली, चम्पारन) से प्राप्त दिनांक १५ अगस्त, सन् १९५६ ई० की सूचना के आधार पर।

मिश्र[१] आपके ही पुत्र थे। आप साहित्य, संगीत एवं पाणिनीय व्याकरण के प्रकांड, पण्डित थे। हिन्दी में आपकी कुछ स्फुट काव्य-रचनाएँ मिलती हैं। आपकी मृत्यु सं० १६५१ वि० (सन् १८६४ ई०) में हुई थी।[२]

उदाहरण

जहाँ एक ओर चंडी बाहु बिक्रम उदंडी।
अरू एक ओर दल दानवान उमड़ान।
तहाँ मची घमसान प्रलय भान के समान।
जब चंडी भौंह तान झूम झारी कीरपान।[३]

❋

करनश्याम

आप मिथिला-निवासी और महाराज छत्रसिंह (सन् १८०८-३६ ई०) के समकालीन थे।[४] कहते हैं, आप पद-रचना भी उन्हीं के लिए करते थे। आपने अनेक महेशवाणियों की रचना की थी, जिसमें हर-गौरी के जीवन का अद्भुत वर्णन है। आपके पदों से मिथिला की संस्कृति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आपके रचे अनेक सोहर और रास-पद भी लोकप्रचलित हैं।

उदाहरण

पसुपति परम बेआकुल, सजनी गे, नन्दी बदन निहारि।
हाँसू तेज लेल कर, सजनी गे, घास लए चलल पुर भारि ॥
हर गिरिजा सँग लागल, सजनी गे, घेरि सुमुखि भेल ठाढ़ि ॥
जेहेन उगल नव जलधर, सजनी गे, तुरति याम गेलि बाढ़ि ॥
राजकुमारि महुकि सिर झूकल, सजनी गे, महकि देल महि डारि ॥
शिव मन बाढ़ल क्रोध अति, सजनी गे, मारल चाह सुतारि ॥
हरिअर तृन चुनि काटल, सजनी गे, बाढ़ल दुहु दिस भार ॥
रूसलि गौरि हर बौसल, सजनी गे, कौतुक कयल बिचार ॥[५]

❋

१. इनका परिचय अगले खण्ड में द्रष्टव्य।
२. इसी आधार पर आपका जन्म-काल सन् १८२०-४० ई० तक अनुमान होता है —सं०
३. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ५८।
४. 'मैथिली-साहित्यक इतिहास' (वही), पृ० २४४। महाराज छत्रसिंह के दरबार में रहते समय आपकी उम्र अनुमानतः ४०-५० वर्षों से कम न रही होगी। इसी आधार पर यह अनुमान है कि आपका जन्म-काल सन् १८०१-५ ई० के आसपास होगा। —सं०
५. 'मैथिली-साहित्यक इतिहास' (वही), पृ० २४४।

कान्हजी सहाय

आपका उपनाम 'कन्हैया' था। कुछ लोग आपको 'कान्हजी' भी कहा करते थे।

आप शाहाबाद-जिले के 'धमार' नामक ग्राम[1] के निवासी थे।[2] बहुत दिनों तक आप सरकारी अफीम-विभाग के एक उच्च-पदाधिकारी थे।[3] संगीत-कला के आप एक अच्छे ज्ञाता थे। आपकी प्रसिद्धि एक कृष्ण-भक्त कवि के रूप में भी थी। श्रावणी झूलन और श्रीकृष्णजन्माष्टमी के उत्सव आप खूब धूमधाम से मनाते थे। आपके द्वारा रचित एक पुस्तक 'कन्हाईजी की बधाई' का पता चला है।[4] आपने कुछ स्फुट भजन भी बनाये थे।

उदाहरण

(१)

अति अलबेली नारि सलोनी, सुन्दरी ऐसी भई न होनी।
मुख पर लटकि रही सिर चोटी, चन्द पर रही नागिनी लोटी।
रहे नासा लखि कीर लजाई, चन्दकर मन्द करै मुसुकाई।
खीच देइ मदन-धनुष-सी भौहैं, बान तिरछी चितवन अलसौहैं।
भुजन पर करिकर डारिए वारि, कुचन पर कर श्रीफल बलिहारि।
दुरै मृगनायक कटि सों बन मे, हरै मदमत्त गयन्द गवन में।[5]

(२)

झूले सँवलिया लाल लली सँग झूले हो।
निरखि कोटि रति मार जुगल छबि भूले हो॥
प्रफुलित विपिन-प्रमोद सरयु-जल उमड़े हो।
झीनी बूँद परत फुहार घटा घनि घुमड़े हो॥

---

१. यह ग्राम आरा शहर से कोई आठ मील पश्चिम में स्थित है।

२. श्री महदेव दुबे (धनगाईं, शाहाबाद) का कहना है कि आप सूर्यपुरा (शाहाबाद) के राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह की मृत्यु के समय जब सूर्यपुरा आये थे, तब लगभग २० वर्ष के थे। राजासाहब की मृत्यु सन् १९०३ ई० में हुई थी। इसी आधार पर अनुमान किया गया है कि आपका जन्म सन् १८८३ ई० के लगभग हुआ होगा।—महदेव दुबे (वही) का १०-४-५७ का पत्र।

३. पटोरी श्रीवासुदेव नारायणजी (धमार, शाहाबाद), जो आपके गोतिया-दामाद हैं, के मतानुसार आप अफीम-महकमे के गुमाश्ता थे। यह ओहदा उनदिनों डिप्टीगरी के बराबर ऊँचा था। —सं०

४. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रन्थशोध-विभाग में आपकी रचनाओं के हस्तलेख सुरक्षित हैं।

५. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रन्थशोध-विभाग में सुरक्षित हस्तलेख से।

बोलत सुक पिक चातक दादुर मोरे हो।
भौंरन की गुञ्जार सुनत चित चोरे हो॥
कोउ सखि पेंग झुलावति मोद न थोरे हो।
कोउ मिलि गावति गीत सुप्रेम झकोरे हो॥
गावत गुण्डमलार समय रस पागे हो।
नाचत 'कान्ह प्रसाद' उमँगि अनुरागे हो॥[१]

(३)

सोहावनी स्याम रँग की घटा।
कहति परस्पर अवध बधू नई मिलि-मिलि चढ़ि-चढ़ि अटा॥
दमकि-दमकि रहि स्याम घटा महँ चंचल दामिनि पटा।
झूलत पर जनु राम-रंग महँ जानकी छबि की छटा॥
जहँ-तहँ नटनि मयूरन की मृदु चातक पिक की रटा।
मचक पेंग किंकिनि-रव पर जनु लहरत अंचल पटा॥
'कान्ह प्रसाद' अवध बसि फिर का आउब एहि भव भटा।
आजु नयन भरि निरखि लेहु सुख दुर्लभ यह संघटा॥[२]

(४)

झमकि झुलावो रे हिंडोरे, दृग-तारे दोऊ किसोरे।
कैसी घेरि घटा घन आई, झीपे बूँदन की झरि लाई।
पवन झकोर बहे पुरवाई, सरयू लेति हिलोरे॥
बन प्रमोद कुसुमित केहि भाँती, नभ उड़ि लहर लेति बक पाँती।
चंचल-चपला दुरि-दुरि जाती, बोलत दादुर मोरे॥
झिल्लिन की झनकार सोहावन, पिक चातक रव अति मनभावन।
हिय अति देख समाँ भरे सावन, उठत उमंग मरोरे॥
बट तर डारि हिंडोरा नीको, सब अरमान निकारिय जी को।
झूल झुलाइ पिया प्यारी को, जिन है यह चित चोरे॥[३]

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथशोध-विभाग में सुरक्षित हस्तलेख से।
२-३, वही।

(५)

बाजहि बहुबिधि रंग-रंग के बाजने
गावहि कोकिल बैन सुमंगल साजने
साजहि सुमंगल पूर बहुआसिनि सोहिलो मिलि गावही
वहु रतन भूषण बसन कंचन नन्दराय लुटावही
हमहूँ सखि सुधि पाइ लही सुधि और ते
एक कही अस बात आइ नृप पौर तें
नृप पौर तें एक कहेउ जब जुग जाम बीति जामिनी
एक स्यामसुन्दर सुघर सुत जायो महर की भामिनी
जौं सुधि है यह साँच सखी हमहूँ चलें
साजि सोहिलो भेंट महरि सँग जा मिलें
मिलि महरि सों धनि धन्य कहि-कहि सोहिलो मिलि गाइए
पुर नागरिन मिलि गाइ अनँद-बधाव अति सुख पाइए ॥[1]

*

कान्हारामदास

आप मिथिला-निवासी कर्ण कायस्थ थे।[2] आपके पिता का नाम था हलधरदासजी, जो 'सुदामाचरित' के रचयिता हिन्दी-कवि हलधरदास से भिन्न व्यक्ति थे। आपने 'गौरीस्वयंवर' नामक एक नाटक की रचना, मिथिला के कीर्त्तनिया-नाटकों की परम्परा में, स० १८९९ वि० (सन् १८४२ ई०) में, की थी।[3] गौरी-शिव-परिणय पर लिखित इस नाटक की गणना उक्त परम्परा के सुन्दर नाटकों में होती है।

उदाहरण

कहिअ नाथ मुनि बात हमें नहि बूझल।
ई कहि हेमँत-पिआरि पिआ-पद गहल।
घर-वर-कुल-परिवार विमल जौं पाविअ।
गौरि-जोग वर होए विवाह कराविअ॥

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रन्थशोध-विभाग में सुरक्षित हस्तलेख से।
२. 'History of Maithili Literature (J. Mishra, Vol. I, 1949), P. 195.
३. आपका रचना-काल सन् १८४२ ई० है, अतः आपका जन्म सन् १८०१-५ ई० के लगभग हुआ होगा, ऐसा अनुमान है। —सं०

गौरि रहति कुमारि से बरु सहब।
बूढ़ कुभेख भिखारि हमें हमे नहिं करब॥
प्रान-पिआरि दुलारि उमा पहु जानिअ।
तेहन करिअ बर जेहि देखि सुख मानिअ॥
सोच बिसारि पिआरि एम सुमरु मन।
से करि होए कल्यान 'कान्हाराम' भन॥[१]

※

कामदमणि[२]

आपका जन्म गया जिले के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था।[३] आरम्भिक अध्ययन के पश्चात् आपने कुछ समय तक गृहस्थ-जीवन व्यतीत किया, जिससे आपको एक पुत्री हुई। उसके पश्चात् आप सपरिवार अयोध्या चले गये और सख्य भाव का 'सम्बन्ध लेकर' रामसखेजी की तपोभूमि 'नृत्यराघव-कुंज' के समीप रासकुंज में रहने लगे और आजीवन वहीं रहे। वहाँ आपका अधिकांश समय साहित्यानुशीलन और धर्मोपदेश में ही व्यतीत होता था। नर्मसख्य-भाव के भक्त होते हुए भी आपने अन्य भक्ति-रसों का मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया था। हिन्दी के भक्ति-साहित्य में आपकी गहरी पैठ थी।[४]

आप संस्कृत और हिन्दी दोनो में रचनाएँ करते थे। हिन्दी में आपकी दो महत्त्व-पूर्ण रचनाएँ मिलती हैं—(१) 'पंचभक्तिरसों के पद्यपद्ध पत्र' और—(२) 'केशव कहि न जाय का कहिये'।[५] आप सं० १९७५ वि० (सन् १९१८ ई०) में परलोकवासी हुए।[६]

---

१. 'History of Maithili literature' (वही), P. 195.

२. आपका प्रस्तुत परिचय 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' नामक ग्रंथ के आधार पर तैयार किया गया है।
—देखिए, वही, पृ० ५२३।

३. वही।

४. कहते हैं, आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर बघेलखण्ड और बुन्देलखण्ड के कई राजाओं ने आपसे दीक्षा ली थी।

५. इस ग्रंथ में गोस्वामी तुलसीदासजी की 'विनय-पत्रिका' के एक प्रसिद्ध पद की व्याख्या की गई है।

६. सन् १९१८ ई० में आपका शरीरपात कम-से-कम अस्सी वर्ष की आयु में हुआ होगा; क्योंकि संत-महात्मा प्रायः दीर्घायु होकर देह-त्याग करते हैं। इस हिसाब से आपका जन्म अनुमानतः सन् १८३८ ई० में होना चाहिए। —सं०

उदाहरण

(१)

स्वस्ति सखा श्री सहित श्री, जानकी-जीवन पास।
पहुँचै पाती ललित यह, कनक-भवन आवास॥
कामद नर्मसखा लिखित, काया-सहर-निवास।
तन को मन भावत नही, बढत विरह की स्वास॥
गुण गावत आँसू बहत, भयो सिथिल तन बीर।
वन-प्रमोद की सुरति करि, श्री सरयू को नीर॥
मैं चाहों- तुमसो मिल्यो, कोटि कल्प सत जाय।
तुम चाहो छिन में मिलो, दुसह बिपत्ति बिहाय॥[1]

(२)

मदन कदन करि सहर को, लूटि लियौ करि क्रोध।
लोभ विनास्यो ध्यान को, क्रोध बिनास्यो बोध॥
ज्ञान विरागादिक सबै, भागे लै लै प्रान।
नर्मसखा तब जीव यह, कैसे बचै सुजान॥
याते वेगि बुलाय कै, रखिये अपने पास।
नर्मसखा निज जानि कै, दास कीजिए खास॥
विपुल विनोद विहार हित, उपवन सखिन समेत।
समन सपल निरखत कवहुँ, लखिहौ मोद निकेत॥
मधुर वचन पीयूष पिय, सुनिहौ चित्त लगाय।
पढ़ैं सदा दिलदार दिल, हिय ते भिन्न न जाय॥[2]

(३)

हौ दिलदार यार कव पैहौ।
जाके विन छन कल न परतु है ताके विना कैसे जनम गवैंहौ।
अङ्ग-अङ्ग लखि मधुर मनोहर द्वै भुज पकरि अङ्क कव लैहौ।
'कामदमणि' यह सोच रैनि दिन कैसे कै आनन्द माँहि समैहौ॥[3]

---

१. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ५२८।
२-३. वही।

कालिकाप्रसाद

आप सारन-जिले के 'दिमहर' नामक स्थान के निवासी थे।[१]

आपने हिन्दी में 'सिया-स्वयंवर' नामक एक पुस्तक लिखी थी, जिसका लिपि-काल सं० १९५२ वि० (सन् १८९५ ई०) है।[२] आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

❋

कालीचरण

आप भोजपुर (शाहाबाद) के राजकुमार रामेश्वर सिंह के दरबारी कवि थे।[३] आपने उक्त राजकुमार की व्रजयात्रा के विवरण-स्वरूप, सं० १९०२ वि० (सन् १८४५ ई०) में, 'वृन्दावन-प्रकरण' नामक एक ग्रंथ की रचना हिन्दी में की थी।[४] आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❋

कालीचरण दुबे

आप चम्पारन-निवासी[५] और बेतिया के महाराज-बहादुर आनन्द किशोर सिंह (सन् १८१५-३५ ई०) तथा नवलकिशोर सिंह (सन् १८३८-५५ ई०) के दरबारी कवि थे।[६] आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

❋

---

१. 'हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त-विवरण' (श्यामसुन्दरदास, प्रथम सं०, सं० १९८० वि०, परिशिष्ट १), पृ० १।

२. आपकी रचना के लिपि-काल से अनुमान होता है कि आप सन् १८४० ई० के लगभग जन्मे होंगे।—सं०

३. 'हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त-विवरण' (वही), पृ० २३ तथा १९०।

४. इस रचना की जो हस्तलिखित-प्रति मिली है, उसमें उसका लिपि-काल सं० १९०५ वि० लिखा है। यह सं० १९०२ वि० में रची और सं० १९०५ में वि० लिखी गई, तो उस समय (सन् १८४८ ई० में) आप लगभग ३०-४० वर्ष के रहे होंगे। अतः, आपका जन्म-काल सन् १८०८ अथवा १८१८ ई० अनुमित है। —सं०

५. पं० गणेश चौबे (बँगरी, चम्पारन) द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।

६. आपके आश्रयदाता दोनों बेतिया-नरेशों का राज्य-काल अथवा स्थिति-काल सन् १८१६-५५ ई० तक है। इसी अवधि के बीच में आपका स्थिति-काल अनुमित है, और इसी आधार पर अनुमानतः आपका जन्म-काल सन् १८०५-१० ई० के आसपास समझा जा सकता है। —सं०

कचहरी और शाह अर्जानी की दर्गाह है। सन् १७६३ ई० में मीर-कासिम ने २०० अंग्रेजों को यहाँ कतल किया था। गंगा के कनारे दानापुर में फौज की छावनी है। बाढ़ एक क़सबा है यहाँ चमेली का तेल बहुत उमदा बनता है। बिहार से ८ कोस पर राजगिर जरासन्ध की पुरानी राजधानी है वहाँ लौन में बड़ा मेला लगता है।[1]

※

गुरुप्रसाद सिंह[2]

आप गिद्धौर (मुँगेर)-राजवंश के थे[3]। आपकी प्रसिद्धि विशेषतः हिन्दी के लेखक और कवि के रूप में थी। आपने हिन्दी में तीन पुस्तकों की रचना की थी—(१) राजनीति-रत्नमाला, (२) भारत-संगीत और (३) चुटकुला[4]।

---

१. 'भूगोल-वर्णन' (गणपत सिंह, प्रथम सं०, सन् १८८४ ई०, भाग १), पृ० ३०।

२. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग द्वारा प्रकाशित 'प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण' (डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, प्रथम सं०, सन् १९५९ ई०, तीसरा खण्ड, पृ० ञ) में 'गुरुप्रसाद' नाम के एक और साहित्यकार की चर्चा मिलती है, जिन्होंने 'रत्नसागर' नामक ग्रंथ की रचना की थी। उक्त विवरण में उनका स्थिति-काल अनुमानतः सं० १७५५ वि० (सन् १६९८ ई०) बतलाया गया है। 'रत्नसागर' के रचयिता 'गुरुप्रसाद' की और दो रचनाएँ 'कविविनोद' और 'वैद्यकसार' नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी को मिली हैं, जिनका रचना-काल सं० १७४५ वि० (सन् १६८८ ई०) बतलाया गया है, वे कहाँ के निवासी थे, यह कहा नहीं जा सकता। उक्त नाम के एक और भी साहित्यकार हो गये हैं, जिन्होंने 'याज्ञवल्क्य-स्मृति-भाषा' नामक ग्रंथ की रचना की थी। उनका निवास-स्थान भी बतलाना कठिन है। —सं०

३. पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी सन् १९१९ ई० में सोनपुर (सारन) में बिहार-हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन के प्रथमाधिवेशन के सभापति हुए थे। उन्होंने आपको 'वर्त्तमान गिद्धौर-महाराज के पूज्य पितृव्य स्वर्गीय बाबू गुरुप्रसाद सिंह' लिखा था। उस समय महाराज रावणेश्वर सिंहजी गिद्धौर-नरेश थे। अतः, आप उक्त महाराज के ही पितृव्य होंगे। कहा जाता है कि आपका देहान्त सन् १९३२ ई० में पचासी वर्ष की आयु में हुआ था। किन्तु, चतुर्वेदीजी के भाषण में सन् १९१९ ई० में ही आपके नाम के साथ 'स्वर्गीय' शब्द प्रयुक्त हो चुका है, अतः आप उसी समय के आसपास स्वर्गीय हुए होंगे। यदि श्रीचतुर्वेदीजी का उल्लेख प्रामाणिक माना जाय (मानने योग्य है भी, क्योंकि चतुर्वेदीजी गिद्धौर के पास के ही रहनेवाले थे।) और वास्तव में आपकी मृत्यु ८५ वर्ष की आयु में हुई हो, तो आपका जन्म-काल सन् १८३४ ई० के आसपास होना चाहिए। बाबू शिवनन्दन सहाय ने भी सीतामढ़ीवाले अपने भाषण में कहा है—"१८९५-९६ में काशी में कविसमाज और कविमंडल स्थापित हुए। उस समय गिद्धौर से श्रीमन्महराज रावणेश्वरप्रसादसिंहजी म० कु० श्रीगौरीप्रसादसिंहजी तथा म० कु० गुरुप्रसादसिंहजी......समस्याओं की पूर्त्ति किया करते थे।" —सं०

४. यह पुस्तक आपके फुटकर पदों का संग्रह है।

उदाहरण

गंगाजी की विषमता लखि मो मन हरखात।
स्नातक पठवति स्वर्ग को आपु निम्न गति जात॥
आप निम्न गति जाति ताहि गिरिशिखर पठावे।
आप मकर-आरूढ ताहि दै बृषभ चढावे॥
आप सलिल तनु धारि ताहि दै दिव्य जु अंगा।
जगत-ईस करि ताहि सीस चढ़ि बिहरति गंगा॥[1]

※

गुरुबक्स लाल

आप बकसंडा (गया) के निवासी कायस्थ थे।[2] आपके पिता का नाम था सीतारामजी। आपका रचना-काल सं० १९२१ वि० (सन् १८६४ ई०) माना गया है।[3] आपकी हिन्दी-रचना 'कुण्डलिया-रामायण' अधूरी ही रह गई। उदाहरण नहीं मिला।

※

गुलाबचन्द्र लाल

आपका उपनाम 'अंध कवि' था। आप छपरा-निवासी थे। हिन्दी, भोजपुरी और अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि रघुवीर नारायणजी[4] के आप शिक्षक थे। आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले।

※

---

१. पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी (वही) के भाषण से।
२. 'गया के लेखक और कवि' (वही), पृ० ४२-४३।
३. आपके रचना-काल के आधार पर ही आपका अनुमित जन्म-काल सन् १८३०-३५ ई० प्रतीत होता है।—सं०
४. इनका जन्म सन् १८८४ ई० में हुआ था। इनके बालपन में आपने इन्हें पढ़ाया होगा। पढ़ाने समय आपकी अवस्था बीस-तीस के बीच की रही होगी। इससे अनुमान होता है कि आपका जन्म-काल सन् १८५६ ई० के आसपास होगा।—सं०

गोपी महाराज

आप पूर्णिया-जिले के बनैली-नरेश श्रीमान् राजा लीलानन्द सिंह के आश्रित दरबारी कवि थे।[१] अपनी रचना की उत्कृष्टता के कारण आपने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। आपकी काव्य-रचना पर प्रसन्न होकर राजा लीलानन्द सिंह[२] ने आपको दान-स्वरूप एक हाथी दिया था।[३] आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

※

गोपीश्वर सिंह

आपका उपनाम 'गोपीश' था। आपकी रचनाओं में आपका यही नाम मिलता है।

आप दरभंगा के महाराज रुद्रसिंह (सन् १८४२-५० ई०) के कनिष्ठ (चतुर्थ) पुत्र थे।[४] आपके ही सबसे बड़े भाई महाराज महेश्वरसिंह (सन् १८५१-६१ ई०) थे, जिनके दोनों राजकुमार महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह (सन् १८६२-९९ ई०) और महाराज रमेश्वर सिंह (सन् १८९९-१९३० ई०) मिथिला के परम प्रसिद्ध नरेश हुए।[५] आपकी गणना व्रजभाषा तथा मैथिली के प्रतिष्ठित कवियों में होती थी। 'गोपीश्वर-विनोद' के नाम से आपका एक प्रकाशित काव्य-संग्रह हिन्दी में मिला है।

उदाहरण

(१)

झूलत आज श्यामा-श्याम।
देखु वृन्दा-विपिन महँ हीरडोर मुदित ललाम॥
साजि भूषण-बसन झुलवति मन्दगति व्रज-बाम।
राग गुण्डमलार गावति लेति बहु बिध ग्राम॥

---

१. 'भागलपुर-दर्पण' (पं० झारखण्डी झा, प्रथम भाग, प्रथम खण्ड, प्रथम सं०, सन् १९३२ ई०), पृ०१६६।

२. इन्हें सन् १८५३ ई० में 'राजा-बहादुर' की उपाधि मिली थी। सन् १८८३ ई० में ये स्वर्गवासी हुए थे। इसी आधार पर अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८२०-३० ई० के आसपास हुआ होगा '—देखिए, 'गङ्गा' (वही, मार्गशीर्ष, सं०१९८७ वि०, नवम्बर सन् १९३० ई०), पृ० ५१।

३. आपके समकालीन श्यामसुन्दर कवि भी उसी राज-दरबार में थे। जब आपको अपने आश्रयदाता से हाथी मिला, तब इन्होंने ये पंक्तियाँ पढ़ीं—

अहो हंस-अवतंस-मनि यह अचरज मोहि भान।
गोपीं हाथी पै चढ़ैं पैदल सुन्दर श्याम॥

इसपर प्रसन्न होकर राजा-बहादुर ने उन्हें भी हाथी देकर सम्मानित किया। —'भागलपुर-दर्पण' (वही), पृ० १६६।

४. 'मैथिली-गीत-रत्नावली' (वही), पृ० ८६।

५. इसी आधार पर आपका जन्म-काल सन् १८२०-३० ई० के आसपास अनुमित होता है। —सं०

वहत मारुत मन्द शीतल सुरभि लै अभिराम।
जलद-वुन्द रसाल वरसत निरखि उमगत काम ॥
देखन सुभग शोभा अमर तिय आइ तजि निज धाम।
गोपीश चञ्चल नैन लखि छवि लेत नहि विसराम ॥[1]

(२)

रघुवर द्रवत दास पर ऐसे।
वरसि जगत आनन्द बढ़ावत ऋतु पावस घन जैसे।
निज-रिपु-अनुज समाज-राज तजि आयो शरन विचारी।
तिहि रघुनाथ तिलक लङ्का दै कियो वंधु सम चारी ॥
आरत हरि सुग्रीव सभै मन चरन-शरन तकि आयो।
ह्वै निशङ्क रघुवर-प्रताप-वल अचल बिमल सुख पायो ॥
देखु निखाद गिद्ध बाली-सुत गहे जे चरन खरारी।
गोपि-ईश तिहि दियो परम पद अरु निज पद अधिकारी ॥[2]

(३)

विनती सुनहु श्रीरघुराज।
त्यागि अव सव शरन आयउँ गुनि गरीव-निवाज ॥
हौं कुटिल अघ-खानि कुकरम कीन्ह जनमि दराज।
वुड़त यह भवसिंधु मोहि उवारि लीजै आज ॥
पर-वधू पर-द्रोह-रसिकन माँह कीन्ह समाज।
आज लौं लखु नाहि मो सों भयो कछु सत काज ॥
सुमिरि निज विरुदावली अव सकल सुर-सिरताज।
वेगि श्रीगोपीश की प्रभु अवहुँ राखहु लाज ॥[3]

---

१. 'गोपेश्वर-विनोद' (गोपीश्वर सिंह, प्रथम सं०, सन् १८८८ ई०), पृ० ३०।
२. वही, पृ० १३३-१३४।
३. वही, पृ० १३६।

(४)

आजु भेल सखि दिन बर, मण्डप बिच देखि हर बर ॥
हेमँत गौरि कर गहि लेल, शङ्कर पाणि उपर देल ॥
शङ्ख हेम जल फल दए, देल दान परसन भए ॥
तखनुक हर्ष एहन सन, न भेल न होएत कहु खन ॥
गोपि-ईश भन कबिबर, गौरि बिआहल शङ्कर ॥[1]

(५)

आएल हेमँत नगर हर, देखए चललि पुरनारि।
देखि मन सबहुक झुर भेल, मिलि मिलि ऋषि पढ़य गारि॥
प्रथम भूतगन अनुचर, बूढ़ बृषभ असबार।
भूषन नाग बिबिध तन, सिर मन्दाकिनि-धार॥
तीनि नयन लस अद्भुत, रजत-सिखर सम अङ्ग।
भाल बाल ससि राजित, असन आक बिष भङ्ग॥
बिहुँसि-बिहुँसि सभ नागरि, चललि देखि बरिआत।
परिचय पुछए बरक सभ, कतए माय कत तात॥
कहथि मनाइनि सखि सँ, सुनि-सुनि बरक स्वभाव।
कओन एहन बर आनल, अब मोहि किछु नहि भाव॥
गोपि-ईश कह इह बर, त्रिभुवन-पालक जानि।
समुचित मिलल गौरिबर, करु उछाह हिम-रानि॥[2]

※

१. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) से प्राप्त।

२. वही।

गोविन्ददेव

आप मगध के निवासी थे।[१] संस्कृत तथा प्राकृत के आप प्रकाण्ड विद्वान् थे। प्राकृत पर तो आपका असाधारण अधिकार था। डुमराँव के प्रसिद्ध कवि 'विप्रवल्लभ' (राधावल्लभ जोसी)[२] को आपने ही नागराज का 'प्राकृत-पिङ्गल' पढ़ाया था। आपने उन्हे हिन्दी-कविता करने की परिपाटी भी सिखलाई थी। आप स्वयं भी हिन्दी के एक सिद्धहस्त कवि थे। आपकी रचनाओ के उदाहरण नही मिले।

*

चतुर्भुज सहाय

आप सारन-जिले के 'मुहम्मदनगर' नामक ग्राम के निवासी[३] और छतरपुर-राज के दीवान थे। आपकी पुस्तकाकार किसी रचना का उल्लेख नही मिलता। केवल स्फुट रचनाओं के सम्बन्ध में ही सूचना मिलती है। मिश्रबन्धुओ ने आपका रचना-काल सं० १८८८ वि० (सन् १८३१ ई०) बतलाया है।[४] आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले।

*

चन्द्र शर्मा

आप मिथिला-निवासी थे। आपकी लिखी एक पुस्तक (उषाहरण)[५] पूरनचन्द्र घोष के माध्यम से, दरभंगा से प्रकाशित हुई थी। आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

*

---

१. 'देवनागर' (वही, तुला, ५००८ कल्यब्द, वत्सर १, अंक ७, सं० १९६४ वि०), पृ० २६२।

२. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य है। इनका जन्म सन् १८३१ ई० में हुआ था। 'प्राकृतपिङ्गल' पढ़ते समय इनकी अवस्था १५-२० वर्ष की रही होगी। पढ़ाते समय आपकी अवस्था भी चालीस-पचास वर्ष के लगभग होगी। इस तरह अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८०१-१० ई० के बीच हुआ होगा।—सं०

३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, द्वितीय भाग), पृ० ७४७।

४. वही। आपके रचना-काल के आधार पर आपका जन्म सन् १८०५ ई० के आसपास अनुमित होता है।—स०

५. 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ४४०। आपकी यह रचना सन् १८८७ ई० में प्रकाशित हुई थी। अनुमान है कि उस समय आपकी अवस्था कम से कम ३७ वर्ष की रही होगी। इस तरह आपका जन्मकाल सन् १८५० ई० के आसपास माना जा सकता है।—स०

चन्द्रेश्वरी राय

आप सारन-जिले के 'पँचवेनियाँ' नामक ग्राम (डा० दरौली) के निवासी थे।[१] आपके पिता श्रीबालकिसुन राय (श्रीबालकृष्ण राय) कवि तोफाराय[२] के घराने के थे और सारन-जिले के ही 'पतार' नामक ग्राम (परगना आँदर) में रहते थे। वे (आपके पिता) तोफाराय के समय में ही उक्त ग्राम छोड़कर 'पँचवेनियाँ' में जा बसे थे। वे और उनके पूर्वज 'सविता' और 'भवानी' भी काव्य-रचना करते थे। अतः, आपकी काव्य-रचना की प्रतिभा वंश-परम्परागत थी। आपके पुत्र का नाम था महेन्द्र राय और भतीजे का मिट्ठू राय। वे दोनों भी कवि थे। आपके एक शिष्य और साले ताजपुर (फुलवरिया, सारन)-निवासी रामफल राय[३] भी एक कवि हो गये हैं।

सं० १९०२ वि० (सन् १८४५ ई०) तक आपके जीवित रहने का पता चलता है।[४] बाल्यकाल से ही आपमें कविता रचने की प्रतिभा थी। रीतिकालीन काव्यग्रंथों के अध्ययन में आपका विशेष अनुराग था। आप बड़े स्वाभिमानी और स्पष्टवादी कवि थे। आपकी कई रचनाओं में भोजपुरी का पुट भी है। आपकी स्फुट रचनाएँ बहुत-सी हैं। इसके अतिरिक्त आपने 'स्वयंवर' नामक एक काव्य-ग्रंथ भी लिखा था। कुछ सज्जन आपके और भी ग्रंथो का पता बतलाते हैं।[५]

---

१. श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (वही) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

२. इनका परिचय इस पुस्तक के प्रथम खंड में द्रष्टव्य।

३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

४. पँचरुखी (सारन) के गान्धी-स्मारक-विद्यामंदिर के सहकारी प्रधानाध्यापक श्रीशारदानन्द प्रसाद ने १३ अप्रैल, सन् १९५६ ई० के अपने पत्र में लिखा है कि आपके मरे लगभग पचास वर्ष हो गये। इससे अनुमान होता है कि आप सन् १९०५-६ ई० के लगभग मरे होंगे। उपर्युक्त सज्जन के लेखानुसार ही आपकी मृत्यु साठ-पैंसठ वर्ष की आयु में हुई थी। तब आपका जन्म-काल सन् १८४० ई० के लगभग अनुमित होता है। उक्त पत्र से ही पता चलता है कि आपके पुत्र महेन्द्र राय का जन्म सं० १९४६ वि० (सन् १८८९ ई०) में और देहान्त सं० २००७ वि० (सन् १९५० ई०) में हुआ था। आपके भाई बिन्देश्वरी राय के वशजों के अतिरिक्त अब आपका कोई वंशधर नहीं है। —स०

५. आपकी रचनाओं के विषय में पूर्वोक्त पत्र-प्रेषक ने लिखा है कि वसन्तपुर (सारन)-निवासी किसी व्यक्ति ने आपकी रचनाओं में कुछ हेरफेर करके उन्हें अपने नाम से प्रकाशित करा लिया है। ऐसी रचनाओं में 'ब्रह्मरामायण' उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त 'लक्ष्मणशतक' नामक आपके एक काव्य-ग्रंथ का भी पता चला है, पर वह भी अनुपलब्ध है। श्रीपाण्डेय कपिल (वही) के लेखानुसार 'आपकी बहुत-सी रचनाएँ आपके भाई बिन्देश्वरी राय के परिवारवालों के पास पँचवेनियाँ में पड़ी हुई हैं— फटे-चिटे कागजों पर, धूमिल अक्षरों में। वे लोग उन्हें देना नहीं चाहते!'—स०

उदाहरण

(१)

करत न यज्ञ कूप बावली तड़ाग भूप
सन्मुख न होवे द्वार साधु संत ऐला मे।
पंडित प्रबीन जो पुरान ले सुनावे ताहि
देत ना छदाम होत सामिल न खैला में॥
चन्देश्वरी कहै कैयो युक्ति सों रुपैया खैंचि
जोरि-जोरि धरत सन्दूक और थैला में।
गैला पर पाछे पछतात मधुमच्छिका-से
बाजे मन मैला है अनूप धन भैला में॥[1]

(२)

झाँकती झरोखे लागि जानकी अटारी बैठि
सखियाँ सलोनी चारु चन्द सों लगति है।
तामैं उमा इन्दिरा सरस्वती सुरिन्द सूर
प्रमदा सभेष धै प्रमोद में पगति हैं।
चन्देश्वरी कहै ब्याह उत्सव प्रभाव देखि
मंगल सुगाय दै असीस उमगति हैं।
जानत न कोऊ राम जानकी लखन जाने
प्रेम के परिच्छा दै तमासे सों ठगति है।[2]

(३)

बँगला बहार जामें सीसा चित्रकारी लसे
झाडहू फनूस देखि सोभा सोम लहिहै।
चन्दन नेवार अरु बूँदन बछार लागे
खासे खस-खानन में पंखा पवन ढरिहै।

१. श्रीदुर्गाशंकर प्रसाद सिंह (वही) से प्राप्त।
२. वही।

चन्देश्वरी कहैं तामें इतर फुहारन की
सुमन को सज्जा पर सरोज गात लहिहै ॥
होत जो न याम तीन बाहर पलक तौन
क्वार के करेरी घाम राम कैसे सहिहै।[१]

(४)

धुंध करि दादुर दरेरा देत दौर दौर
दर-दर दरारन दबीज दरसै लगै।
पुहुमि पताल पंथ पर्बतनि पौंढि पानी,
सर सरितानि बापी कूप सरसै लगै ॥
चन्देश्वरी चातक पपीहा मोर झिल्लीगन
चहुँ ओर टेरै पौन पुंज परसै लगै।
नींद नहिं आवत गुबिंद पति प्यारे बिनु
बुंद बारि बारिद बुलन्द बरसै लगै ॥[२]

(५)

चरन-सरन जन गहत लहत धन, कहत सकल जग अचल धनद-मद।
असम नयन बर बसन चरम-गज, कर घन सर यह दहन-मदन मद ॥
बसह बरध पर लसत चढ़त तन, सरद रयन कर धवल करन रद।
जहर लहर मह गरक रहत मन, उमगत हर हर कहत अनद नद ॥[३]

*

१. श्रीदुर्गाशंकर प्रसाद सिंह (वही) द्वारा प्रेषित।
२. श्रीपाण्डेय कपिल (वही) द्वारा प्राप्त।
३. वही।

छक्कनलाल

आप गया-निवासी अम्बष्ठ कायस्थ और मिर्जापुर (उत्तर-प्रदेश) के प्रसिद्ध रामायणी श्रीरामगुलाम द्विवेदी के परमप्रिय शिष्य थे।[१] आप बहुत दिनों तक अपने गुरु के साथ मिर्जापुर में रहे भी थे। मिर्जापुर से काशी आने के बाद आपने महाजनो के 'फकरिया' नामक कुल में (जिसमें भक्त-प्रवर बाबू हरिश्चन्द्र जी हुए), नौकरी कर ली।

आपकी स्मरण-शक्ति बड़ी ही तीव्र थी। कहते हैं, जबतक आप कथा में उपस्थित नही होते थे तबतक आपके गुरु श्रीरामगुलाम द्विवेदी कथा का आरम्भ ही नही करते थे। द्विवेदी जी के इस पक्षपात पर अन्य श्रोता कभी-कभी अप्रसन्न भी हो जाया करते थे।[२] वस्तुतः वे आपको ही कथा सुनने का एकमात्र अधिकारी मानते थे; क्योंकि आपकी धारणा-शक्ति अत्यन्त प्रखर थी।

कुछ ही दिनो में आप भी एक बडे नामी रामायणी के रूप में प्रसिद्ध हो गये। मानस-सम्बन्धी आपके पाण्डित्य की प्रसिद्धि थोड़े ही दिनो में चारो ओर फैल गई। उक्त पाण्डित्य के कारण आपका प्रवेश काशी-नरेश के दरबार में भी हो गया। तत्कालीन काशी-नरेश ने आपके पाण्डित्य से प्रभावित होकर आपके लिए वृत्ति बाँध दी थी। अपनी 'मानस'-विषयक विद्वत्ता के कारण आप महाराज श्री बाबा हरिहरप्रसाद जी, काष्ठजिह्वस्वामी, देवतीर्थजी महाराज, श्रीमानसी बंदन पाठक जी आदि के भी कृपापात्र हुए। द्विवेदीजी तो आपको पुत्रवत् मानते थे।[३]

---

१. 'कल्याण' (वही, मानसांक, पृ० ९२४) में महात्मा श्रीअंजनीनन्दनशरण-लिखित 'मानस के प्राचीन टीकाकार' शीर्षक लेख के आधार पर कुछ लोग आपके मिर्जापुर-निवासी होने का अनुमान करते हैं। किन्तु अम्बष्ठ कायस्थ होने के कारण आपका गया-निवासी होना ही ठीक ज्ञात होता है। संभव है, अपने गुरु श्रीरामगुलाम द्विवेदी के भक्ति-सेवावश आपने अपने जीवन के अधिक दिन मिर्जापुर में ही बिताये हों, और इस रूप में गया से आपका सम्बन्ध छूट-सा गया हो। अवधवासी सन्त रामायणी स्नेहलताजी गया-जिले के अम्बष्ठ कायस्थ ही थे और उनका भी यही निश्चित मत था।—सं०

२. कहा जाता है कि श्रोताओं की इस अप्रसन्नता को दूर करने के लिए द्विवेदी जी ने कुछ दिनों तक कथा बन्द कर दी। कुछ दिनों के अन्तर के बाद पुनः प्रारम्भ करने पर उन्होंने उपस्थित श्रोताओं से पूर्वकथा-सूत्र के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये, किन्तु किसी ने सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया। अन्त में जब आप आये तब आपसे भी वे ही प्रश्न पूछे गये। उत्तर में आपने दिन, तिथि, प्रसंग, भावादि सब कुछ ठीक-ठीक बतला दिया। इसी पर द्विवेदीजी ने श्रोताओं के बीच घोषित किया कि आपके समान कथा सुनने का अधिकारी वस्तुतः कोई नहीं है। कहते-हैं, उसी दिन से मानस-विज्ञों में आप परम आदर के पात्र बन गये। —स०

३. पंडित रामगुलाम द्विवेदी का कविता-काल मिश्रबन्धुओं ने सं० १९०१ वि० (सन् १८४४ ई०) माना है। उस समय द्विवेदी जी सम्भवत पचास वर्ष के होंगे। उसी समय के आसपास आप (छक्कनलाल) भी उनके पास रहे होंगे और आपकी अवस्था भी उस समय चालीस वर्ष से कम न होगी। इससे अनुमान होता है कि सन् १८०४-५ ई० के आसपास आपका जन्म हुआ होगा। जिस समय काशी के रामायणी पं० रामकुमारजी आपसे 'रामचरितमानस' पढ़ रहे थे, उस समय आपकी अवस्था ९५ वर्ष की लिखी मिलती है। प० रामकुमारजी ने श्रीरूपकलाजी के अनुरोध से अयोध्या में भी मानस-कथा कही थी। महात्मा रूपकलाजी सन् १८९३ ई० से १९३२ ई० (साकेतवास-काल) तक अवध-धाम में रहे थे और इन्हीं चालीस वर्षों के अन्दर प० रामकुमार जी ने कभी कथा कही होगी; क्योंकि कथा कहने में सिद्ध होने के बाद ही वे सन्त-समाज में गये होंगे। सिद्ध कथावाचक की आयु पचास वर्ष से कम न होगी। यदि 'मानस' के अध्ययन के समय पण्डितजी २५-३० वर्ष के होंगे तो आपका ९५ वर्ष का बुढ़ापा देखते हुए यह अनुमान करना अनुचित नहीं है कि आपका जन्म उन्नीसवीं शती की पहली या अधिक-से-अधिक दूसरी दशाब्दी में हुआ होगा।—सं०

आप हिन्दी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। आपकी विद्वत्ता एवं कुशाग्रबुद्धि का परिचय देते हुए काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय श्रीअयोध्यानाथ जी कहा करते थे कि एक बार एक विद्यार्थी ने आपसे रामायण पढ़नी चाही। जिस समय उस विद्यार्थी ने आपसे अपनी यह इच्छा प्रकट की उस समय वह 'सारस्वत' पढ़कर 'चन्द्रिका' पढ़ रहा था। बस आपने उसे चन्द्रिका ही पढ़ाते हुए उसी में अर्थसहित सारी मानस-रामायण पढ़ा दी।[1]

काशी के प्रसिद्ध रामायणी पं० श्रीरामकुमार जी को आपसे ही भावार्थ-सहित 'मानम' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय आपकी अवस्था ६५ वर्ष की थी। महात्मा श्रीअंजनीनन्दनशरण जी ने लिखा है कि 'पं० रामकुमारजी अपनी कथा में आदर-पूर्वक आपका नाम लिया करते थे और कहा करते थे कि वे (आप) 'मानस' के बड़े अगाध मर्मज्ञ थे—जब-तब यही कहते थे कि अब बुढ़ापे में तुमको क्या पढ़ाऊँ, केवल खजाना दिखाये देता हूँ....... .. ....।'[2]

काशी के विक्टोरिया प्रेस ने आपकी रामचरितमानस की पोथी का एक गुटका छापकर प्रकाशित किया था। आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले।

*

छोटक पाठक

आप चम्पारन-जिले के निवासी और बेतिया (चम्पारन) के महाराज राजेन्द्र किशोर सिंह (सन् १८५५-८३ ई०) के दरबारी कवि थे।[3] आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले।

*

जगदम्बलाल बख्शी

आप इचाक (हजारीबाग)-निवासी अम्बष्ठ कायस्थ थे।[4] आपकी दो काव्य-रचनाएँ मिलती हैं—(१) सर्वरससागर[5] और (२) प्रनव गिलहोत्री[6]। प्रथम में ८६ पद्य हैं और द्वितीय में १११ कवित्त। ग्रन्थ के अन्त में भी ७ स्फुट कवित्त हैं।

---

१. —देखिए, 'कल्याण' (वही), पृ० १२४।
२. वही।
३. बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीयाधिवेशन (बेतिया) के स्वागताध्यक्ष सेठ राधाकृष्ण जी के भाषण से। साथ ही, देखिए—'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० १६। महाराज राजेन्द्रकिशोर काव्य एवं संगीत-कला के बड़े पारखी थे। उनकी प्रसिद्धि उनकी दानशीलता के कारण भी थी। उन्होंने काशीनरेश महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के दरबारी कवि 'सरदार' को दान देकर कई बार सम्मानित किया था। एक बार कविवर पजनेस को भी उनके एक कवित्त पर २० हजार रुपये देकर प्रसन्न किया था। कहते हैं, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के दुर्दिन में भी उन्होंने उनकी (भारतेन्दुजी की) सहायता की थी और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द को भूमिदान दिया था। (वार्षिकी, सन् १९६१-६२ई०, पृ० ४६)। उनका राज्यारोहण-काल सन् १८५५ ई० है। दरबार में रहते समय आपकी अवस्था कम-से-कम चालीस वर्ष की रही होगी। अतः अनुमान है कि आपका जन्म सन् १८१५ ई० के लगभग हुआ होगा।—सं०
४. श्रीसूर्यनारायण भण्डारी द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।
५. इसका प्रकाशन लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस (कल्याण, बम्बई) से हुआ था।
६. इसकी रचना सं० १९४५ वि० (सन् १८८८ ई०) में श्रावणकृष्ण एकादशी, बुधवार को समाप्त हुई थी। इसी आधार पर आपका जन्मकाल सन् १८४० ई० के आसपास अनुमित है।—सं०

उदाहरण

(१)

श्री गनराज कृपा सुख साज गरीब-नेवाज नमो पदकंजा।
दास मनोरथ पूरन तूरन कूरन कोविद कारक पंजा॥
बोधन को धन बाजि गजादिक गो-धन-धान्य सुदायक संजा।
विघ्न बिनासि बिनासु दुखार्तिहि दारिद दूरि परे कुरु भंजा॥[1]

(२)

शंकर कुलारविन्द शोभानन जो करिन्द
बन्दित सुरेन्द्र पद कविन्द गन गावें।
विघ्न हूँ विलाय जात दारिद दुराय जात
कोटि कामदा सुहात सेवक मन भावें॥
कासो गुन पारावार रावरो बखानो जाय
गौरिजू के नन्दन चन्द मौलि छवि छावें।
बोधन उर प्रेम की तरंग बाढ़ि वारि
सेननाथ इष्ट देव जू से विनती गुहरावें॥[2]

(३)

बानी महरानी मति दीजिए सुदानि देवि
विरद की कहानि तोहि बेदहू बखानी है।
विधि की हो तनुजा तूँ प्रभुनारायन जी की
पटरानी राजधानी बैंकुठ बसानी है।
दासता सुबुद्धि मातु हौसला जो होत जात
गावो गुनगाथ जो के मुक्ति की निसानी है।
वासर सिरानी वहु ताते अकुलानी चित
देहु बरदानि मोहि वन्दौ जोरि पानी हैं।[3]

*

---

१. 'सर्वरससागर' का प्रथम सवैया।
२. 'प्रनव गिन्हहोत्री' का प्रथम पद्य—गणेश-वन्दना।
३. उक्त ग्रंथ का ही द्वितीय पद्य—सरस्वती-वन्दना।

जगदेवनारायण सिंह

आप गया-जिले के निवासी थे। आपके आश्रयदाता उसी जिले के टिकारी-नरेश महाराजा रामकृष्ण सिंहजी थे।[१] आपके द्वारा महाराजा के सम्मान में रची कुछ हिन्दी कविताएँ उपलब्ध होती हैं। आपकी प्रसिद्धि एक आशुकवि के रूप में भी थी।[२] आपकी कोई पुस्तकाकार रचना नहीं मिली। केवल स्फुट रचनाओं के कुछ उदाहरण ही प्राप्त हो सके।

उदाहरण

(१)

बैठे कुसासन पै सासन करि इन्द्रिन को
धारे कंजासन नहीं त्रास जमराज को।
धनुबाण चन्द्रिका सुमुद्रिका लिखाय अंग
उर्द्धपुंड्र चन्द्रविन्दु श्री कै सुभ साज को॥
सरयू औ गङ्गा जल पान करि बार-बार
ध्यान करि सीता-राम रास कै समाज को।
ब्रह्म-मण्डली के बीच ब्रह्मबेला पाय गये
ब्रह्म-रंध्र ह्वै कै लोक ब्रह्म-रघुराज को॥[३]

---

१. 'बिहार-दर्पण' (वहीं), पृ० १४०-४१। महाराजा रामकृष्ण सिंह की मृत्यु स० १९३२ वि० (सन् १८७५ ई०) में ५३ वर्ष की आयु में हुई थी। इनकी मृत्यु के समय आप वहाँ उपस्थित थे। राजाश्रित और राज-सम्मानित होने के कारण उस समय आपकी अवस्था कम से कम चालीस वर्ष की रही होगी। अतः आपका जन्म अनुमानतः सन् १८३०-३५ ई० के आसपास हुआ होगा।—सं०

२. वही, पृ० १४१। महाराजा की मृत्यु के तुरत बाद आपने निम्नलिखित कुछ दोहे बनाये, जिनसे आपके आशु-कवि होने का प्रमाण मिलता है—

पञ्च लोक निधि चन्द्रयुत संवत कार्तिक मास।
सोमबार तिथि चार मैं कृष्ण पाख शुभ कास॥
गये लोक साकेत मैं करि सबको आचेत।
पञ्च-रचित को त्याग करि ज्ञान-बिराग समेत॥
महाराज-पदवी सहित रामकृष्ण जिहि नाम।
कलिमल-दल को दलि गये सिया-राम के धाम॥ —वही।

३. वही।

(२)

राज -तीय मुद्रा दिये लच्छन बिचच्छन को
बच्छन समेत गाय कच्छन भराय कै।
भच्छन के हेत दिये अन्नदान दीनन को
खीनन को खेत दिये दछिना मिलाय कै।
हेम-सिंह-आसन पै आसन कराय दिये
शालग्राम दानवाक्य वैदिक बनाय कै।
सीता-राम प्रीत दिये ग्राम द्विज पंडित को
पूजे पदकंज हरिभक्त हिय लाय कै ॥[1]

*

जगन्नाथ तिवारी

आप चम्पारन-जिले के निवासी और बेतिया (चम्पारन) के महाराज राजेन्द्र-किशोर सिंह (सन् १८५५-८३ ई०) के दरबारी कवि थे।[2] आपकी कविताओं के उदाहरण उपलब्ध नहीं हुए।

*

टिम्बल ओझा

आप पटना-जिले के निवासी थे। कोई-कोई आपको गया-जिले का निवासी भी बतलाते हैं। पटना-जिले की प्रसिद्ध नदी 'पुनपुन' की महिमा दरसाते हुए सन् १८८६ ई० में आपने एक छोटी-सी पुस्तक 'पुनपुन-माहात्म्य' लिखी थी।[3]

उदाहरण

(१)

पुनि पुनि करत पवित्र सदाई। पुनपुन नाम कहत श्रुति गाई ॥
जौ पुनपुन के तट पै जाओ। प्रथम तासु रज सीस लगाओ ॥
पुनि जल लै सिर ऊपर राखो। तब जल पैठि राम मुख भाखो ॥
जो वह नियम न पालौ भाई। होइहि कष्ट सुनो चित लाई ॥

---

१. 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० १४२।

२. बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन (बेतिया) के स्वागताध्यक्ष सेठ राधाकृष्ण के भाषण से। महाराज राजेन्द्रकिशोर सिंह का सिंहासनारोहण सन् १८५५ ई० में हुआ था। उनके दरबार में रहते समय आपकी अवस्था कम-से-कम चालीस वर्ष की रही होगी। अतः, आपका जन्म-काल सन् १८१५ ई० के आसपास अनुमित है।—सं०

३. इसके प्रकाशन-काल से अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८४५ ई० के लगभग हुआ होगा।—सं०

प्रथम रोग उत्पति फल लीजै। तेहिते बिबिध भाँति तन छीजै ॥
जौ शरीर में उपजै रोगा। तौनहिं होई सके कोई भोगा ॥
भोग अकारथ जनमहू जाई। ताते नियम पालिये भाई ॥[1]

(२)

कीकट देस पुनीत नदी कहँ जो जन जान हिये महँ धारे।
पितरन आस लगाय हिये महँ कोटिन भाँति असीस उचारे।
देत रहो जल पिण्ड सुपुत्र तू नरकन से कुल केर उबारे।
जाय गया महँ पिण्डहू पारि के साँचहू पुत्र हो नाम तिहारे ॥[2]

*

ठाकुर[3]

आप छपरा-नगर के साहबगंज-मुहल्ले के निवासी भदेसिया (मघेसिया) कान्दू (भड़भूँजा) थे।[4] आपके पिता का नाम गोपीनाथ साह था, जो हलवाई का काम करते थे। आप भी स्वजातीय धन्धे मे बड़े निपुण थे। मिठाइयाँ, मुरब्बे, अचार आदि बढ़िया बनाते थे। बिक्री की वस्तुओं का एक ही दाम कहते और उतना ही लेते थे। आप बड़े परोपकारी और यशस्वी वैद्य भी थे। चिकित्सा निःशुल्क करते थे। औषध बनाने में जो ठीक खर्च होता था, वही रोगी से लेते थे। आप एक अच्छे मसखरे और कुश्ती के शौकीन थे। कुश्ती आपने हनुमान सिंह नामक व्यक्ति से सीखी थी।

आपके पिता ने ही पहले-पहल आपको हिन्दी पढ़ाई। आगे चलकर आपने कुछ संस्कृत भी सीख ली। उन दिनों छपरा के धर्मनाथ-महादेव के मन्दिर में मालवा देश के निवासी श्रीरामचन्द्र नामक एक पण्डित पुराण-कथा कहा करते थे। आपने उनसे भी कुछ शिक्षा प्राप्त की थी। आप बराबर गुणियों, पंडितों और कवियो की संगति में रहा करते थे। प्रसिद्ध हिन्दी कवि 'पजनेस' का भी सत्संग आपको प्राप्त हुआ था। पजनेस का जन्म-काल सं० १८७२ वि० (सन् १८१५ ई०) और कविता-काल सं० १९०० वि० (सन् १८४३ ई०) माना गया है।[5] इसी समय के लगभग आपका भी रचना-काल रहा होगा। कहा जाता है कि पजनेस के छोटे भाई 'भुवनेस' अपने जीवन के अंतिम दिनों में बहुत दिनों तक छपरा-नगर में रहकर वही

---

१. 'पुनपुन-माहात्म्य' (टिम्बल ओझा, प्रथम सं०, सन् १८८६ ई०), पृ० २०।
२. वही।
३. आपका परिचय (स्व०) बाबू शिवनन्दन सहाय द्वारा प्रेषित सूचनाओं के आधार पर तैयार किया गया है।
४. 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० १८१।
५. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० १०३८।

दिवंगत हुए थे। संभव है, इन्ही के संसर्ग से पजनेस के साथ अपका भी सम्पर्क हुआ हो। कवि-समागम के प्रभाव से आपने पिंगल का भी अध्ययन किया। कहते हैं, आपके एक मित्र लाला हरनाथ सहाय[1] ने आपकी सहायता से ही 'काशीखण्ड' नामक एक हिन्दी-पुस्तक की रचना की थी।

सं० १६२६ वि० मे, लगभग ६५ वर्ष की आयु मे भाद्र-शुक्ल ३ को, भीषण ज्वर से, आपका शरीरपात हुआ।[2]

आपके द्वारा रचित किसी भी पुस्तक का पता नही चलता। केवल स्फुट रचनाएँ ही मिलती हैं। बा० रामदीन सिंहजी ने लिखा है कि 'छपरा के इलाके में ऐसा कोई न ठहरेगा, जो ठाकुर कवि की बनाई चीजें (कवित्त, भजन आदि) न जानता हो या इनकी भलाई के कामो से इनकी याद न करता हो।[3]

उदाहरण

(१)

हरि मोहि सेवरी-सेवक कीजै।
पादोदक प्रह्लाद दैत्य को निश्चर नफर करीजै।
गनिका अनुग अजामिल अनुचर गीध गुलाम गनीजै।
दास करो रबिदास कबिर को सुपच-पंगति लीजै।
ठाकुर ठौर ठाढ होइबे को सदन-सदन मोहि दीजै।[4]

(२)

कलि के खल खेलत होरी।
होत प्रात लबनी भरि तारी, घर-घर खरी चुओ री।
पीवत खात ललात परसपर, जूता-लात मचो री।
दया होइ बमन करो री ॥ कलि०
बहुत जतन से अज्या लायो, नभचर प्रान हतो री।
भेड पछारि कै भाग लगावत, जलचर भच्छ करो री।
दया नहि लागै खोरी ॥ कलि०

---

१. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।
२. इसी आधार पर आपका जन्म-काल सं० १८६० वि० (सन् १८०३ ई०) के आसपास अनुमित होता है।—स०
३. 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० १६६।
४. वही, पृ० १६४।

ठौर-ठौर में जमनी नाचत, वा सँग भोग करो री।
बाजी नर-पदत्रान-हार गल, खर पर हरषि चढ़ो री।
मुँह मसि-तेल चभोरी ॥ कलि०
रहित उछाह डेरात रंग से, थोड़ गुलाल परो री।
ठाकुर जम जब प्रान निकलिहै, देंहि नरक में बोरी।
प्रथम है गिनती मोरी ॥[1] कलि०

*

देवदत्त मिश्र

आप पटना के निवासी थे। हिन्दी में आपके द्वारा रचित एक नाटक 'बाल-विवाह दूषक' का पता चला है।[2] आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

*

नान्हक

आप सारन-जिले के निवासी राज-भाट थे। आपने बहुत-सी स्फुट कविताओं की रचना की थी, जिनपर भोजपुरी भाषा का अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।[3]

उदाहरण

हाथिन के साजे बने समाजे कोटिन राजे पगु ढारे।
दल बादल छाये जनक बुलाये नृप सब आये मनि डारे।
दुल्लह जब आये दरसन पाये 'नान्हक' पढ़त सुमन बरषे।
दिग्गज अकुलाने कमठ सकाने जनक जुड़ाने दल देषे ॥[4]

---

१. 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० १८३-८४।

२. इसका प्रकाशन सन् १८८५ ई० में बाँकीपुर (पटना) के खड्गविलास प्रेस से हुआ था।—देखिए, 'हिन्दी पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ४८०। रचना-प्रकाशन-काल में आप कम-से-कम ४० वर्ष के रहे होंगे। अतः आपका जन्म-काल सन् १८४५ ई० के आसपास हो सकता है।—सं०

३. अनुमानतः आपका स्थिति-काल सं० १८४१-४५ वि० (सन् १८८४-८८ ई०) के आसपास है। अतः, जन्म-काल सन् १८४०-५० ई० के बीच या आगे-पीछे होगा।—श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (वही) से प्राप्त परिचय-सामग्री के आधार पर।—सं०

४. वही।

नारायण

आप पटना-निवासी थे। आपने हिन्दी में काव्य-रचना की थी। हिन्दी मे आपका 'अष्टयाम' नामक एक काव्य-ग्रंथ प्रकाशित भी हुआ था।[१] आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

❋

नारायणदत्त उपाध्याय

आप चम्पारन-जिले के निवासी और बेतिया (चम्पारन) के महाराज आनन्दकिशोर सिंह (सन् १८१५-३८ ई०) और नवलकिशोर सिंह (सन् १८३८-५५ ई०) के दरबारी कवि थे।[२] आपकी रचनाओ के उदाहरण नही मिले।

❋

परमानन्ददास

आप शाहाबाद-जिले के 'कोरी' ग्राम-निवासी एक कायस्थ-कुलोत्पन्न कबीर-पंथी सत थे।[३] आप जीविकोपार्जन के लिए जौनपुर (उत्तर-प्रदेश) में नौकरी करते थे। वहाँ से घर आने के लिए आपको अवकाश कम मिलता था। अतः, प्रतिमास अपनी पत्नी के पास छन्दोबद्ध पत्र प्रेषित किया करते थे।[४]

आपकी दो पुस्तकाकार रचनाएँ हस्तलेख के रूप में मिलती हैं—(१) बारहमासा[५]

---

१. इसका प्रकाशन सन् १८८७ ई० में खड्गविलास प्रेस (पटना) से हुआ था—देखिए, 'हिन्दी-पुस्तक साहित्य (वही), पृ० ४६५। यदि रचना-प्रकाशन-काल में आप ४० वर्ष के रहे होंगे तो आपका जन्म अनुमानतः सन् १८४७ ई० में हुआ होगा।—सं०

२. बेतिया-नरेश महाराज आनन्दकिशोर सिंह सन् १८१५ ई० में गद्दी पर बैठे थे और नवलकिशोर सिंह सन् १८५५ ई० में स्वर्गीय हुए थे। अतः, आपका स्थिति-काल इसी अवधि के अन्तर्गत अनुमित है।—स०

३. तृतीय बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (सीतामढी) के सभापति श्रीशिवनन्दन सहाय के भाषण से।

४. श्रीराजेन्द्र प्रसाद (कोरी, शाहाबाद) के दिनांक २४-४-५८ के पत्र से।

५. इस पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के 'चौबे-सग्रह' में सुरक्षित है। इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति श्रीतारकेश्वर प्रसाद (अमलापट्टी, मोतीहारी) के पास भी है। अपनी उसी प्रति के आधार पर उन्होंने आरा के भोजपुरी पाक्षिक 'गॉवघर' (वर्ष १, अंक १४-१५, १६ मई, सन् १९६१ई० पृ० १६-१७) में 'श्रीपरमानन्दजी के विरहमासा' शीर्षक एक लेख प्रकाशित कराया है, जिसमें उन्होंने आपका स्थिति-काल १८वीं शती बतलाया है। किन्तु कवि ने स्वय ही 'बारहमासा' का रचना-काल सन् १८५५ ई० और 'कबीरभानुप्रकाश' का सं० १९३५ वि० (सन् १८७८ ई०) बतलाया है। 'बारहमासा' के काल-सूचक दोहे में जो सवन् शब्द है, वह वर्ष या साल का बोधक है। आपने सन् १८५५ ई० में अपनी पहली रचना (बारहमासा) लिखी थी। उस समय आप कम-से-कम ४०-४५ वर्ष के रहे होंगे। अतः, आपका जन्म-काल सन् १८१०-१५ ई० के लगभग होगा।—सं०

और (२) कबीर-भानु-प्रकाश ।[1] कहते हैं, प्रथम पुस्तक में आपके उपर्युक्त छन्दोबद्ध पत्र ही संगृहीत हैं। इसमें साल के बारह महीनो में विरही और विरहिणी की मनोदशा का बड़ा ही रोचक और साहित्यिक वर्णन है। दूसरी पुस्तक एक प्रकार से कबीर साहब के विचारों का लघु संग्रह है। इसके अतिरिक्त इसमें आपके मौलिक विचार भी हैं और अन्य धर्मों की परिचयात्मक आलोचना भी। साथ ही, स्थान-स्थान पर कबीर, बुल्लाशाह आदि सन्तों और योगवासिष्ठ, वेदान्त-न्याय-दर्शनादि की उक्तियों को साक्षी-रूप में रखकर अपने मन्तव्य की पुष्टि भी आपने की है। आपकी रचनाएँ भोजपुरी भाषा मे भी मिलती हैं।

उदाहरण

(१)

सत नाम ब्रती बर सन्त सती दिन अन्त भये भगवान पयाना।
जग नैन महा सुख दैन दुरे धीरे धीर धरो पद पंकज ध्याना।
दृढ़ इन्द्रिन दौन ते मौन गहो थिर आसन हो अनुसासन माना।
यहि संधि सचेत सतोगुन ते सत धारहि ये सत रूप समाना ॥[2]

---

१. इसकी एक हस्तलिखित प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के 'चौबे-संग्रह' में सुरक्षित है। इसके अन्त में आपने लिखा है—

सम्वत उन्निस सौ पैंतीसा। शुक्ला यकादशी तिथि दीसा ॥
मंगल अरु ज्येष्ठ महीना। ता दिन ग्रंथ समापति कीना ॥
महि पंजाब देश के माही। शहर फिरोजपुर यक आही ॥
नग्र मुक्तसर तह यक अहई। दोदा ग्राम निकट तेहि कहई ॥
ताहि ग्राम में जब आसीना। भजन ध्यान प्रभु के लौलीना ॥
ग्रंथ रचन गुरु आज्ञा पाई। लिख रच धर्म कथा समुझाई ॥
जेते अक्षर लिखे बनाई। जो कोइ घटि बढ़ि नाहि मिलाई ॥
सो गुर सन्मुख लेखा भरिहै। भिन्य भेद जो कोइ करिहै ॥

इससे जान पड़ता है कि आपके गुरु कोई पंजाबी सन्त थे। आपने सं० १९३५ वि० (सन् १८७८ ई०) में उक्त ग्रंथ रचा था। पंजाब में आप कुछ समय रहे भी होंगे। आपकी भाषा में 'गुलाबियाँ, रिकाबियाँ, आइयाँ, पाइयाँ' आदि शब्द-प्रयोग पंजाबी भाषा से प्रभावित प्रतीत होते हैं। किन्तु, आप बिहार के ही निवासी थे। आपने स्वय लिखा है—

हिन्दुस्तान के सूबे में सूबे बिहार है। वा में शाहाबाद सुजस सरकार है ॥
प्रगने पवार के कोरी में मेरो ग्राम है। बन्दा परमानन्द हमारा नाम है ॥

—'गाँव-घर' (पाक्षिक, वर्ष १, अंक १४-१५, १६ मई, सन् १९६१ ई०), पृ० १६।

२. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रन्थ, शोध-विभाग में सुरक्षित 'कबीर भानु-प्रकाश' की प्रति से।

(२)

छतियन बजर-केवार जँजीरा दे गये।
सूनी सेज भयावन भारी रात है।
निसि दिन ही पछतात बिरह से जात है।
का से कहौ यह दरद मैं अपने प्रीत की।
आगि लगो वोहि देस चलन वोहि रीत की।
सभ सखियन के पीव विदेस से आइयाँ।
मेरो बलाम्ह आमीत विदेसे छाइयाँ ॥[1]

(३)

सावन मास सोहावन जल थल महि भरे।
कन्त कुमंत बिदेस न जानो बस रहे॥
छन गरजत छन बरसत दमकत दामिनी।
डरपत भवन भयावन सूनी यामिनी॥
कबहि झटाके छूट घटा के रोक से।
कबहि झकोरत मेघ पवन के झोंक से॥
गगन तड़कत मेघ कड़कत छातियाँ।
बिरह भरी रस बैन सुनावत बातियाँ॥
वोलत दादुर मोर बिरह की बोलियाँ।
बिरहिन के हिय माँह लगे जस गोलियाँ॥[2]

(४)

आये पूस के मास तर वर वास है।
बिरहिन को यह मास गले का फाँस है॥
रात बड़ी मोहि नींद न आवत नैन में।
सिसिर समै की रात न कुछ चित चैन में॥
करवट करवट फेरत कर है अलग फटे।
नेरो छोह पिया के तन मन सो घटे॥

---

१. विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथ, शोध-विभाग में सुरक्षित 'बारहमासा' से।
२. वही।

कोइ न साथी संग सखियाँ सहेलियाँ।
जाको बूझ बुझावों बिरह पहेलियाँ॥
एक दीपक है साथ सो बात न बोलही।
सुसुकि सुसुकि झर नैन गिरत तन डोलही॥[1]

(५)

दौरि गहे पद कन्त जी भरि गये लोचन नीर।
हो चकोर मुख चन्द्र जस कागज की तसवीर॥
ऐसो समय असाढ़ को पीव बिदेसे छाय।
निरखि घटा घन की छटा पिउ बिन मन कदराय॥[2]

*

फतूरी लाल

आपका नाम 'फतूरलाल' भी मिलता है।

मिश्रबन्धुओं ने आपका निवास-स्थान मिथिला वतलाया है।[3] उन्हीं के मतानुसार आपने 'कवित्त अकाली'[4] नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी। मैथिली में रचित आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ भी मिलती हैं।

उदाहरण

(१)

जेठ मास अमावस, सजनि गे, सभ धनि मंगल गाव।
भूषण बसन जतन करु, सजनि गे, रचि-रचि अंग लगाव॥
काजर-रेख सिदुर भेल, सजनि गे, पहिरथि सुबुधि सयानी।
हरखित चलली अछयवट, सजनि गे, गवितहि मंगल बानी॥

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथ शोध-विभाग में सुरक्षित बारहमासा' से।

२, 'गाँव-घर' (वही) पृ० १६-१७।

३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० १२३६ तथा 'डॉ० गियर्सन कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृष्ठ २१३।

४. डॉ० ग्रियर्सन के मतानुसार सन् १८७४ ई० में आप उपस्थित थे और मैथिली में लिखित सन् १८७३-७४ ई० के अकाल का वर्णन करनेवाले 'कवित्त-अकाली' नामक अत्यन्त जन-प्रिय ग्रंथ के रचयिता थे। —देखिए, 'Journal of the Asiatic Society of Bengal' (Extra No. 1881), P. 24. और डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास', (वही), पृ० २१३। —ग्रन्थ रचना-काल (सन् १८७३-७४ ई०) में आपकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की रही होगी। अतः, आपका जन्म-काल सन् १८४४ ई० के आसपास होने का अनुमान है।—सं०

घर-घर नारि हँकारल, सजनि गे, आदर सौं सभ गेली ।
आइ थिक बड़ साइत, सजनि गे, तें आकुलि सभ भेली ॥
घुरुमि-घुरुमि जल ढारल, सजनि गे, बाँटल अछत सुपारी ।
फतुरलाल देल आशिष, सजनि गे, जीवथु दुलह दुलारी ॥[1]

(२)

चहु दिसि घेरु घन करिया ॥ हे ऊधो ॥ ध्रु० ॥
झहरि-झहरि बुँद पड़य पलँग पर,
भिजत कुसुम-रँग सरिया ॥ हे ऊधो ॥
पथ भेल पिच्छड़ प्रितम भेल चंचल,
कोन बिधि चूँदरि बचैआ ॥ हे ऊधो ॥
पावस कठिन कैल चुवत भवन मोर,
हरि बिन सून अँटरिया ॥ हे ऊधो ॥
हरि गेल मधुपुर हमरहु तेजि गेल,
लोचन नीर जल-धरिया ॥ हे ऊधो ॥
कहथि फतूरलाल सुनिय मोहन जी,
दोगुन भिजय मोर सरिया ॥ हे ऊधो ॥[2]

❋

बदरीनाथ

आप पटना-निवासी और पटना-कॉलेजियट-स्कूल के शिक्षक थे ।[3] सन् १८८० ई० में आपके सम्पादकत्व में पटना से 'विद्या-विनोद'[4] नामक हिन्दी मासिक-पत्र निकला था । किन्तु, दो वर्षों के वाद यह वन्द भी हो गया । आप हिन्दी में लेखादि भी लिखा करते थे । आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले ।

१. 'मिथिला गीत-सग्रह' (भोल झा, प्रथम भाग,) पृ० १३ ।
२. वही (द्वितीय भाग), पृ० ६ ।
३. 'पुस्तक-भण्डार-जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ' (वही) के 'विहार की हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ' शीर्षक लेख से ।
४. वालोपयोगी पत्र 'विद्याविनोद' के सम्पादक वावू साहव प्रसाद सिंह के सहोदर भाई वावू चण्डीप्रसाद सिंह थे । 'विनोद' के लेख वहुत उपयोगी होते थे । इसमें खण्डशः पुस्तकें भी छपा करती थीं । श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकलाजी-विरचित 'पीपाजी की कथा' सर्वप्रथम इसीमें मुद्रित हुई थी ।—'हरिऔध अभिनन्दन-ग्रन्थ' (वही), पृ० ५३८ । इस उल्लेख से विदित होता है कि आप 'विद्याविनोद' के आरम्भिक वर्ष में कुछ दिन उसके सम्पादक थे । सन् १८८७ ई० में पत्र-सम्पादक रहते समय आप कम-से-कम चालीस वर्ष के रहे होंगे । इसी आधार से आपका जन्म-काल सन् १८४० ई० अनुमित है ।—सं०

बबुजन झा

आप मिथिला के पिलखवाड़ नामक गाँव के निवासी थे।[१] आपके पिता का नाम महामहोपाध्याय दीनबन्धु (नेनन) उपाध्याय[२] था। आप अपने समय के एक भारत-प्रसिद्ध विद्वान् थे। दर्शन आदि शास्त्रों में आपकी अच्छी पैठ थी। विद्यादान के अतिरिक्त ४०-५० विद्यार्थियों के भोजन-वस्त्र की व्यवस्था भी आप स्वयं ही करते थे। नवानी-ग्राम (दरभंगा)-निवासी सुप्रसिद्ध नैयायिक पंडित बच्चा झा[३] भी आपके ही शिष्य थे। आपने इन्हें न्याय-दर्शन की शिक्षा दी थी। आप ज्योतिषशास्त्र के विद्वान् पं० भानुनाथ (भाना) झा[४] के सगे भाई[५] थे।

उदाहरण

नागर अटकि रहल परदेश। तरुण वयस कत खेपब कलेश॥
मैल बसन तन भसम लेपि लेल। तन दूबरि अभरन तजि देल॥
खन-खन झाँखथि रहथि मन मारि। कोन दोषे तजि गेल मदन मुरारि॥
भन 'बबुजन' कवि सुनिय ब्रजनारि। धैरज धय रहु मिलत मुरारि॥[६]

*

बहादुरदास

आप संभवतः 'डुमराँव' (शाहाबाद) के निवासी थे। हिन्दी में आपकी एक प्रकाशित पुस्तक 'निर्द्वन्द रामायण' का पता चला है।[७] आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

*

---

१. 'बालक' (मासिक, वर्ष १४, अंक २, फरवरी, सन् १९४० ई०), पृ० ९७।

२. 'पुस्तक-भण्डार जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ' (वही), पृ० ४०७।

३. इनका परिचय अगले खण्ड में द्रष्टव्य।

४. इनका परिचय इसी पुस्तक के प्रथम अध्याय में द्रष्टव्य।

५. 'पुस्तक भण्डार जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ' (वही), पृ० २०। पं० भानुनाथ (भाना) झा का जन्म सन् १८२३ ई० में हुआ था। इसी आधार पर आपका जन्म-काल भी इसके आस-पास अर्थात् सन् १८२० ई० से सन् १८३० ई० के बीच अनुमित है।—सं०

६. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, प्रथम भाग), पृ० ६, १०, २३ तथा २४।

७. इसका प्रकाशन सन् १८८५ ई० में डुमराँव के ही शिवदास नामक किसी व्यक्ति ने किया था। —'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ५२०। यदि आप अपनी रचना के प्रकाशन-काल में ४० वर्ष के भी होंगे तो आपका जन्म-काल अनुमानतः सन् १८४५ ई० में पड़ता है।—सं०

बिहारी सिंह

आप सारन-जिले के निवासी थे।[१] आपकी तीन हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हुई थी— (१) बिहारी नखशिख-भूषण[२], (२) मारुती-मंजरी[३] और (३) दूती-दर्पण।[३] रचनाओ के उदाहरण नही मिले।

※

बुलूराम

आप छोटानागपुर प्रदेश (बिहार-राज्य) के निवासी थे। इतिहास-प्रसिद्ध सिपाही-विद्रोह (सन् १८५७ ई०) के अमर शहीद पाण्डेय गणपत राय के आप पुरोहित थे।[४] जब विद्रोह मे पाण्डेय गणपत राय शहीद हो गये, तब दिनाक २१-२२ अप्रैल (सन् १८५८ ई०) को आप उनकी लाश लाने राँची गये थे। आपने हिन्दी में काव्य-रचनाएँ भी की थी।[५] पर आपकी रचनाओ के उदाहरण नही मिले।

※

बोधिदास

आप संभवतः पटना-जिले के निवासी थे। हिन्दी मे आपके द्वारा लिखित एक धार्मिक पुस्तक का पता चला है—'भक्त-विवेक' जो, सन् १८७६ ई० में प्रकाशित हुई थी।[६] आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

※

---

१. —'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ५२३।

२. यह कविता-पुस्तक सन् १८८१ ई० में खड्गविलास प्रेस पटना से निकली थी।

३. इन कविता-पुस्तकों के प्रकाशक कोई सारन-जिला-निवासी अक्षयकुमार नामक व्यक्ति थे। अनुमान है कि सन् १८८१-८२ ई० में पुस्तकों के प्रकाशन के समय, आप ४० वर्ष के रहे होंगे। अतः, आपका जन्म-काल सन् १८४० ई० के लगभग रहा होगा।—सं०

४. हिन्दी के यशस्वी कथाकार श्रीराधाकृष्णजी (राँची) ने अपने दिनांक ४-२-५६ के पत्र में लिखा है कि 'किसी पुराने कागज में केवल इतना ही मिला था कि 'आप पाण्डेय गणपति राय के पुरोहित और कवि भी थे।'

५ 'आदिवासी' (साप्ताहिक, वर्ष १२, अंक ५०, २२ जनवरी, सन् १९५९ ई०), पृ० १६। अनुमान है कि जिस समय आप गणपत राय की लाश लाने के लिए राँची गये होंगे, उस समय आपकी अवस्था चालीस वर्ष से कम न होगी। अतः, इस हिसाब से आपका जन्म-काल सन् १८१८ ई० के लगभग ठहरता है।—सं०

६. इस पुस्तक के प्रकाशक पटना-निवासी कोई महादेव शर्मा थे।—देखिए, 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही,) पृ० ५२७। अनुमानतः आपका जन्म-काल सन् १८३६ ई० के आसपास रहा होगा।—सं०

भगवान प्रसाद वर्मा

आप हजारीबाग जिले के 'इचाक' नामक स्थान के निवासी थे।[१] आपकी गणना हिन्दी के एक अच्छे लेखक के रूप मे होती थी। आपने चालीस से अधिक पुस्तकों का प्रणयन किया था, जिनमें अधिकांश नष्ट हो गईं। सन् १९१६ ई० के पूर्व तक आपकी जो हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थी, उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) गोपाल-बाल-लीला-सार (रचना-काल सं० १९३५ वि०, सन् १८७८ ई०), (२) करुणक्रन्दन-शतक (श्रीराधिकामहारानी प्रति, सं० १९६५ वि०, सन् १९०८ ई०), (३) श्रीनारद-कृत भक्ति-सूत्र भाषा, (४) श्रवण-माहात्म्य और हरिव्रत-माहात्म्य (सं० १९५० वि०, सन् १८९३ ई०), (५) सप्तश्लोकी गीता, (६) स्फुट गीतावली या कवितावली, (७) वंशावली, (८) श्रीमद्भगवत्गीता-माहात्म्य तथा (९) भक्त निवेदन।[२] आपकी रचना के उदाहरण नही प्राप्त हुए।

*

भजनदेव स्वामी

आप 'पयाहारी बाबा' के नाम से प्रसिद्ध थे। पीछे 'नीमवाँ बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आपका जन्म गया-जिले के अरवल थाने में, 'खैरा' नामक ग्राम मे, हुआ था।[३] आपके पिता का नाम था यदुपति सिंह। आपका बचपन अपने मामा के यहाँ, शाहाबाद-जिले के सिकरहटा-कलाँ नामक ग्राम में व्यतीत हुआ। जब आप वहाँ थे तभी आपने उक्त ग्राम से पाँच मील दक्षिण, शोणभद्र-नदी के बाँयें तट पर, बिहटा-ग्राम के मठाधीश श्रीजगुस्वामी से दीक्षा ली।[४]

कहते हैं, आप सिकरहटा-कलाँ से रात्रि-काल में नित्य अपने गुरु के यहाँ जाते और फिर दूसरे दिन प्रातः काल लौट आते थे। यह क्रम बारह वर्षों तक लगातार चला। इस अवधि में आपने अपने गुरु से योग-साधना की भी शिक्षा ली।[५] जब आपको इसपर भी संतोष नही हुआ, तब आप बिहटा-मठ में अपने गुरुदेव के पास ही रहने लगे। अपने

---

१. श्रीसूर्य नारायण भडारी, (इचाक, हजारीबाग) द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।

२. ये सारी पुस्तकें 'खेमराज श्रीकृष्णदास' (बम्बई) द्वारा प्रकाशित हुई थीं। पर अब दुष्प्राप्य हैं। यदि आपके रचना-काल (सन् १८७८ ई०) में आपकी अवस्था ३० वर्ष की भी मानी जाय, तो आपका जन्म-काल सन् १८४८ ई० ही ठहरता है। निस्सन्देह आपका जन्म उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में ही हुआ होगा। अनुमानतः वह समय सन् १८३८ ई० के आसपास होनी चाहिए।—सं०

३. परिषद् में प्रेषित एक अज्ञात-व्यक्ति की सूचना के आधार पर। [प्रेषक महाशय का नाम (हस्ताक्षर) स्पष्ट पढ़ा नहीं जाता]

४. श्रीराजेश्वरराम (माध्यमिक विद्यालय, शाहाबाद) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

५. उन दिनों आपका आहार केवल दूध था, जिसके कारण आप 'पयाहारी बाबा' कहलाये।

गुरुदेव के समीप रहकर आपने बारह वर्षों तक कठिन साधना की।[१] इसके पश्चात् अपने जीवन का शेषांश आपने बिहटा से उत्तर-पूर्व-कोण पर स्थित शोणभद्र-नद के बायें तट पर 'धर्मपुर' नामक ग्राम में बिताया। यहाँ आपकी बहुत ख्याति हुई। यहाँ आपके गुरु भी चले आये। गुरु-शिष्य अंतिम दिनों में साथ ही रहे। आप सं० १९७२ वि० (सन् १९१५ ई०) के चैत-मास में परमधाम सिधारे।[२] आपकी चार हिन्दी पुस्तको का पता चला है—(१) गुरु गुन-गुष्ट , (२) श्रीक्षेत्र-ज्ञान , (३) ब्रह्मस्वरूप-रूपक और (४) ज्ञानसरोदा। इनमे प्रथम दोनों पद्यमय रचनाएँ प्रकाशित हैं[३] और अंतिम दोनो अप्रकाशित।[४] प्रथम का विषय 'ब्रह्मविद्या-विहार' तथा द्वितीय 'शारीरिक ज्ञान-विराग पथ-प्रदर्शक' है।

उदाहरण

(१)

सत गुरु बिना कोई ना हमारा।
हित-नाता सब कुल-परिवारा, मतलब के साथी संसारा।
यहि तन त्यागि जतन कियो कोटिहु, सोउ धोखा दियो बीच बजारा।
पाँच जना मिलि लूट मचायो, अबकी बार गुरुकरहु सहारा।
स्वामी जगु अरज सुनि लेहु मोरा, 'भजनदेव' को सरन पुकारा॥[५]

(२)

राम रटन रट लाओ मेरो भाई।
झूठ बकबाद मे जन्म बिताये, नही आई कछु हाथ कमाई।
जाहि घड़ी तू राम-भजन करु, सो करे तेरो संग सहाई॥

---

१. साधना की इस अवधि में आप केवल नीम के पत्ते चबाकर अपना जीवन-यापन करते थे। इसी कारण 'नीमवाँ बाबा' कहलाये।

२. आज भी आपकी और आपके गुरु की समाधि पर दो भव्य मंदिर विद्यमान हैं। योग-साधक सन्त-महात्मा होने के कारण, शरीरान्त के समय सन् १९१५ ई० में आपकी आयु कम-से-कम ७०-७५ वर्ष की रही होगी, जिसके आधार पर अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८४० ई० के लगभग हुआ होगा।—सं०

३. इनमें प्रथम का प्रकाशन दानापुर (पटना) के जी० एफ० वाहसिंग साहब के प्रेस से सन् १८९५ ई० में और द्वितीय का बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस से बाबू साहबप्रसाद सिंह के द्वारा, सन् १८९८ ई० में हुआ था।

४. इन दोनों पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियाँ उक्त धर्मपुर मठ के महंत के पास सुरक्षित हैं।

५. श्रीराजेश्वर राम (बड़ी) द्वारा प्राप्त।

माया के माल देखि जनि भूलो, यह सब माल साहु के भाई।
जा दिन प्रान गवन जग किन्हा, संगहु के तन जात बिलाई॥
जौन कर्म करो यहि जग में, सोई तेरो संग करे सहाई।
प्रान निकलि जब बाहर आए, बिना सतनाम के भटकत जाई॥
सूरत शब्द सत्त ठहराओ, तब मन आपन पाई।
स्वामी जगु कहे 'भजनदेव' सुनो, नाहिं त कर्म काल हो जाई॥'

※

भवानीचरण मुखोपाध्याय

आप छपरा नगर में, कटरा मुहल्ले के पास की 'कालीवाड़ी' के निवासी थे। आपके पूर्वज आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व (सोलहवी सदी मे) बंगाल से छपरा चले आये थे। 'दारोगा-दफ्तर', 'विजय', 'बाँसुरी' तथा 'हिन्दूपंच' के प्रसिद्ध सम्पादक स्व० कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय आपके ही भतीजे थे। आपने सन् १८८८ ई० में, छपरा से, पं० अम्बिकादत्त व्यास के सम्पादकत्व में, 'सारन-सरोज' नामक एक हिन्दी-मासिक पत्र निकाला था।[२] उसी में आपके लिखे हिन्दी-लेख भी छपते थे। आप एक गद्य-लेखक थे। आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले।

※

भागवत नारायन सिंह[३]

आप 'भगवंत' नाम से प्रसिद्ध थे।

आपका जन्म[४] पटना-जिले के रूपस ग्राम में हुआ था। आपके पिता बाबू निरवीद सिंह, सिसौदिया-क्षत्रिय-वंश के प्रसिद्ध पुरुष बाबू दीनदयाल सिंह के वंशज थे।

पाँच से बीस वर्ष की अवस्था तक आपने अपने जन्म-स्थान और काशी तथा अयोध्या में रहकर हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। दूसरे साथ-साथ आपने तुलसीकृत-रामायण का भी अध्ययन किया। अपने इसी अध्ययन के आधार पर आगे चलकर आप रामायण के अद्वितीय ज्ञाता कहलाये। आपकी गणना एक प्रसिद्ध राम-भक्त के रूप

---

१. श्रीराजेश्वरराम (वही) द्वारा प्राप्त।

२. कहते हैं कि 'सारन-सरोज' को आपने अपनी वृद्धावस्था में निकाला था। अतः, आपका जन्म-काल सन् १८२८ ई० के आसपास अनुमित है।—सं०

३. आपका परिचय रूपस (बाढ़, पटना) निवासी श्रीरामयत्न सिंह द्वारा प्रेषित सूचनाओं के आधार पर तैयार किया गया है।

४. सूचना-प्रेषक के मतानुसार आपका जन्म अनुमानतः सन् १८४६ ई० के लगभग हुआ था।—सं०

में भी होती थी। आपने सं० १६८० वि० (सन् १६२३ ई०) में श्रीझारखण्डी-स्थान (रूपस) में एक श्रीरामायण-सत्संग की स्थापना की थी, जिसमें आज भी प्रत्येक रविवार को दो घण्टे तक रामायण-पाठ हरि-कथा, धार्मिक प्रवचन आदि होते हैं। रूपस के इलाके में आज उक्त सत्संग की दर्जनों शाखाएँ चल रही हैं। आप एक अच्छे पहलवान भी थे। आपके एकमात्र पुत्र श्रीपरमानन्द सिंह काव्यतीर्थ भी बड़े होनहार जन्मजात कवि थे, किन्तु दुर्भाग्यवश वे युवावस्था में ही आपको असहाय छोड़ गये। अपने जीवन के अन्तकाल तक राम-नाम का जप करते हुए, लगभग ६० वर्ष की आयु में, सन् १६३६ ई० में, आप चल बसे।

आपने हिन्दी में कई पुस्तकों की रचना की थी, जिनमें प्रमुख के नाम इस प्रकार हैं—(१) रामलीला-सवाद , (२) वरणावली-दोहा , (३) प्रश्नोत्तर-दोहा , और (४) श्रीरामनामामृत-दोहा। इनके अतिरिक्त आपकी स्फुट रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। उक्त सारी रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित ही हैं। आपका रचना-काल सन् १८८१ ई० से सन् १६२५ ई० तक है।

उदाहरण

(१)

बने है अचारी कोई धर्म-धुरधारी ध्रुव,
कोई उपकारी बड़े कोई निर्विकारी है।
कोई बड़े पंडित बिराग से न खंडित,
अवदण्डित अवनि मे उदंडित बिचारी है।
कोई षट्शास्त्र पढ़े वाद ओ विवाद करै,
कोई कुल काव्य गढ़े दया मढे भारी है।
छके नाहि सीके पीके प्रेम रस पीके नीके,
कहा किये जीके जीके फीके सुखकारी हैं।[1]

(२)

राम-सुयश सुठि गाइए, संतन सों करु प्रीति।
छल-वल सबको छाडिए, यहि सज्जन की रीति॥
पढिए सब सद्ग्रंथ को, चतुराई की वात।
भजिय सदा रघुनाथ को, हित करि मानहु तात॥[2]

---

१. श्रीरामयत्न सिंह (वंदी) द्वारा ही प्राप्त।
२. उन्हीं से प्राप्त।

(३)

जो जन रामायन को करत रैनि-दिन पाठ।
धूप-दीप-नैवेद्य-विधि पूजत है यहि ठाट॥
पूजत हैं यहि ठाट करत हैं जे नरनारी।
तेहिं के दुख टरि लेत सदा सुख देत खरारी॥
कहत सत्य भगवत करि करु रामायन-पाठ।
पाप-ताप-संताप सब भागत हैं दस बाट॥[१]

(४)

चारि वेद को सार है रामायण सुख मूल।
बाँचत ही आनन्द मन कटत घोर त्रैशूल॥
कटत घोर त्रैशूल हरत सब पातक भारी।
भक्ति होत उपत्र सदा श्रीअवध-बिहारी।
लोक और परलोक में सदा होत विश्राम॥
रामायन नित नेम से करु भगवन्तहि गान॥[२]

※

मधुसूदन रामानुज दास

आप भागलपुर-जिले में कोशी के तट पर स्थित 'बलुआ-बाजार' नामक स्थान के निवासी थे।[३] नाम और रचना के अनुसार आप एक भगवद्भक्त ज्ञात होते हैं। आपके द्वारा रचित 'भगवद् धर्म-दीपिका' नामक एक पुस्तक यूनियन प्रेस (दरभंगा) से, सन् १८६३ ई० में, प्रकाशित हुई थी। रचना के उदाहरण नहीं मिले।

※

१. श्रीरामयत्न सिंह (वही) द्वारा प्राप्त।

२. उन्हीं से प्राप्त।

३. यह ८४ पृष्ठों और छ आने मूल्य की पुस्तक थी। इसके नाम से अनुमान होता है कि आपने इसकी रचना अपनी वृद्धावस्था में की होगी। इसके प्रकाशन-काल से जान पड़ता है कि सन् १८४० ई० के इधर-उधर आपका जन्म-काल होगा।—सं०

महावीर चौबे

आप चम्पारन के निवासी और बेतिया (चम्पारन) के महाराज राजेन्द्रकिशोर सिंह (सन् १८५५-८३ ई०) के दरबारी कवि थे।[1] आपने हिन्दी मे कुछ स्फुट-काव्य की रचना की थी। आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

※

महेशदास

आप पटना-निवासी, जाति के कहार और वैष्णव-धर्म (वल्लभ-सम्प्रदाय) के उपासक थे।[2] आपने सं० १९१५ वि० (सन् १८५८ ई०) में 'एकादशी माहात्म्य' नामक एक पुस्तक[3] की रचना हिन्दी में की थी। आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

※

मुकुटलाल मिश्र[4]

आपका उपनाम 'रंग' था।

आप पटना-सिटी के फुलौरीगंज-मुहल्ले के निवासी थे। बाल्यावस्था से ही साहित्य, संगीत और व्यायाम के प्रति आपकी विशेष अभिरुचि थी। संगीत मे तो आपकी पैठ इतनी गहरी थी कि कुछ ही समय मे आप अपने समकालीन शास्त्रीय सगीतज्ञो में अप्रतिम हो गये। संगीत के शास्त्रीय पक्ष का ज्ञान आपका जितना व्यापक था, व्यावहारिक क्षेत्र में उसे आपने उतना ही मधुर रूप प्रदान किया था। स्वनिर्मित काव्य-रचनाओं को जब आप राग-रागिनियो मे बाँधकर गाने लगते थे, तब श्रोता मंत्रमुग्ध-से हो जाते थे। संगीत की शिक्षा का आपका ढंग भी अनूठा ही था। कहते हैं, इस दिशा मे आपने अपनी एक विशेष पद्धति ही स्थापित की थी। वाद्ययंत्रो में सारंगी आपको विशेष प्रिय थी, जिसका अभ्यास आप नियमित-रूप से किया करते थे।

---

१ द्वितीय बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (बेतिया) के स्वागताध्यक्ष सेठ राधाकृष्ण के भाषण से। महाराज राजेन्द्रकिशोर सिंह का राज्य-काल सन् १८५५ ई० से आरम्भ हुआ था। उस समय आपकी अवस्था कम-से-कम चालीस की होगी। इसी आधार पर अनुमान है कि आपका जन्म सन् १८१५ ई० के लगभग हुआ होगा।—सं०

२. 'हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (वही, प्रथम भाग, परिशिष्ट क), पृ० १०।

३. आपकी पुस्तक सन् १८५८ ई० में रची गई थी। उस समय आप चालीसा पार कर चुके होंगे। अतः, आपका जन्म-काल सन् १८१८ ई० से पूर्व ही होगा।—सं०

४. आपका परिचय, मुख्यरूप से, पटना-सिटी के प्रमुख संगीतज्ञ और सगीत-प्रचारिणी-सभा (पटना-सिटी) के मंत्री श्रीलल्लूलाल गन्धर्व के द्वारा प्रेषित विवरणों के आधार पर तैयार किया गया है। उनके मतानुसार आपका जन्म सन् १८५० ई० के आस-पास हुआ था।—सं०

आपका जीवन सादगी, सरलता एवं पवित्रता का अन्यतम उदाहरण था। जबतक शक्ति रही, आपने अपना भोजन, जो अत्यन्त सात्विक होता था, अपने ही हाथों तैयार किया। बाजार का कोई पक्व अन्न आपको कभी ग्राह्य न हुआ। जीवन-भर आप आत्म-विज्ञापन और आत्मश्लाघा से दूर रहकर एकांत साधक की भाँति साहित्य-संगीत की उपासना में तल्लीन रहे।

आपने अपनी उपार्जित सारी सम्पत्ति गो-सेवा में लगा दी। गो-सेवा का व्यसन आपको बाल्यकाल से ही था। आपने अपने यहाँ बहुत-सी गायें पाल रखी थीं। उनके दूध से कभी आपने अर्थोपार्जन नहीं किया। उसे दोनों बेला पास-पड़ोस के लोगों में निःशुल्क वितरित कर दिया करते थे। आपका शिष्य-वर्ग जहाँ एक ओर आपके पास बैठकर निःशुल्क संगीत-शिक्षा प्राप्त करता था, वहाँ दूसरी ओर निःशुल्क गो-दुग्ध-पान कर स्वास्थ्य-लाभ भी करता था।

आप एक बड़े ही निष्ठावान व्यक्ति थे। अर्थ का अभाव आपको जीवन-भर रहा; किन्तु इस अभाव को आपने अपने तक ही सीमित रखा। अपनी सहायता के लिए दूसरों के आगे हाथ पसारने को आप मनुष्यत्व का अधःपतन मानते थे। आपमें अपने पैरों पर खड़े होने की प्रकृति थी, जो अन्तकाल तक बनी रही।

आपने आजन्म कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया। वैष्णवीय करुणा आपके रग-रग में व्याप्त थी, जो मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों के प्रति भी अनायास प्रत्यक्ष हो जाती थी। कहते हैं, यदि मार्ग में आप किसी रोगी या आहत पशु-पक्षी को निःसहाय अवस्था में पाते थे, तो उसे अपने घर उठा लाते थे और तबतक उसकी सेवा में लगे रहते थे जबतक वह पूर्ण स्वस्थ नहीं हो जाता था। वन्य पारावतों, गिलहरियों और दूसरे जीवधारियों को चारा देना आपका नित्य-कर्म था।

साहित्य के क्षेत्र में आपने पं० अम्बिका दत्त व्यास को अपना गुरु बनाया था। हिन्दी में आपकी एक ही पुस्तकाकार रचना उपलब्ध होती है—'दुर्गा-विजय'[1]। कहते हैं, 'गणिका-साधु-संवाद'[2] के नाम से आपने एक और पुस्तक भी रची थी। यह भी पता चला है कि आपने कवित्त-सवैयों में 'बिहारी-सतसई' की एक टीका[3] भी लिखी थी। आपकी बहुत-सी स्फुट काव्य-रचनाएँ और समस्यापूर्तियाँ 'पटना-कवि-समाज,' 'समस्यापूर्ति' आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। आपकी रचनाएँ ब्रजभाषा में

---

१. इसमें आपने मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत 'श्री दुर्गासप्तशती' का, ब्रजभाषा में, दोहे-चौपाइयों में, अनुवाद किया है। दोहे-चौपाइयों का क्रम वैसा ही है, जैसा 'रामचरितमानस' में और उसी प्रकार बीच-बीच में सोरठा और हरिगीतिका का भी प्रयोग है। इस पुस्तक को सन् १८०५ ई० में बाँकीपुर (पटना) के बिहारबन्धु-यंत्रालय में छपवाकर आपने ही प्रकाशित किया था। —सं०

२. आपके शिष्यों का मत है कि इस पुस्तक का आधार संस्कृत का 'रम्भा-शुक-संवाद' है और इसमें केवल सवैया-छन्द ही प्रयुक्त है।

३. श्रीदुर्गाविजय के अन्त में आपने स्वयं विज्ञापन प्रकाशित करके इसकी सूचना दी है और नमूने के तौर पर पाँच दोहों की कवित्त-टीका भी साथ ही दे दी है। टीका के कवित्तों से यहाँ एक उदाहरण के रूप में उद्धृत है।

होती थी। अपने जीवन के अंतिम दिनों में आप खड़ीबोली की ओर भी उन्मुख हुए थे। आपने अपनी इहलोक लीला, सं० २००३ वि० (सन् १९४६ ई०) में ज्येष्ठशुक्ल एकादशी को समाप्त की।

उदाहरण

(१)

मंदित मयंक-मुख नखत सु फीके परै
ही के मुकुतान हार नीके सीत धाए री।
पौनहू निरस बस दच्छिन चलन लागे
सीतल समीर-तीर पीर अधिकाए री।
छीन छबि दीपक मलीन लखु 'रंग' कबि
चारो दिसि चंचल गुलाब चटकाए री।
छाई नभलाली रति औरे कहुँ पाली हाय
चाली निसि झाली बनमाली नहि आए री।[1]

(२)

केहरि कीर कपोत भले मति मत्त गयन्दन सो उमगी रहै।
खंजन अस्व कुरंग तहाँ छवि कुन्दकली जुरि जोति जगी रहै॥
श्रीफल बिम्ब सुधा धनु नागिन वस्तु अनेकन 'रंग' रँगी रहै।
जो जिय चाहै सो लीजो लला चलु घाट पै रूपकी हाट लगी रहै॥[2]

(३)

चाह ते चमक चारु चूनरी चटक धारि
चंचल चखन चोखे चोर चित चोरे मे।
सहज सिंगार सजि सोरहो सलोनी नारि
ससि ते सरस सोभ सौगुन अंजोरे में।

---

१ श्री नत्थूलाल गंधर्व (वहीं) से प्राप्त। इस कवित्त की रचना आपने बिहारी के निम्नांकित दोहे के आधार पर की थी:—

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली अनत, आए बनमाली न॥

२ 'समस्यापूर्ति' (काशी, जनवरी, सन् १८९८ ई०), पृ० २। यह एक समस्यापूर्ति है, जिसकी समस्या है—'घाट पै रूप की हाट लगी रहै'।

राजति रुचिर रूप-रासि में रमा-सी
'रंग' झूमति झुकति उझकति झकझोरे में।
हचकन लहै हूर हेम की लता-सी खासी
हेरति हँसति हाँय हीरक-हिंडोरे में ॥[1]

(४)

सुघर सलोनी सुभ्र कीर्ति कमनीय जाकी
जानत जहान जासु महिमा अगाधा को।
ध्यावत सप्रेम पद पावत परम धाम
गावत मुनीस गुन करत अराधा को।
जाकी तन झाईं नेक आवत ही स्याम-तन
हरित हलौरें होत पूरित मन साधा को।
सक्ति सिरताज काज पूरन प्रद चार फल
'रंग' सोई राधा हरु मेरी भव-बाधा को ॥[2]

(५)

छीन लगै है कहा धो हमैं कटि कैसो नितम्ब मही गरुता हे।
बाढ़ि कै केस चल्यो छिति छूअन भौंह चढ़ि है अकास अथाहे।
आनन-ओप तूँ देखु बिचारी के कानन को दृग नाँघिबो चाहे।
पूछूँ मैं तोसों सखी दिना द्वैक ते मो हिय हेरि हँसै हरि काहे ॥[3]

(६)

साजि कै कवच तन स्यामता गगन गाढ़े
चन्द्रिका चपल चन्द्रहास चमकायो है।
कलियाँ कुमुद कुल कमल गुरुज गोल
खंजन जमात जोर सैन सँग लायो है।

---

१. 'समस्यापूर्ति' (वही, जुलाई, सन् १८९७ ई०), पृ० ३। यह भी एक समस्यापूर्ति है। समस्या है—'हीरक हिंडोरे में।'

२, वही। इस कवित्त की रचना बिहारी के निम्नांकित दोहे के आधार पर हुई है—

मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोय।
जातन को झांईं परै स्याम हरित दुति होय ॥

३. वही (जुलाई, सन् १८९७ ई०), पृ० २।

त्रिविध समीर धीर धावन चले है 'रंग'
बिकसित कास को पताक दरसायो है।
बरखा बिगत बची बिरहिन बिदारिबे को
सरद अदर्द बीर रूप धरि आयो है ॥[1]

(७)

डोलै तू अकेली कहा बीर कूल कुजन के
स्रवत सरीर स्रम-स्वेदन सकारे हैं।
वेनी बिथुरि बार बहक्यों कपोलन पै
गर गुन-माल बिनु गौहर गुँधारे हैं।
नैनन लखि जानी मोहि बैनन भुरावे कहा
'रंग' रस साने अरसाने अरुनारे हैं।
थिरता पगन आये आनन अजब अता
भृगु के लता की किता उर मे निहारे हैं ॥[2]

(८)

झमकि हरि झूलत रंग हिंडोरे।
मनिमय जटित खंभ कंचन को सुरँग पाट लग डोरे ॥
तैसो मुकुट सुभग सिर राजै मृगमद रुचिर सु खौरे।
अलके कुटिल बंक जुग भौहे नैन चारु चित चोरे ॥
पावस उमगि घेरि घन छायो तड़ित तडप चहुँ ओरे।
वहत समीर त्रिविध पिक सुक गन रटत रहत नित मोरे ॥
झोकन झुकत दुरत प्रकटत पुनि सघन कुंज की कोरे।
जनु विधु पड़त जलद-पट निसरत सोभा अधिक लहो रे ॥
घेरि रही चहुँ दिसि ते सखियन उपमा देत 'रंग' मुख मोरे।
मदन एक रति रूप कोटि धरि निरखि-निरखि तृन तोरे ॥[3]

*

---

१. 'भारत्यावृत्ति' (वही, जुलाई, सन् १८९७ ई०), पृ० ३।
२. वही (दिसम्बर, सन् १८९७ ई०), पृ० ३
३. श्री[illegible] गन्धर्व (वही) द्वारा प्राप्त।

मुनीन्द्र

आप मिथिला के विसौली नामक स्थान के निवासी थे। पीछे उत्तर-प्रदेश में जाकर बस गये।[१] सन् १८५७ ई० के गदर के समय आप जीवित थे।[२] आपके पिता का नाम कवीन्द्र[३] और पितामह का हरीन्द्र था। आप कुछ दिनों तक हिन्दी-साहित्य-सेवी पण्डित दुर्गाशंकर शुक्ल के पितामह पं० तोताराम शुक्ल के साथ रहे थे। उनके दौहित्र बाबू कृष्णानन्दजी से, जो काशीपुर के राजासाहब के शिक्षक (ट्यूटर) थे, आपकी घनिष्ठ मैत्री थी। आप अलौकिक चमत्कारोवाले एक पहुँचे हुए साधक थे। कहते हैं, अपने से उच्चकुल की एक कन्या को सिद्धि के द्वारा शास्त्रार्थ में परास्त कर आपने उससे विवाह कर लिया था।

आप हिन्दी के एक सफल कवि थे। आपकी कविताएँ उत्तर-प्रदेश के बरेली, पीलीभीत, काशीपुर और शाहजहाँपुर के काव्यानुरागियों तथा साधकों की गोष्ठियों मे बड़े आदर से पढ़ी-सुनी जाती हैं। आपने 'श्रीजगदम्बा-स्तुति' नामक एक पुस्तक की रचना की थी, जिसमें श्रीजगदम्बा से सम्बन्धित आपके कुछ कवित्त संगृहीत हैं।

उदाहरण

(१)

दक्षिणा को दास हों फराश पासवारी को
मैं रासभ हौं राज-राजरानी सो कृपाली को।
उल्लू उग्रतारा को हौं बगुलामुखी को बैल
छिन्ना को छौकरा हौं मूढ मुंडमाली को॥
सुकवि मुनीन्द्र सिंधुबालाजू को बालक हौं
भैरवी को भक्त धूत धूमा विकराली को।
चामुंडा के चाकर के चीकर को चूकर मैं
शूकर हौं श्यामा जू को कूकर हौं काली को॥[४]

---

१. वासी हैं विसौली के प्रकाशी मिथिला के हम अब सुखवासी काशीपुर औ बरेली के।
मैथिल मुनीन्द्र पलवार अरिपारी भारी पुत्र हैं प्रसिद्ध श्रीकवीन्द्र मनि मेली के।
पौत्र हैं हरीन्द्र के प्रपौत्र हैं रतनपति जू के गुरु शिवपुरी शोशगढ मल्लापुर देल्ही के।
लाहौर, कुमाऊँ, कलकत्ता और लंदन मान-जस के जपैया जगदम्बा अलबेली के॥
—'सरस्वती' (मासिक, भाग ३९, खंड १, सख्या ५, मई सन् १९३८ ई०), पृ० ५२७।

२. इसी आधार पर यह अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८१०-२० ई० के बीच हुआ होगा।—सं०

३. ये भी हिन्दी के एक सफल कवि थे। इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य है।

४. 'सरस्वती' (वही), पृ० ५२७।

(२)

जाके अम्बुजासन खगासन वृषासन गणेश
शेष आसन सिंहासन भरे रहे।
तापर अंनग-रूप सेज-रूप ब्रह्माणी की
चंद्र हैं वितान छाँह सीस पैं करे रहे॥
श्रीपति रहत जाकी चरण-शरण ताके
चाकर-से बारहो दिवाकर खड़े रहे।
मंदिर के धनाधीश द्वार पैं कलंदर से
बंदर से चौदहो पुरन्दर पडे रहे॥[1]

(३)

नागानन नाजिर सो हाजिर हो हुजूर
श्री पति सिरस्तेदार सुखमा सने रहे।
द्रुहिण दिवान मघवान ऐसे मुंशी जी
सु मारतंड तुलिन मुसद्दी से बने रहे॥
वरुण वकील तहसीलदार तारा-पति
जम से जमादार संतत अने रहे।
सुकवि मुनीन्द्र महारानी जू के दरबार
महादेव ऐसे यूँ मुसाहिब बने रहें॥[2]

※

रघुवंश सहाय

आप छपरा के निवासी थे।[3] आपने 'ब्रजवन-यात्रा' नामक एक पद्यात्मक पुस्तक[4] की रचना हिन्दी में की थी, जिसे आपने स्वयं प्रकाशित भी कराया था। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

※

---

१. '[illegible]' ([illegible]), पृ० ५२७
२. वही।
३. 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ५६४।
४. इस पुस्तक का रचना काल सन् १८७६ ई० है। अतः आपका जन्म-काल सन् १८३०-४० ई० के मध्य अनुमानित है।

रत्नपाणि[1]

आपका मूल नाम 'बबुरैया झा' था।

आप मिथिला-निवासी शाक्त तथा संस्कृत के महान पंडित और कर्मकांड सम्बन्धी पुस्तकों के अधिकारी प्रणेता थे।[2] आप महाराज छत्रसिंह एवं रुद्रसिंह के दरबार में सभा पंडित थे।

कीर्तनिया-नाटकों की परम्परा मे आपने 'उषाहरण' नामक एक नाटिका लिखी थी, जिससे आपके पांडित्य का भी परिचय मिलता है। इस नाटिका मे आये मैथिली-गीतों के अतिरिक्त आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ भी मिलती हैं। आपका निधन सन् १८६० ई० में हुआ।

उदाहरण

(१)

शिव मोर करिअ तराने।
असह व्यथा हम सहय न पारिअ संकट पड़ल पराने ॥
नाचि-काछि शिव तोहि रिझाओल आब होयत बरदाने ॥
तखन भेलहुँ मायाबस अभिमत जाचक आनक आने ॥
तकर उचित फल आय तुलायल जेहन कयल अभिमाने ॥
दस सत बाहु छनहि काटल गेल नहि दोषी खगयाने ॥
सभ तेजि धाय आय तुअ परिसर धय मन आस बिधाने ॥
देखिअ नाच हरषि हर हेरिअ हरिअ दोष सन्ताने ॥
देखिल नाच हर सभ दुख फेरल कयल गनक परधाने ॥
रत्नपानि भन बरद एक सिव जगत-बिदित जस गाने ॥[3]

(२)

कर्णा कर्णा सुनल सभ लोक। भेल कृतारथ बिसरल सोक ॥
तखन तैयारी नगरक भेल। दोसर द्वारका जनि बनि गेल ॥
चन्दन-चर्चित जगमग सरनि। कुसुम-विभूषित भय गेल धरनि ॥
ततय पताका सभ दिसि सोभ। देखइत सुरपति काँ होअ लोभ ॥

---

१. महाकवि विद्यापति के आश्रयता महाराज शिवसिंह के मंत्री 'अच्युत' के एक पुत्र भी 'रत्नपाणि' नाम के हो गये हैं। किन्तु, वे आपसे भिन्न व्यक्ति थे।—सं०

२. 'हिन्दी-साहित्य को बिहार की देन' (वही), पृ० ११७। इस पुस्तक में आपका समय सन् १८०८-६० ई० अंकित है। अतः आपका जन्म अनुमानतः सन् १८०८ ई० में हुआ और देहान्त १८६० ई० में।—सं०

३. 'मैथिली-साहित्यक-इतिहास' (वही), पृ० १६७।

कि कहब नगरक तखनुक चरित। विसकर्म्मा जनि सिरजल त्वरित॥
सभ दिसि वाज सकल जन तखन। कृष्ण-कमल-मुख देखब कखन॥
गजरथ वाजि पदाति अलेख। हरष वेआपित चलल असेप॥[1]

(३)

अयुत उदित रवि-रुचिर देह छवि, अरुणपाट पटभासे।
रिपु सिर निकर माल उर शोभित दश दिस ज्योति विकासे॥
रुधिर-लेपमय पीन पयोधर, मुख अरविन्द समाने।
ससिवर रत्न-मुकुट शिर शोभित मृदुल हास परधाने।
पुस्तक अभय अक्ष-जपमाला वर कर चारि निधाने।
निज जन शंकरि असुर-भयंकरि श्री भैरवि तुअ ध्याने॥
विपय विपम रस हृदय देविपद भजत न धरत न ज्ञाने।
भुवन भवन तसु उदित सुकृति वसु से जन भव परधाने॥
जगत-जननि! विनती किछु सुनिअ 'रत्नपाणि' भन दासे।
श्रीमिथिलेशक हृदय वास कए पुरिअ तासु सभ आसे॥[2]

(४)

वसहा भिरल पलान रे, कर धए लेल डोरी।
पन्थ चलल नहि जाए रे, व्याकुलि भेलि गौरी॥
साँझ पडल वनमाझ रे, गणपति छथि कोरा।
अवहुँ करिअ दृढ ज्ञान रे, वुढ भङ्गी मोरा॥
आक धुथुर केर चूर रे, फाँकथि भरि गाला।
परिजन भूत वेताल रे, ओढन वघछाला॥
'रत्नपाणि' धरु ध्यान रे, विनती कर जोरी।
हर थिक त्रिभुवन नाथ रे, सुनु गौरी मोरी॥[3]

*

1. 'मैथिली साहित्यक इतिहास' (वही), पृ० १६८।
2. 'मैथिली-गीत-रत्नावली' (वही), पद सं० ८४, पृ० ७८-७९।
3. वही, पृ० ४६।

राजेन्द्रशरण

आपका उपनाम 'जानकीप्रपन्न' था।

आप छपरा-निवासी एक राम-भक्त थे।[१] खड़ीबोली मे रचित आपकी एक प्रकाशित पुस्तक 'रसिक-उर-हार' का पता चला है।

उदाहरण

राजिन्दर जानकी-बर-चरन ध्यावो।
सुजस श्रीप्रानपति के नित्य गावो॥
नमो प्रीतम पियारे प्रान-बल्लभ।
दरस अपना दिखाओ जो है दुर्लभ॥
बिनय करता हूँ अतिसय प्रान-प्यारे।
लगी है आस चरनों में तुम्हारे॥
तुम्हारे विन बहुत दिन प्यारे बीते।
स्रवन लोचन सफल हों अब तुम्ही ते॥
दरस तव प्रान-बल्लभ मै जो पाऊँ।
कमल-चरनों का मधुकर हो ही जाऊँ॥
चरन-रज से कृतारथ सीस करके।
रहूँ मैं मोद से निज हीय भरके॥
धरे हाथों प' श्रीपंकज-चरन को।
सदा देखा करूँ सोभा-सदन को॥

---

१. कहा जाता है कि आप मुंगेर जिले के 'छपरा' नामक स्थान के निवासी थे और जिस समय श्रीरूपकला जी मुँगेर में कई साल लगातार रहे थे उसी समय उनके संसर्ग से आप भी शृङ्गारी मधुर भावना की रामभक्ति के अधिकारी हुए। श्रीरुपकला जी सन् १८७० ई०, के आसपास मुँगेर में थे। कहते हैं कि वहाँ वे करीब चौदह साल रहे। संभव है, उन्हीं के सत्सग से आपके मन में भगवद्-भक्ति उदित हुई हो। उस समय आपकी अवस्था ५० वर्ष के लगभग रही होगी। अतः अनुमान है कि आपका जन्म सन् १८२० ई० के इधर-उधर हुआ होगा। —सं०

कभी हँस के न बोले तुम सियाबर।
कृपाकर दो य' सुख मुझको दया कर ॥
मुझे अपनी झलक प्यारे दिखाओ।
बचन मीठे मुझे अपने सुनाओ ॥
सदा राजेन्द्र सिय पिय ध्यान लाओ।
सुजस श्री प्रानपति के नित्य गाओ ॥[1]

*

राम

आपके जन्म-स्थान का पता निश्चित-रूप से नहीं चलता; किन्तु इतना ज्ञात हुआ है कि आप सन् १८५७ ई० के सैनिक-विद्रोह के अमर सेनानी जगदीशपुर-निवासी बाबू कुँवरसिंह के आश्रित कवि थे।[2] जिस प्रकार महाकवि भूषण ने छत्रपति शिवाजी की यशोगाथा लिखकर अपनी लेखनी को धन्य किया था, उसी प्रकार आपने अपने आश्रयदाता बाबू कुँवर सिंह के शौर्य-पराक्रम पर काव्य-रचना की थी, जो आगे चलकर 'कुँवर-पचासा'[3] नाम से, पुस्तकाकार प्रकाशित हुई।

उदाहरण

जैसे मृगराज गजराजन के झुण्डन पै
प्रबल प्रचण्ड सुण्ड खण्डत उदण्ड है।
जैसे बाज लपकि लपेट के लवान-दल
दलि-मलि डारत प्रचारत बिहंड है।
कहै 'राम' कवि जैसे गरुड गरब गहि
अहि-कुल दण्डि-दण्डि मेटत घमण्ड है।
तैसे ही कुँवरसिह कीरति अमर मण्डि
फौज फिरंगीन की करी सुखड-खंड है ॥[4]

*

१. 'रसिक उर-हार' (विवरण अनुपलब्ध), पृ० १३।

२. 'आज' (दैनिक, साप्ताहिक-विशेषांक, ६ फरवरी, सन् १९५८ ई०) के '१८५७ के समवर्ती कवि और उनका काव्य' शीर्षक लेख से। सन् १८५७ ई० में, कविता-रचना-काल में, आपकी अवस्था चालीस वर्ष के लगभग रही होगी। अतएव अनुमानतः आपका जन्म-काल सन् १८२० ई. के आसपास माना जा सकता है।—सं०

३. इस नाम की एक पुस्तक भोजपुरी-भाषा में 'तोफाराय' नामक कवि की भी है। इसी पुस्तक में अन्यत्र उनका परिचय देखिए।

४. 'आज' में प्रकाशित उक्त लेख से ही।

रामचरणदास[१]

आपका उपनाम 'हंसकला' था। आपका यह नाम आपके गुरु श्रीरामदास 'नृत्यकला' जी ने रखा था।[२] आपका वास्तविक नाम था 'नागापाठक'।

आप सारन-जिले के 'कसमर' परगने के गंगा-तटस्थ गंगहरा-ग्राम के एक ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे।[३] आप किशोरवस्था में ही विरक्त हो गये। गृहत्यागी-विरागी होकर जब आप वैद्यनाथ-धाम (देवघर) पहुँचे तब ईश्वरीय प्रेरणा से आपको लक्ष्मीपुर की रानी के जगन्नाथ-धाम मंदिर में वैष्णव-भक्त श्रीरामदासजी 'नृत्यकला' के दर्शन हुए। आपकी श्रद्धा-भक्ति से सन्तुष्ट होकर उन्होंने आपको अपना शिष्य बना लिया और उसके बाद ही आप 'रामचरणदास' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। आपने बहुत दिनों तक उनके साथ रहकर सांप्रदायिक ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा धार्मिक विषयों में अच्छी योग्यता प्राप्त करके विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की। जबसे श्रीरामदासजी ने आपको अपने गुड़हट्टा (भागलपुर) के श्रीराम-मंदिर की महन्ती गद्दी देकर श्रीसाकेत-यात्रा की तब से आप बराबर उसी स्थान में रहकर ईश्वर-भजन और साधु-सेवा किया करते थे। आपने अपने अमृतमय उपदेशों से बहुतों को सत्पथ पर लाकर कृतार्थ किया। आपके शिष्यों में प्रमुख थे श्रीसीतारामशरण भगवान प्रसाद 'रूपकला'।[४] वे आपको ही अपना दीक्षागुरु मानते थे।

भागलपुर में आपके स्मारक-स्वरूप आज भी 'श्रीहंसकला-भगवत् संकीर्त्तन-समाज' स्थापित है। सं० १९६९ वि० (सन् १९१२ ई०) की शरद-पूर्णिमा को, लगभग ७९ वर्ष की आयु में, आपने साकेत-यात्रा की।

आपने हिन्दी में एक धार्मिक-पुस्तक 'राममाहात्म्य-चन्द्रिका' लिखी थी।[५] आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले।

❋

१. इसी नाम के एक और कवि १७ वीं शती में हो गये हैं। इनका उपनाम 'जनसेवक' था और वे पटना के निवासी थे। उन्होंने पद्मावत की परम्परा में एक काव्य-ग्रन्थ 'अनुकला' की रचना की थी। उनके विस्तृत परिचय के लिए देखिए—'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ८९।

२. कहते हैं कि घर से विरक्त होकर जब आप श्री वैद्यनाथ-महादेव के दर्शनार्थ वैद्यनाथ-धाम (देवघर) गये तब वहाँ स्वप्न में आपको आज्ञा हुई कि 'झाड़ी' में लक्ष्मीपुर की रानी के जगन्नाथ-मंदिर में श्रीरामदास 'नृत्यकला' नामक वैष्णव महात्मा रहते हैं, उन्हीं की सेवा में जाकर रहो। इसके पश्चात् वैद्यनाथ-धाम में तीन दिनों तक रहकर आप उक्त महात्मा की शरण में पहुँचे। कुछ ही दिनों में आप उनके बड़े कृपापात्र हो गये। आपको शृंगार-भाव का उपासक देखकर उन्होंने आपका नाम 'श्रीसीयसहचरी हंसकला' रख दिया।—देखिए, 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४१८ तथा 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही, प्रथम खण्ड), पृ० ८९।

३. 'श्रीहरिश्चन्द्र-कला' (मासिक, भाग २९, संख्या १), पृ० ३७-४०। सं० १९३८ वि० (सन् १८८१ ई०) में आपने रूपकला जी को दीक्षित किया था। अनुमानतः उस समय आप साठ वर्ष के सन्त रहे होंगे। इस तरह आपका जन्म-काल सन् १८२० ई० के लगभग होना चाहिए।—सं०

४. इनका परिचय प्रस्तुत पुस्तक में ही यथास्थान मुद्रित है।

५. इसका प्रकाशन सन् १९०२ ई० में मुंगेर के श्रीरामाधीन महतो नामक किसी व्यक्ति ने किया था।—देखिए, 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ५८१।

रामरूपदास[1]

आपका जन्म दरभंगा जिले के 'पुण्यपुर' नामक ग्राम मे हुआ था।[2]

आप वल्लभ सम्प्रदाय के एक पहुँचे हुए सन्त थे। कहते हैं कि एक बार एक निर्धन व्यक्ति कुछ आर्थिक सहायता के लिए आपके पास आया। आपने उसे एक पत्र के साथ अपनी पत्नी के पास भेज दिया। पत्र मे उक्त व्यक्ति को बीस रुपये दे देने का आदेश था। आपकी पत्नी ने रुपये रहते हुए भी उस व्यक्ति को निराश वापस कर दिया। इसी बात पर आपके मन मे विरक्ति उत्पन्न हुई और आप गृहत्यागी हो गये।[3] भगवान श्रीकृष्ण में आपकी अपार श्रद्धाभक्ति थी। आप एक आत्मनिष्ठ योगी थे। आपका जीवन लोक-कल्याणकारी था। आपने अनेक स्थानो में भ्रमण करके वैष्णव-धर्म का प्रचार किया। जब आप धर्म प्रचारार्थ भ्रमण मे निकलते थे, तब आपके पीछे सैकड़ों की जमात चलती थी।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में रमता योगी की तरह पर्यटन करते हुए आप दहिया (मुंगेर) आये थे और वहाँ के शाक्तो को समझा-बुझाकर पशु-बलि की प्रथा बन्द करा दी थी। उस समय आप वृद्ध थे। आपका स्वर्गारोहण मुंगेर जिले के ही गंगा-तटस्थ मधुरापुर-ग्राम में, सन् १८७३ ई० के आसपास, हुआ था।

हिन्दी मे आपने अनेक भजनो की रचना की थी। ऐसा कहा जाता है कि आप नित्य नियमपूर्वक पाँच भजनो की रचना करके भगवान श्रीकृष्ण को अर्पित करते थे। आपके भजनो का एक संग्रह 'गोपाल-सागर'[4] के नाम से श्रीवेंकटेश्वर स्टीम-प्रेस, (बम्बई) मे छपा था।

---

१. इस नाम (रामरूप) के एक और भी मिथिला-निवासी कवि का उल्लेख मिलता है, जो 'रसरूप' के नाम से काव्य-रचना करते थे। डॉ० ग्रियर्सन ने मिथिला में रहते समय इनके अनेक गीत संकलित किये थे। कहा नहीं जा सकता कि ये दोनों व्यक्ति (रामरूपदास और रामरूप 'रसरूप') एक ही थे या भिन्न।—देखिए, डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० ३०४।

२. डॉ० लक्ष्मीकान्त राय (चिकित्सा-पदाधिकारी, अस्पताल, दहिया, मुंगेर) से प्राप्त सूचना के आधार पर। उन्हीं के मतानुसार आपका जन्म उन्नीसवीं शती के आरम्भिक वर्षो में ही अर्थात् सन् १८०० से १० ई० के आसपास कभी हुआ था। —सं०

३. वही।

४. इसकी एक जीर्णशीर्ण प्रति श्रीकुमार भारतेन्दुभूषण 'हिमहास' (दहिया, मुंगेर) के पास है।

उदाहरण

(१)

यमुना-तट वंशी बाज रही मन-मोहन रास-रसीले के।
मुरली-धुनि सुनी बाउरी हो गये मनहर रूप रंगीले के।
बिपिन घोर अँधियार एरि रजनी ढूँढत फिरत छबीले के।
घर दुआर परिवार सुख छूटल परि गये भंग अहीरे के।
रामरूप कह दो कृपा करि मिलिहैं हमरा सुअन जसोदे के॥[1]

(२)

हरि हम मूढ मन्द अभिमानी।
सम्पति अवर को देखि जरत उर बिपति निरखि हरखानी।
डोलत फिरत घर-घर कूकुर सम कदहुँ न पेट अघानी।
पर को छिद्र बिलोकत जहँ-तहँ पर-तिय निज करि जानी।
पर अपमान मान नहि कदहुँ दिन-दिन मान मोटानी।
पर-उपकार कदहुँ नहि कीन्हो अपकार सदा जिय जानी।
पतितन कर सरदार-सिरोमनि श्रुति पुरान नहि मानी।
हौ अपराधी अनग जन्म कर हरि तेरो हाथ बिकानी।
रामरूप पाप-सागर महँ बूड़त कर गह सारंगपानी॥[2]

❋

रामसनेही दास[3]

आपका जन्म दरभंगा-जिले के मधुरा-ग्राम में, एक निर्धन परिवार में, हुआ था। जब आप दस वर्ष के हुए, तभी आपके पिता पं० हनुमान दत्त झा का देहान्त हो गया।

---

१. 'श्रीहिमदास' (वही) से प्राप्त।

२. उन्हीं से प्राप्त।

३. आपका परिचय 'आर्यावर्त' (दैनिक, १० मई, सन् १९५९ ई०) में प्रकाशित श्रीयोगेश्वर प्रसाद सिंह के लेख के आधार पर तैयार किया गया है। उसी लेख के लेखक का अनुमान है कि आपका जन्म सन् १८११ ई० के आसपास हुआ होगा। —सं०

बालपन में आपका प्रमुख कार्य अपनी गायों को चराना था। गायें चराते समय भी आप भजन गाते रहते थे। संध्या-समय उक्त कार्य से निवृत्त होकर आप चौपाल में धर्म-चर्चा सुनने में रम जाते थे।

एक दिन एकाएक आपके हृदय मे निर्वेद-भाव का उदय हुआ और आप गृह-त्याग कर अयोध्या चले गये। वहाँ नागा-साधुओं के सत्संग में आपके शरीर एवं मन का स्वस्थ विकास हुआ। इसके पश्चात् विद्योपार्जन के लिए आप काशी पहुँचे। वहाँ आपने साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, ज्यौतिष, धर्म, आयुर्वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया। लगभग तीस वर्ष की अवस्था में, वृन्दावन आदि तीर्थों का पर्यटन करते हुए, आप पुनः अपनी जन्मभूमि को लौट आये। यहाँ श्री-सम्प्रदाय मे दीक्षित होकर आपने संत चण्डीगोस्वामी का शिष्यत्व ग्रहण किया। इसके बाद का आपका जीवन एक संत एवं काव्य-साधक का जीवन है।

कहते हैं, अपुछदास[1], सुदर्शनदास, पंचमदास प्रभृति संतों को काव्य-प्रणयन की प्रेरणा आपसे ही मिली थी। भक्ति के क्षेत्र मे आपके प्रिय शिष्य थे मोहनदास जी।

आप हिन्दी और मैथिली के एक कुशल कवि थे।[2] हिन्दी में आपकी स्फुट-काव्य-रचनाएँ उपलब्ध हैं। आपका निधन लगभग ८७ वर्ष की आयु मे, सन् १६०६ ई० मे, हुआ।[3]

उदाहरण

(१)

सीतापति रामचन्द्र कोशल रघुराई।
बेद बिप्र धेनु संत दुखित सकल जीव-जंत,
मैथिल-नृप ज्ञानवंत बिपति-घटा छाई।

---

१. किंवदन्ती यह है कि अपुछदास ही रामसनेहीदास जी को गुरु समझते थे। किन्तु अन्तःसाक्ष्य के आधार पर रामसनेही दास ही अपुछदासजी के शिष्य रूप में मालूम होते हैं—

"अपूछदास गुरु तब लखे राम कियो जब नेह।
रामसनेही जानि तस सीस धरे पग खेह॥"

—'आर्यावर्त्त' के उसी लेख से।

२. एक समय साधु-सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसमें रामरूपदासजी ने 'फकीर' शब्द का विश्लेषण निरुक्ति-अलकार की सहायता से इस प्रकार किया—

'फ' फटका भवजाल से 'की' करुणा मन माहिं।
रामरूप 'र' ट नाम हरि सो फकीर जग आहि॥

रामसनेहीदास जी कब चूकनेवाले थे। उन्होंने अपने प्रवचन में 'साधु' का विश्लेषण और रूप-निर्धारण इस प्रकार किया—

मन काया अरु वचन ते काहू दूषत नाहिं।
रामसनेही साधु सो रामरूप जग माहिं॥

—वही।

३. वही।

ब्रिटिश राज करत पाप जनगण-बिच बढ़ल दाप,
आबि आब हरहु ताप सत्वर सुखदायी।
सबल सुवन भेल मंद देशक दय फटक फंद,
मूँह कान करै बंद गोरा कटकायी।
कहत 'रामस्नेहिदास' मारहु खण्ड श्रीनिवास,
हरहु त्रास एक आस चरण केरि साईं ॥[1]

(२)

जगत में रामनाम छथि सार।
शिव गणपति आदिम कवि जानथि महिमा हिनक अपार।
मातु-पिता गुरु-मित्र सहोदर पुरजन कुल परिवार।
सभक्यो माया मोहक संगी छथि करु मनहि बिचार॥
अवध जनकपुर की बृन्दावन जाकै हो हरिद्वार।
पुरी प्रयाग वाराणसी में शिव सदिखन इएह उचार।
गणिका गीध गजेन्द्र पापिनी अधम गँवार।
लै लै नाम प्रेम सौं प्रभु के उतरल भवनिधि पार॥
सतयुग जोग जाग त्रेता छल द्वापर दान उदार।
'रामसिनेही' जनहित केवल कलयुग नाम अधार॥[2]

(३)

मानिक मुक्ता नाहि सब, नग करि देखु बिचारि।
उपज 'रामस्नेही' नही, चन्दन सब कल झारि॥
संग महाभारत कियो, पार्थ बीर बलवान।
रामसिनेही प्रभुबिना, ब्याधा मारो बान॥[3]

१. 'आर्यावर्त्त' के उसी लेख से।
२. वही।
३. वही।

रिपुभंजन सिंह

आप जगदीशपुर (शाहाबाद) के पास दलीपपुर-गढ़ के निवासी थे।[१] आपके पिता का नाम था बाबू दयालु सिंह, जो सन् १८५७ ई० के गदर के अमर सेनानी बाबू कुंवर सिंह के सगे छोटे भाई थे।[२] आप अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे।[३] आपके छोटे भाई का नाम था गुमानभंजन सिंह। आपका विवाह रहथुआ (शाहाबाद)-निवासी बाबू निरंजन सिंह की कन्या से हुआ था।[४] कहते हैं, उन्होंने आपको विवाह के अवसर पर तीन लाख रुपये दिये थे—एक लाख कविता-रचना की शिक्षा के लिए, एक लाख कुश्ती लड़ने के लिए और एक लाख शिकार खेलने के लिए। आप स्वयं निःसंतान ही मरे। आपकी विधवा पत्नी बहुत दिनों तक जीती रही। सन् सत्तावन के गदर के बाद आप राज्याधिकारी हुए।[५]

आप एक लम्बे कद के बलिष्ठ जवान,[६] नामी पहलवान और साहसी शिकारी थे।[७] बाबू कुँवर सिंह ने जगदीशपुर मे जो शिवालय सन् १८५६ ई० में बनवाया था,

१. 'बाबू कुँवरसिंह' दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, प्रथम सं०, सन् १७५५ ई०), पृ० १६५-६६।

२. कुँवरसिंह से न पटने के कारण दयालु सिंह ने इजमाल रियासत से अपना हिस्सा निकलवाकर, अपने पिता साहबजादा सिंह के समय में ही, लिखा लिया था। साहबजादा सिंह की मृत्यु के बाद फिर कुँवरसिंह से दयालु सिंह की अनबन जब अधिक बढ़ गई, तब उन्हें जगदीशपुर त्याग देना पड़ा।

३ आपका जन्म अनुमानतः सन् १८२०-३० ई० के आसपास हुआ होगा। सन् १८५६ ई० में बाबू कुँवर सिंह द्वारा स्थापित शिवमूर्त्ति के अरघे का शिलापट्ट बड़ी देर तक थामे रहने के कारण अनुमान होता है कि उस समय आपकी अवस्था कम-से-कम तीस वर्ष की रही होगी। इस हिसाब से आपका जन्मकाल सन् १८२६ ई० अनुमित होता है।—स०

४. "उस बरात में डुमरॉव से महाराजा जयप्रकाश सिंह और जगदीशपुर से बाबू कुँवर सिंह भी गये थे। जो हजूम बरात में हुई थी वह बयान से बाहर है। उसी शादी की वजह से बाबू निरंजन सिंह बरबाद हो गये।"—'तवारिखे उज्जैनिया' (उर्दू, हिस्सा ३), पृ० ११४-१५।

५. "सन् १८५७ ई० के गदर के पहले ही बाबू कुँवर सिंह के एकमात्र पुत्र दलभंजन सिंह मर चुके थे और गदर के जमाने में ही बाँदा (उत्तर-प्रदेश) में पौत्र वीरभंजन सिंह भी मर गये। इसलिए गदर के बाद रिपुभंजन सिंह को गद्दी मिली। डुमरॉव के महाराज महेश्वरबख्श सिंह ने रस्मगद्दी अंजाम फरमाई। बहुत धूमधाम से गद्दी-नशीनी हुई।"—वही।

६. सन् ५७ के गदर के समय भारत-सरकार (अँगरेज वायसराय) ने शाहाबाद के नव-क्रान्तिकारियों की जो हुलिया निकाली थी, उसमें आपके रूप का विवरणात्मक परिचय है।

७. "शेरों के शिकार के लिए दक्खिनी पहाड़ों में बराबर जाया करते थे। एक बार शेर को गोली लगी, वह झपटकर टूट पड़ा तो रिपुभंजन सिंह ने उसके दोनों अगले हाथ (?) पकड़ लिये। आपके साथी गोबरदीन अहीर ने बन्दूक की नाल शेर के मुँह में डाल दी। गुस्से में आकर शेर ने नाल चबा डाली। एक घंटे तक कुश्ती शेर से होती रही। झटका देकर अपने को बचाने की फुर्सत नहीं मिली। वही साथी नाल से लाचार कर बचाव करता रहा। वह साथी भी शेर के नखों से कई जगह घायल हो गया। आखिर आप शेर को पीछे धकेलते पहाड़ की खोह तक ले गये और वहाँ ऐसा झटका दिया कि शेर नीचे खोह में जा गिरा। शेर की कमर टूट गई, वह उठ नहीं सकता था। आप दोनों साथी भी घायल हो गिर पड़े थे, तबतक लोग आ पहुँचे और घर ले आये, दवा-दारू से घर पर फुर्सत हुई। उस साथी को नगद रुपये और खेत इनाम दिये गये।—(वही), पृ० ११४-१५।

जिसको आगे चलकर (सन् १८५८ ई० में) अँगरेजो ने बारूद से उड़ा दिया, उसमें स्थापित होनेवाली शिवमूर्त्ति का अरघावाला शिलापट्ट बहुत भारी था। स्थापना के समय उसे पाँच-छह पहलवान मिलकर उठा सके थे। कहते हैं, आपने अकेले ही उसे उठाकर मंदिर में प्राण-प्रतिष्ठा के स्थान पर रख दिया था।[१] आपको अस्त्र-शस्त्र संचालन का भी अच्छा ज्ञान था तथा आप संगीत के भी आचार्य थे।[२]

कहा जाता है कि सन् सत्तावन के बलवे के पूर्व जब बाबू कुँवर सिंह के दरबार में क्रांति के पक्ष और विपक्ष में दो दल कार्य कर रहे थे, तब आप क्रांति-विरोधी दल के नेता थे। आगे जब खुलकर बलवा हो गया, तब आपने अँगरेजो की सहायता भी की। इस कार्य मे आपने डुमराँव के तत्कालीन महाराज महेश्वरबख्श सिंह का भी सहयोग पाया। आपका यह काम बाबू कुँवर सिंह की मृत्यु के बाद तक चालू रहा। बाबू कुँवर सिंह की जब्त रियासत प्राप्त करने के लिए भी आपने कोई प्रयत्न उठा नही रखा।

आपके पिता का देहान्त बहुत पहले ही हो गया था। उनके देहान्त के पश्चात् आपही अपनी रियासत के कर्त्ता-धर्त्ता हुए। आपकी रियासत लगभग साठ-सत्तर हजार सालाना आमदनी की थी। इसका उपभोग आपने अपने भाई के साथ लगभग १२८३-८४ फसली (सन् १८७५-७६ ई०) तक किया। उसके बाद कर्ज चुकाने और मुकदमे लड़ने मे आपकी सारी रियासत बिक गई[३] और आपकी आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई।[४]

१. "बाबू कुँवर सिंह के भतीजा बाबू रिपुभजन सिंह बड़े ताकतवर और हिम्मत-बहादुर थे। बाबू कुँवर सिंह जगदीशपुर में कुँवरेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाकर विशाल मूर्त्ति की स्थापना कर रहे थे। सब विधियाँ कुँवर सिंह के हाथ से कराई गई'। शिवजी के अरघे में रखने के लिए पत्थर की एक शिला थी, जो सवा गज लम्बी और सवा गज चौड़ी थी और उसके बीच में मूर्त्ति के लिए बड़ा छेद बना हुआ था। उसे ब्राह्मण उठा लाये, पर उसके बहुत भारी होने के कारण वे काँपने लगे, मगर विधि के सम्पन्न होने पर ही वह शिला नीचे अरघे में रखी जा सकती थी। ब्राह्मणों को विवश देख रिपुभंजन सिंह ने उसे थाम लिया और पाव घंटे तक उसे दोनों हाथों पकड़ बगल में लटका लिया, जब सब विधियाँ पूरी हुई' तब होदे (अरघे) में रख दिया। बाबू कुँवर सिंह आदि उपस्थित लोगों को बड़ा अचम्भा हुआ और वे लोग आपको शाबाशी देने लगे।"—'तवारिखे उज्जैनिया' (हिस्सा ३), पृ० ११७-१८।

२. "रिपुभंजन सिंह चित्रकला, काव्यकला, संगीतकला, मल्लविद्या, घुड़सवारी, आखेटकला आदि में बड़े निपुण थे। काले खाँ सवार नामी रामपुरी ने बागगिरी की तालीम दी थी। पिता दयाल सिंह और चाचा अमर सिंह ने भी सवारी-शिकारी सिखाई थी।"—वही, पृ० ११४-१५।

३. बलवे के बाद आप दोनों भाइयों में अनबन शुरू हो गई। सन्तानहीन होने के कारण आप बहुत खर्चीले स्वभाव के थे। अतः छोटे भाई गुमान भजन सिंह आपसे रुष्ट रहा करते थे। मूलतः इसी बात पर आप दोनों में भेद बढ़ता ही गया। रियासत भी कर्ज के बोझ से लदती गई। अन्त में मुकदमेबाजी में सारी रियासत स्वाहा हो गई।—देखिए, 'बाबू कुँवर सिंह' (वही), पृ० १६७ और २०१।

४. आपकी इस परिस्थिति में डुमराँव के उपर्युक्त महाराज राधाप्रसाद सिंह ने तथा जगदीशपुर-रियासत के अँगरेज ठीकेदार श्रीएर्नेस्ट मेलन ने बहुत सहायता की थी। उक्त दोनों व्यक्तियों की ओर से आपको आजीवन एक-एक सौ रुपये मासिक की प्राप्ति होती रही।—सं०

आपके दरबार में विद्वानों और कवियों का आना-जाना बराबर हुआ करता था। आप स्वयं भी हिन्दी, संस्कृत और फारसी के बड़े अच्छे विद्वान्, दर्शन-शास्त्र के पंडित तथा कवि थे। हिन्दी में आपकी कोई पुस्तकाकार रचना नही मिलती, स्फुट काव्य-रचनाएँ भी दुर्लभ हैं।

उदाहरण

जदुकुल बंस चले, रघु वो दिलीप चले,
चले राम रावन अचल जस थापनो।
शिव चले सक्ति चले ब्रह्मा दिग्पाल चले,
चले सेस सहन-फन छंदन अलापनो।
कहे 'रिपुभंजन' कतेक देव-दानव चले,
चले बलि बामन तीन लोकन को नापनो।
जगत के देखे मे लोग सब चले जात,
लोगन के देखे में चलन होइहें आपनो ॥[1]

❋

लक्ष्मीनारायण[2]

आप शाहाबाद-जिले के अख्तियारपुर-ग्राम के निवासी थे।[3] आप गोरखपुर में पुलिस-दारोगा थे। श्रीहनुमान्‌जी के उपासक के रूप में आपकी अच्छी प्रसिद्धि थी। सरकारी नौकरी से अवसर ग्रहण कर स्थायी रूप से आप अख्तियारपुर में ही रहने लगे। वहाँ आपका अधिक समय एक मंदिर में रहकर काव्य-रचना तथा भगवद्भजन करने में ही बीतता था। आपके एक पुत्र का नाम नागेश्वर प्रसाद था। वे भी हिन्दी में कविता-रचना करते थे। बाबू शिवनन्दन सहाय का कहना है कि आपने हनुमान्‌जी के गुण-कीर्त्तन में तिरासी चौपाइयों की एक पुस्तिका रची थी। फारसी-लिपि में लिखी हुई उसकी एक प्रति उन्होंने (बाबू शिवनन्दन सहाय ने) देखी भी थी। आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

---

१. स्व० पं० सरयूपंडा गौड (जगदीशपुर, शाहाबाद) के दिनांक १३-२-५८ के पत्र से।

२. इस नाम के एक और कवि १६वीं शती में मिथिला में हो गये हैं। वे सं० १५८० वि० (सन् १५२३ ई०) के लगभग हिन्दी के कवि अब्दुर्रहीम खानखाना (सन् १५७३-१६१३ ई०) के दरबार में थे। हिन्दी में उनकी दो रचनाएँ मिलती हैं—(१) प्रेमतरंगिनी और (२) 'हनुमानजी का तमाचा'। —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ६८।

३. श्रीशिवनन्दन सहाय (अख्तियारपुर, शाहाबाद) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर। आपके जन्म-काल के सम्बन्ध में अनुमान है कि वह सन् १८३० ई० के आसपास होगा; क्योंकि बाबू शिवनन्दन सहाय ने उन्नीसवीं शती के अन्तिम भाग में उन्हें वयोवृद्ध देखा था।—सं०

लक्ष्मीसखी

आपका वास्तविक नाम 'लक्ष्मीदास' था।

आप सारन-जिले के 'अमनौर' नामक ग्राम के निवासी मुंशी जगमोहनदासजी के पुत्र थे।[१] बाल्यावस्था से ही आपकी बुद्धि किसी सारतत्त्व की खोज में लीन रहती थी। उस समय से ही आप योग-ध्यान में मग्न रहते थे। आपके भाइयों ने आपको सांसारिक बनाने की अनेक चेष्टाएँ कीं, किन्तु असफल रहे। युवा होने पर आपने विवाह भी नही किया और क्रमशः भक्ति-पथ पर अग्रसर होते गये। सांसारिक वस्तुओ से आपने यहाँतक नाता तोड़ लिया था कि शरीर पर वस्त्र भी नही धारण करते थे।

लगभग पचीस-छब्बीस वर्ष की अवस्था मे आपने एक संत श्रीज्ञानीदासजी का शिष्यत्व ग्रहण कर अनेक स्थानो में भ्रमण किया। कहते हैं, इसके पूर्व आप कबीरपंथी थे। श्रीज्ञानीदासजी के साथ विचरण करने के पश्चात् सरभंग-सम्प्रदाय की साधना-पद्धति से आपको विराग हो गया और आपने सखी-सम्प्रदाय के नाम से एक नये पंथ का ही प्रवर्त्तन किया। इस नये पंथ के प्रवर्त्तन के पश्चात् भी प्रायः साठ वर्ष की अवस्था तक आप अपने अनुयायी संत-भक्तो की जमात के साथ तीर्थाटन करते रहे। अन्त में उसका भी परित्याग कर आपने सारन-जिले के राजापट्टी-स्टेशन (एन० ई० आर०) के निकट शालग्रामी-नदी के तट पर 'टेरुआ चँवर' में एक कुटिया[२] बना ली, और उसी में स्थायी रूप से रहकर योग-साधना एवं भगवद्भजन में अपने दिन बिताने लगे। आपने अपने जीवन के शेष सात वर्ष उसी कुटिया में बिताये। इनमें भी अंतिम चार वर्ष आप कुटिया के अन्दर प्रायः समाधिस्थ ही रहे। कहते हैं, इन्ही चार वर्षों में आपने अपनी समस्त रचनाएँ पूरी की थी। आपके शिष्यों में सर्वप्रधान हैं—कामतासखी[३], जिन्हे आपके सम्प्रदाय के प्रधान अधिकारी होने का भी श्रेय प्राप्त है। इनके अतिरिक्त आपके शिष्यो मे दो सज्जन और भी प्रमुख हैं—श्रीप्रदीपसखी और श्रीरघुनाथसखी।

आप सं० १९७० वि० मे, वैशाख शुक्ल ३ मंगलवार (सन् १९१४ ई० की २८वीं अप्रैल) को ७३ वर्ष की आयु में समाधिस्थ हुए।

आपकी अधिकांश रचनाएँ भोजपुरी भाषा में ही हैं। आपकी रचनाओं में निम्नांकित पुस्तकाकार में प्राप्त हैं—अमर-सीढ़ी[४], (२) अमर-कहानी[५], (३) अमर-

१. 'अमर-कहानी' (लक्ष्मीसखी, प्रथम सं०, सन् १९५० ई०), पृ० क (प्रशस्ति) तथा 'अमर-विलास' (वही, प्रथम सं०, सन् १९३५ ई०), पृ० क (भूमिका)।
२. इसमें आपके एक शिष्य महात्मा श्रीजानकीसखीजी निवास करते थे।
३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य है।
४. इसमें आपके लिखे ८५० छन्द संगृहीत हैं।
५. इसमें आपके ७७५ छन्द हैं। इसका प्रकाशन आपके ही प्रमुख शिष्य श्रीप्रदीपसखी (राजवारा, मुजफ्फरपुर) ने १९५० ई० सन् में करवाया था।

विलास[1] और (४) अमर-फरास[2]। इन चारो रचनाओं[3] को सखी-सम्प्रदायवालों ने 'श्रीग्रन्थरामजी' की संज्ञा दी है। आपकी उक्त पुस्तकों के अतिरिक्त होली, ककहरा, कजली चतुरमास, झूमर, सोहर, झूलना आदि पदो के छोटे-छोटे संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं।[4]

उदाहरण

कब लगि सहबे अगिनियाँ के धाहवा, ये सुहागिनि,
लक्ष चौरासी कर धार।
नैया रे डुबेला ना त अगम अथहवा, ये सोहागिनि,
कहिले से कर ना विचार।
सतगुरु ज्ञान के केवट मलहवा, ये सोहागिनि,
संत कर शब्द करुआर।
आपन प्रीतम बसेला सखी जहवाँ, ये सोहागिनि,
सहजे में उतरि लेहु पार।
लछिमी सखी एगो गावे निर्गुनवाँ, ये सोहागिनि,
ना त टूटेला सोऽहं तार।[5]

(२)

लागेला हिरोलवा रे अमरपुर में झुलेला संत सुजान,
चलु सखियन सुन्दर बर देखे खोलि लेहु गगन पेहान।
येह पार गंगा ओह पार जमुना बीचे-बीचे सुन्दर भान,
चारु ओर उगेला जगमग तारा झलकेला सुन्दर चान।

---

१. इसमें आपके लिखे ८७५ छन्द सुरक्षित हैं। इसका प्रकाशन श्रीजगदेवराम अगम ने सन् १९३५ ई० में किया था।

२. इसमें आपके लिखे ९८५ छन्द हैं। इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका है। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित ग्रन्थ-अनुसन्धान-विभाग में इसकी एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। परिषद् के उक्त विभाग की ओर से इसके प्रकाशन की व्यवस्था हो रही है। —सं०

३. सखीमठ (छपरा) में इन चारों पुस्तकों की मूल प्रतियाँ सुरक्षित हैं। वहाँ इनकी नित्य आरती होती है और पौष-पूर्णिमा के दिन इनकी पूजा बड़ी धूमधाम से की जाती है। —श्रीवृन्दावनविहारी (शिक्षक, टाउन स्कूल, आरा) के १० जून, सन् १९५५ ई० के पत्र से।

४. 'साहित्य' (वही, वर्ष ७, अंक ४, जनवरी, सन् १९५७ ई०), पृ० ९५। इस प्रकार का एक संग्रह सीवान (सारन) के बिहार प्रेस से श्रीरघुराज नन्दन सखी ने और दूसरा छपरा के श्रीकामता प्रेस से श्रीशुकदेव नारायण, मोख्तार ने प्रकाशित कराया है। —सं०

५. 'अमर-कहानी' (वही), पृ० ब (प्रशस्ति)।

लछमी सखी के सुन्दर पियवा मिलि गइले पुरुष पुरान,
लागेला हिरोलवा रे अवधपुर जे झुलेला राम नरेस।
चलु सखी चलु अब देखन पियवा के नीके तरी बाँधि-बाँधि केस,
एक ओर सीया धनी एक ओर सखिया बीच में बइठेला अवधेस।
सोने कर बरहा रूपन कर पाटी झिलुहा झुलावेला सेस,
लछिमि सखी के सुन्दर पियवा गुरुजी दिहले उपदेस।[1]

(३)

अब लागल ए सखी मेघ गरजे, चलु अब पियाजी के देश हे,
ओहिरे देशवा में जगमग जोती गुरुजी दिहले उपदेश हे।
गगन गोफा में एगो सुन्दर मूरत देखत लागेला परमेश हे,
रूप अनूप छबि बरनि ना जाला जनु कोटिन उगेला दिनेश हे।
उगेला घाम ताहाँ आठो पहारा माया मोह फाटेला कुहेस हे,
जनम मरन कर छुटेला अनेसा जे पुरुष मिलेला अवधेश हे।
चारु ओर हीरा लाल के बाती हल-हल बरेले हमेश हे,
उठेला गगन घनघोर महाधुनी अमृत भरेला जलेश हे।
लछमी सखी के सुन्दर पियवा सुनि लेहु पिया के सनेस हे,
मानुष जनम के चूकल पियावा फेरू नाही लगिहें उदेस हे।[2]

(४)

बरिसेला गगन भिजेला मोरा सारी कैसे चलों दसम दुआर हे,
भेजि देहु ए पिया डोलिया कहरिया एगो सुन्दर सबुजी ओहार हे।
आव-आवऽ ए मोरा सखिया सलेहर मिलि-जुलि कर ना सिंगार हे,
अबकी के जावना फेरु नहीं आवना करि लेहु भेंट अँकवार हे।
हलबल दलबल चलेला कँहरवा जाई के लागेला दुआर हे,
देखलों मैं ए सखी सुन्दर पियवा खोलिं के बइठेला केंवार हे।

---

२. 'भोजपुरी के कवि और काव्य (वही), पृ० १३३।
१. 'भजन-संग्रह' (वही, प्रथम सं०, सन् १९५० ई०), पृ० १।

रूप अनूप कहां कहों सखिया जनु कोटिन चन्द्र उजियार हे,
हाथावा में लिहले बान सरासन भंजन भूमि भार हे।
लछमी सखी के सुन्दर पियवा भगत हेत अवतार हे,
अबकी के जनम सुधारि लेहु सखिया ना त होइबे कुकुर सियार हे।[१]

(५)

उठु सखी उठु चलु अमर नगरिया।
सुख के सागर सखी भरिले गगरिया,
सतगुरु हमरो मिलले धरहरिया।
आरे तोरा भले नीक लागेला जहरिया,
जे छोरत बने ना दुइ दमरि चमरिया।
छोरि देहु साक पोसाक ओढ़िले कमरिया,
आरे का तोरे आँख में लागल बा जमरिया।
लछिमी सखी बान्हि लेहु गेंठी में समरिया,
झरफर पेन्हि लेहु चुमुकी चुनरिया।[२]

*

लालबाबू

आप भागलपुर-जिले में गोपालपुर नामक स्थान के निवासी थे।[१] आपने पटेढ़ी (सारन) के साहित्यिक रईस बाबू नगनारायण सिंह के आश्रय में रहकर काव्य-रचना की थी।

उदाहरण

नव-गुन-निधान नग ईसन उदार नृप।
कौसल-कला के गेह नाम समुदाई है॥
लहि सतसंग मतिमन्द बहु गुनि भयो।
मलयाचल गन्ध गुन चन्दन सुहाई है॥

२. 'भजन-संग्रह' (वही), पृ० ४।
३. 'अमर-विलास' (वही), पृ० ३।

बिरद बड़ाई जस कीरति किरन 'लाल'।
उदयाचल भानु सब लोक-सुखदाई है॥
बुद्धि वो विवेक गुन सील मरजाद देखि।
कोविद कबीन्द्र बुद्धि अस्ताचल धाई है॥[1]

※

विजयगोविन्द सिंह

आप पूर्णिया-जिले के 'फरकिया-स्टेट' के मालिक और श्रोत्रिय मैथिल ब्राह्मण थे। आपके पिता 'भैयाजी' नाम से प्रसिद्ध थे। कहते हैं, सन् १८५७ ई० की लड़ाई में अँगरेजों ने आपकी रियासत से एक करोड़ रुपया कर्ज लिया था।[2] हिन्दी में आपने स्फुट काव्य-रचनाएँ की थीं। 'दिल्लीनामा'[3] नाम की आपकी एक पुस्तक का नाम सुना गया है, पर आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।[4]

※

श्यामसुन्दर

आप बनैली (पूर्णिया) के राजा वेदानन्द[5] सिंह के दरबार में रहते थे।[6] कहते हैं राजा वेदानन्द सिंह के ज्येष्ठ कुमार श्रीलीलानन्द सिंह[7] ने जब अपने दरबार के कवि गोपी-

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित पोथी 'दुर्गा-प्रेम-तरंगिणी' से। ये पंक्तियाँ बाबू नगनारायण सिंह की प्रशंसा में लिखित हैं। बाबू नगनारायण सिंह का परिचय प्रस्तुत पुस्तक में ही यथास्थान प्रकाशित है। वे सन् १८७६ ई० में, वृद्धावस्था में, स्वर्गीय हुए थे। उनके दरबारी कवि की अवस्था उनके समय में ४०-५० वर्ष की रही होगी और इस आधार पर अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८३०-४० ई० के अन्तर्गत हुआ होगा।—सं०

२. कहते हैं कि इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति राज-पुस्तकालय, दरभंगा में सुरक्षित है।

३. उस समय आप ४०-५० वर्ष के होंगे, अतः आपका जन्म-काल सन् १८०७-१७ ई० के बीच अनुमित है।

४. आपकी रियासत का मैनेजर 'पामर' नामक एक अँगरेज था। किंवदंती है कि उसकी दगाबाजी से रियासत के नीलाम होने पर आपने एक कविता बनाई थी, जिसका अन्तिम अंश था—'पामर पामरता दिखलाई।' फिर अपने विषय में भी आपने लिखा था—

जन्म भये दारिद्र कुल, पाछे नृपति कहाय।
फिर पाछे दारिद्र भो, बिधिगति कही न जाय॥—सं०

५. इनका परिचय 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही, पृ० १६६) में देखिए। सन् १७७६ ई० में इनका देहान्त हुआ था। इनके पुत्र राजा लीलानन्द सिंह (पृ० ५३-८३ ई०) के दरबार में भी आप रहे। इस आधार पर अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८०१-१० ई० के आसपास हुआ होगा।—सं०

६. 'सरस्वती' (मासिक, मई, सन् १९२६ ई०, भाग २७, खण्ड १, संख्या ४), पृ० ६२६-२७।

७ इनका समय सन् १८५३-८३ ई० है। इनके पिता के दरबार में भी आप रह चुके थे। दरबारी जीवन में आपकी अवस्था कम-से-कम चालीस वर्ष की रही होगी। इसी आधार पर आपका जन्म-काल अनुमित है। दूसरे आश्रयदाता के समय में आप वयोवृद्ध रहे होंगे।—सं०

महाराज की काव्य-रचना पर प्रसन्न होकर उन्हे दानस्वरूप एक हाथी दिया था,[1] तब आपने अपने आश्रयदाता से निम्नांकित पंक्तियाँ निवेदित की थी—

अहो हंस-अवतंस-मणि, यह अचरज मोहि भान।
गोपी हाथी पै चढे, पैदल सुन्दर श्याम ॥[2]

आपकी इस उक्ति पर आपके आश्रयदाता बहुत प्रसन्न हुए और आपको भी पुरस्कार-स्वरूप एक हाथी दिया। आपकी रचना[3] का कोई अन्य उदाहरण नही मिला।

❋

श्यामसेवक मिश्र

आप शाहाबाद-जिले के सूर्यपुराधीश राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह के दरबारी कवि थे।[4] आप राजा साहब के जीवन के अंतिम प्रहर तक उनके दरबार मे रहे। कहते हैं, उनके दरबार मे आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ सामयिक गीतो के रूप मे आज भी उपलब्ध हैं।

१. कुछ लोगों का कथन है कि गोपी महाराज को दान-स्वरूप हाथी राजा वेदानन्दसिंह ने अपने ज्येष्ठ कुमार श्रीलीलानन्द सिंह के जन्मोत्सव के अवसर पर दिया था।—देखिए, 'सरस्वती' (वही), पृ० ६२६-२७।

२. इस दोहे का पाठान्तर भी मिलता है—

महाराज-दरबार मैं, एक अचरज अभिराम।
गोपी तो हाथी चढे, पैदल सुन्दर श्याम ॥—देखिए, वही।

३. "श्रीभगवान पुस्तकालय (भागलपुर) में भाट कवियों की रचनाओं का अच्छा संग्रह है। इन भाट कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि प० श्रीश्यामसुन्दर हो गये हैं, जो भोजराज कवीश्वर के आत्मज और भागलपुर नगर के उत्तर गंगापार बिहपुर-अंचल के अन्तर्गत मिल्की ग्रामवासी थे। उनका संबंध मिल्की के चौबे-दरबार में था। चौबे-परिवार इस अंचल का एक सम्भ्रान्त जमीन्दार-परिवार माना जाता था। उसी परिवार के शिक्षाप्रेमी पं० श्रीभगवानप्रसाद चौबेजी ने सन् १६१३ ई० में भागलपुर-नगर में भगवान पुस्तकालय की स्थापना की और इन कवियों की रचनाओं को पुस्तकालय में संकलित करवाया। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के अनुसन्धायक श्रीरामनारायण शास्त्री ने उनके एक ग्रंथ 'गंगालहरी' का रचना-काल सं० १६२२ वि० लिपिकाल सं० १६६५ वि० मानते हुए उसे हिन्दी की मौलिक रचना कहा है। कविवर श्यामसुन्दर की ही एक प्रमुख पुस्तक 'चित्रकाव्यम्' का उल्लेख करते हुए शास्त्रीजी ने लिखा है—"इस जिल्द में अन्य अनेक कवियों की रचना है, जो भागलपुर के कवि हो गये हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।" इस काव्य का रचना-काल सं० १६४२ वि० है। इन भाट कवियों का मूल स्थान उत्तरप्रदेश एवं पंजाब था, जहाँ से आकर ये लोग मिल्की दरबार के आश्रम में बस गये। श्यामसुन्दर कवि की अन्य दो रचनाएँ 'माधवेन्द्रप्रकाश' एवं 'फतहनामा' के संबंध में शास्त्रीजीका मत है कि ये ग्रन्थ कवि ने अपने आश्रयदाता राजा माधवेन्द्र के जीवन के संबंध में लिखे हैं। ग्रंथ के अंत में एक चित्र भी है। अपने इन ग्रंथों का लिपिकार ग्रंथकार स्वयं है।" —देखिए, 'मुरारका-महाविद्यालय, भागलपुर पत्रिका' (सन् १६६० ई०) में प्रकाशित प्रो० बेचन, एम्० ए० का लेख 'हिन्दी-साहित्य को भागलपुर की देन' द्रष्टव्य।

४. प० जगदीश शुक्ल (संस्कृत-हिन्दी-अध्यापक, राज हाइ-स्कूल, सूर्यपुरा) से प्राप्त सामग्री के आधार पर। आपके आश्रयदाता राजासाहब का राज्य-काल उन्नीसवीं शती का अन्तिम चरण था। उनका देहान्त सन् १६०३ ई० में हुआ था। उनके दरबार में रहते समय आपकी अवस्था पचास वर्ष से कम न होगी। अतः, अनुमान है कि आपका जन्म सन् १८४०-५० ई० के लगभग हुआ होगा।—सं०

उदाहरण

(१)

पिचकी मति मारो पैयाँ परूँ।
नाहक ही बदनाम होऊँगी, गाँव चवाई हाय डरूँ ॥
गहो न लाल गैल में बहियाँ, एती अरज कर जोरि करूँ।
'सेवक स्याम' गुलाल मलो जनि, लखि लैहैं कोउ लाज मरूँ ॥[1]

(२)

काहे री डारति आँखिन ओट अबीर।
देखि होत पूनो दुख बौरी उठति करेजे पीर।
ले यह अतर डारि होरी में लगत हिये ज्यों तीर ॥
'सेवक स्याम' बिना नहि भावत बोर सुरँग रँग चीर ॥[2]

※

शिवप्रसाद

आप 'कवीश्वर' के नाम से प्रसिद्ध थे।[3]

आप गया-निवासी श्रीवास्तव-कायस्थ थे। आपके पुत्र देवीशरण भी हिन्दी के कवि हो गये हैं। आपने बहुआर-चौरा (गया)-निवासी बाबू गंगाविष्णु कायस्थ के लिए, रामभक्ति-सम्बन्धी अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं।[4] सन् १८८४ ई० के लगभग आप दरभंगा-राज के दीवान हुए और जीवन के अन्त तक वहीं रहे।

आपकी गणना प्रसिद्ध रामभक्तों में होती थी। रामभक्ति-सम्बन्धी कई मौलिक-ग्रंथ[5] आपने लिखे हैं, जिनमें (१) 'सत-छप्पै-रामायण', (२) 'नन्दनन्दन-हरछंद-रामायण', (३) 'सत-साहिनी-छंद-रामायण', (४) 'सचित्र दोहावली-रामायण', (५) 'सतहारि-गीत-छंद-रामायण', (६) 'सत सोरठा-रामायण,' (७) 'अनुष्टुप-रामायण,' (८) 'पंचपदावली-रामायण,' (९) 'हरिहरात्मक-हरिवंशपुराण' आदि प्रमुख हैं।[6] स्फुट रचना के रूप में आपकी बहुत-सी समस्या-पूर्त्तियाँ भी मिलती हैं।

---

१. पं० जगदीश शुक्ल (वहीं) से प्राप्त.

२. वही।

३. अनुमान है कि आपका जन्म सन् १८४९-५० ई० के लगभग हुआ था। 'हिन्दी-साहित्य को बिहार की देन' (कामेश्वर शर्मा, प्रथम सं०, सं० २०१२ वि०), पृ० १६०।

४. ये सभी ग्रन्थ मन्नूलाल-पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित हैं।

५. इन ग्रन्थों के विवरणात्मक परिचय के लिए देखिए, 'साहित्य' (त्रैमासिक, वर्ष ४, अंक १ और ३, अप्रैल और अक्टूबर, सन् १९५३ ई०), क्रमशः पृ० ५७-६६ तथा ८७-९८।

६. बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'गत पचास वर्षों में बिहार में हिन्दी की दशा' शीर्षक अपने लेख में 'लक्ष्मीश्वर-भूषण' नामक आपके एक और ग्रन्थ की भी चर्चा की है।—देखिए, 'साहित्य-पत्रिका' (खण्ड ८, सं० १०, जनवरी, सन् १९१४ ई०), पृ० १४।

उदाहरण

(१)

सुनि सुनि बंसी तान सिगरी सिमिटि आईं,
करिकै सुमति रासमंडल अखंड की।
परम सुजान तान लेती गान केती,
करि केतिन के छाई छबि मदन प्रचंड की।
मध्य मंडली में कियो श्यामै अभिरामै,
बामै श्रीसिव सुकविता को उपमा उदंड की।
निखिल निखंड घनमंडलहि घेरिलियो,
मानों बाँधि मंडल मारीचै मारतंड की।[1]

(२)

पावक की लपटें लहरें जे उड़ावत,
तेई अबीर की झोरी।
बीरन के तन तें बहै सोनित,
सोई चलैं पिचका चहुँ ओरी।
हाँक सुने रजनीचर भाजत,
धूम धमारन की बरजोरी।
मानहुँ श्री हनुमन्त बली गढ़,
लंक के बीच में खेलत होरी।[2]

(३)

घूँघट के पट बाहर बैन,
कढ़ैन कपोलन ते हँसी जाकी।
भौन के बाहर गौन करै,
नहिं पाँव धरै रुचि राखि पिया की।

---

१. श्रीरामनारायण शास्त्री (अनुसंधायक, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्) प्राप्त।

२ उन्हीं से प्राप्त। यह रचना कानपुर रसिक-सभा के मासिक-पत्र 'रसिकमित्र' (खण्ड १, सं० ६, सन् १८९३ ई०) में भी छपी थी।

श्री शिव सील सुभायन सों,
छबि छाजति सुन्दरि ज्यों रतिया की।
संभु-तिया की सिया की सिखी,
मति रीति सु याको लखी सुकिया की।[1]

(४)

तेरी बात मानत है लोग औ लुगाई सबै,
कौन दुख तोको भयो शिशिर जवाई मैं।
सुतनु अरोग कछू रोग न दिखात होय,
रोग जो सँजोग करों तुरत दवाई मैं।
'श्रीशिव' सुकवि रूप लखि-लखि तेरो,
आजु पाई लघुताई कंजकली समताई मैं।
कंत को निरन्तर तिहारे पास बास रहे,
तऊ तू उदास भयो बसंत की अवाई मैं।[2]

❋

शिवबख्श मिश्र

आप गया-जिले के बेलखरा नामक स्थान के निवासी थे।[3] आपके भ्रातृष्पुत्र बालगोविन्द मिश्र[4] 'कमलेश' संस्कृत और हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तथा भारतेन्दुजी के सहपाठी-मित्र थे।

आपके गुरु थे काशी के स्वनामधन्य विद्वान् श्रीरामनिरंजन स्वामी। आप टिकारी-राज (गया) के प्रधान राज-पंडित थे। आपकी गणना अपने समय के धुरंधर विद्वानों में होती थी। कहते हैं, धर्मशास्त्र-सबंधी लगभग पन्द्रह हजार पोथियाँ लिख-लिखवा-कर आपने अपने संग्रहालय में एकत्र की थी। संस्कृत-हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू-भाषा का भी आपको अच्छा ज्ञान था। ज्यौतिषशास्त्र और धर्मशास्त्र के आप प्रकाण्ड पण्डित माने जाते थे। उक्त तीनों भाषाओं में आपकी रचनाएँ हैं। हिन्दी में आपने स्फुट कविताएँ लिखी थी, जो आज उपलब्ध नहीं होती। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

❋

१. 'समस्यापूर्त्ति' (पटना, अप्रैल, सन् १८९७ ई०), पृ० ३।
२. वही, (जनवरी, सन् १८९८ ई०), पृ० ३।
३. 'गया के लेखक और कवि' (वही), पृ० १७५।
४. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य। इनके परिचय की पाद-टिप्पणी में भी आपका उल्लेख है। ये भारतेन्दु-कालीन थे। इनके पितृव्य (आप) इनसे कुछ बड़े ही होंगे। इस हिसाब से आपका जन्म-काल सन् १८२० ई० के लगभग अनुमित है।—सं०

सोहनलाल

आपको अँगरेजो की ओर से 'रायसाहब' की उपाधि प्राप्त थी।

आप पटना के निवासी थे। जब आप पटना-नार्मल स्कूल के हेडमास्टर थे, तब सरकारी 'हिन्दी-गजट' का सम्पादन करते थे। पीछे जब गजट का कार्यालय पटना से कलकत्ता चला गया,[१] तब आप भी वही चले गये। कुछ काल के अनन्तर जब उक्त गजट का प्रकाशन बन्द हो गया, तब आप अनुवादक के पद पर काम करने लगे। सन् १८८७ ई० मे आप उसी पद पर काम कर रहे थे।[२]

आपकी गणना अच्छे विद्वानों में होती थी। अँगरेजी पर आपका पर्याप्त अधिकार था, हिन्दी के तो आप लेखक ही थे। आपकी हिन्दी सरल होने के कारण बहुत लोकप्रिय हुई। अपनी कृतियों को सरल बनाने की धुन में आप प्रायः नये शब्दों की रचना कर डालते थे।[३]

खड़ीबोली के उन्नायक श्रीअयोध्याप्रसाद खत्री ने आपको निर्विरोध हिन्दी की 'मुंशी-शैली' का जनक बतलाया है। उनके मतानुसार आपने विज्ञान के लोकप्रिय पारिभाषिक शब्दों का निर्माण संस्कृत, अरबी या अन्य पुरानी भाषाओं के मूल से न करके स्वतंत्र रूप से मुंशी-शैली में किया था।[४] हिन्दी मे आपकी विज्ञान-सम्बन्धी तीन पुस्तके प्रकाशित हुई थी—(१) दौत-बिजली-बल[५], (२) रगड़-बिजली-बल[६] और (३) वायुविद्या[७]।

उदाहरण

(१)

थी एक पतङ्ग चाँद वाली,
सज-धज वह रखती थी बस निराली।

---

१. 'पुस्तक-भण्डार रजतजयन्तीस्मारक-ग्रंथ' (वही), पृ० ५७५।

२. सन् १८८७ ई० में सरकारी नौकरी करते समय आप कम-से-कम चालीस वर्ष के रहे होंगे। अतः, अनुमान है कि आपका जन्म सन् १८३०-४० ई० के मध्य हुआ होगा। —सं०

३. —देखिए, बाबू शिवनन्दन सहाय लिखित 'गत पचास वर्षों में बिहार में हिन्दी की दशा' शीर्षक लेख —'साहित्य-पत्रिका' (वही), पृ० २८-२९।

४. "Popular Scientific terms, independent of Arabic, Sanskrit or any classic origin have also been coined in the Munshi's style by Rai Sohan Lall the late very able Headmaster of Patna Normal School and now translator to the Government of Bengal, who may without opposition be styled as the father of the Munshi Style. Thus the style is becoming complete Language in itself"

—'खडी बोली का पद्य' (पहला-भाग) की भूमिका—देखिए, 'अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रंथ', (शिवपूजनसहाय तथा नलिनविलोचन शर्मा, प्रथम स०, सन् १९६० ई०), पृ० ११२।

५. इसका प्रकाशन सन् १८७१ ई० में स्वय लेखक ने किया था।

६. इसका प्रकाशन सन् १८७१ ई० में ही स्वयं लेखक ने किया था।

७. —देखिए, बाबू शिवनन्दन सहाय का सीतामढ़ी-सम्मेलन का भाषण।

—'बिहार की साहित्यिक प्रगति', पृ० ६५।

कुछ कन्नी झुकाके झोंके खाके,
ऊपर को उठी वह सिर हिलाके।
ले ढील बहुत सी शह जो पाई,
आकाश चढी वह सिर पै आई।
देख अपना उड़ना उठान भूली,
उड़ने की जो डोर थी सो भूली।
वह ऊँची जगह जो हाथ आई,
यह बात वह अपने मन में लाई।
है आज जहान में कौन ऐसा,
ऊँचा जो चढ़ा हो मेरे जैसा।
जो कुछ है बस पेरे तले है,
आलम है कि मेरा मुँह तके है।
यों कहती हुई वह सिर पै चढ़के,
औ, ऊँची उठी हवा में भरके।
टूटी जो कहीं वह डोर .जाके,
नीचे को चली वह सिर झुकाके।
चकराती, तड़पती, फिरफिराती,
गैरत में चली वह गोते खाती।
पहुँची वह कहीं जमीन पै जाके,
गारत हुई दम में लुट-लुटाके।
पुरे हैं जो भारी है भरे है,
हिलते नही, एक जा खड़े है।
हलके को हवा लगी उड़ेगा,
उड़ता है सो जानिये गिरेगा।[1]

१. 'अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रंथ' (वही), पृ० १२५-२६।

(२)

वही चाँद पेड़ों के पीछे उगा,
उठा लाल सा जगमगाता हुआ।
वह किरने जो फूटी अजब लाल लाल,
था पेड़ों में एक जगमगाहट का जाल।
उठा चाँद कुछ एक अनोखा-सा ढंग,
वह दम दम में उसका बदलता था रंग।
गुलाबी-सा जाड़ा वह ठंढी हवा।
वह नीलम-सा आकास निखरा हुआ।
वह चढ़ता था चाँद और खिलता था नूर,
हुआ जगमगाहट के जोबन का चूर।
हर एक तरफ नूर एक बरसने लगा,
हर एक फूल पत्ता चमकने लगा।
कनी रत्न की वह दमकती हुई,
वह चाँदी-सी मट्टी चमकती हुई।
जमीं पर बिछी नूर की चाँदनी,
अनोखी अदा एक जमी की बनी।[1]

*

हरनाथ सहाय

आप सारन-जिले के निवासी थे। छपरा के ठाकुर-कवि आपके अन्तरंग मित्रों मे थे।[2] आपने हिन्दी में 'काशीखण्ड' नामक एक पुस्तक की रचना की थी। आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

*

---

१. 'अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रंथ' (वही), पृ० १२८-२६।

२. 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० १६६। ठाकुर कवि का जन्म सं० १८६० वि० (सन् १८०३ ई०) के आस-पास में हुआ था। आप उनके समकालीन थे। अत:, आपका जन्म भी उसी समय के लगभग हुआ होगा। इनका परिचय अन्यत्र देखें।—सं०

हरनारायण दास

आप पटना जिले के इस्लामपुर नामक ग्राम के नानकशाही गुरुद्वारे में निवास करते थे। बहुत दिनों तक बाबू रामदीन सिंहजी ने अपने खड्गविलास प्रेस मे भी आपको रखा था।[१] प्रेस में रामायण-सम्बन्धी सारे प्रकाशन-कार्य आपकी ही देख-रेख में होते थे।

आप एक नानकपंथी उदासी-संप्रदाय के साधु थे। आप बड़े ही मंजुभाषी और उदारचेता थे। किसी भी धर्म से आपका कोई विरोध नही था। कितने ही मुसलमान भी आपसे शिक्षा-ग्रहण करने आते थे। आपका व्याख्यान सुनने के लिए लोग बड़े आग्रह से आपको बहुत दूर तक ले जाया करते थे। भाषण करने की कला भी आपमें अद्भुत थी। कथावाचक के रूप में आप श्रोताओं को मुग्ध कर देते थे। कथा बाँचने में, आपके अर्थ अपूर्व और आशय गूढ तथा गंभीर हुआ करते थे। आप 'रामचरितमानस' के बड़े अच्छे ज्ञाता और वक्ता थे। आपने 'मानस' की एक टीका भी तैयार की थी, जो आपके देहावसान के बाद किसी के द्वारा गुम कर दी गई। उसके गायब होने से बाबू रामदीन सिंह अत्यन्त मर्माहत हुए थे। उस टीका के प्रकाशित न होने का दु:ख उन्हे बराबर खलता रहा।[२]

आप कवि भी थे। विशेषकर आप लावनियाँ बनाते और चंग पर गाते थे। श्रीवृन्दावन-निवासी नारायणस्वामी की दोहावली पर आपने कुछ कुण्डलियाँ भी बनाई थी।[३] आपका देहान्त सन् १९०३ ई० में, मोगलपुरा मुहल्ले (पटना) मे, वृद्धावस्था में हुआ था।[४] आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले।

*

हरसहाय भट्ट

आप पटना के निवासी थे।[५] आपके गुरु थे गाजीपुर-निवासी जीवनदासजी। हिन्दी में आपकी लिखी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई थी—(१) रामरत्नावली[६] और (२) रामरहस्य। आपका रचना-काल सं० १८८५ वि० (सन १८२८ ई०) है।[७] आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

*

१. 'हरिऔध अभिनन्दन-ग्रन्थ' (वही), पृ० ५२८-२९।

२. वही।

३. कहते हैं, इसकी प्रति खड्गविलास प्रेस (पटना) में सुरक्षित है।

४. सन् १९०३ ई० में, आप वृद्धावस्था में मरे थे। साधु-सन्तों की आयु का ध्यान रखते हुए, अनुमान होता है कि आपका जन्म सन् १८३० ई० के आसपास हुआ होगा।

५. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, द्वितीय-भाग, स० १९८५ वि०), पृ० ६४३।—सं०

६. वही। आपके रचना-काल के आधार पर ज्ञात होता है कि आपका जन्म सन् १८०२ ई० के लगभग हुआ होगा।—सं०

७. यह पुस्तक १५२ पृष्ठों की है। —वही।

हरिचरणदास[1]

आप पूर्णिया-जिले के 'कसबा' नामक स्थान के निवासी अग्रहरि-वैश्य थे।[2] आपके पिता का नाम था बेचू साह। आपकी शिक्षा मिड्ल-कक्षा तक हुई थी। मिड्ल पास करने के पश्चात् आप पुलिस-विभाग मे हवलदार नियुक्त हुए। किन्तु, इस पद को अस्वीकृत कर आप मधुबनी के एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापन-कार्य करने लगे। इस पद पर भी आप बहुत दिनो तक रहे। कुछ ही दिनों मे आपको संसार से स्वभावतः विरक्ति हो गई।[3]

आपका विवाह फारबिसगंज-सबडिविजन (पूर्णिया) के 'हरिपुर' नामक ग्राम में हुआ था। उक्त ग्राम के दक्षिण 'मुसहरि' नामक ग्राम मे एक महंत गंगादास का अखाड़ा था, जिसमे आप नित्य जाया करते थे। आगे चलकर आप महन्त गंगादासजी से ऐसे प्रभावित हुए कि आपने उन्ही से दीक्षा ले ली और स्वयं भी कबीरपंथी मठाधीश हो गये।

आपने अपने जीवन-काल में कई बार कबीर-पंथियों की सभा आयोजित की थी। वर्ष में एक दिन 'अनन्त-चतुर्दशी' को, एक समारोह 'आरती चौक' होता था, जिसमे नये लोग दीक्षित होते थे। आपके संबंध की अनेक चामत्कारिक घटनाएँ सुनी जाती हैं।

आपकी दो काव्य-रचनाएँ थी—(१) हरिचरणामृत-सतसई[4] और (२) चिंतामणि। इनमे दूसरी का आजकल कोई पता नही चलता। आप सन् १९४३ ई० की २३वी दिसम्बर को, १०० वर्ष की आयु में, परमधाम सिधारे।[5]

उदाहरण

(१)

भाग उदय बिन मिले नहि, सतगुरु से सत नाम।
नाम मिलावत रूप हों, तब पावहिं विश्राम॥

---

१. इस नाम के एक और साहित्यकार १८वीं शती में हो गये हैं, जो सारन-जिले के चैनपुर नामक ग्राम के निवासी थे। वे एक सफल कवि थे और उन्होंने हिन्दी में कई ग्रंथों की रचना भी की थी। उनके परिचय के लिए देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १७६-७७।—सं०

२. श्रीतारामोहन प्रसाद (कसबा, पूर्णियाँ) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर। इनके अनुसार आपका जन्म सन् १८४३ ई० के लगभग हुआ था। —सं०

३. कुछ लोगों के मतानुसार आपने किसी से कुछ रुपये कर्ज लिये थे, जिसे चुकाने का कोई उपाय न देखकर आपने सन्यास ले लिया। किन्तु, आपके पुत्र रोशनदास ने इस बात का खंडन किया है। उनका कहना है कि वस्तुत. उस समय आपके पास दो सौ बीघे जमीन थी। यदि आपको कर्ज होता, तो जमीन बेचकर आप उससे मुक्त हो सकते थे। उनके कथनानुसार आपकी प्रवृत्ति ही विरक्ति की ओर थी, जिसके परिणामस्वरूप आप सन्यासी हुए। —सं०

४. इसे सं० १९८१ वि० (सन् १९२४ ई०) में अधिकारी सत्यनामदासजी ने छपवाकर प्रकाशित किया था।

५. आपकी इच्छानुसार आपकी समाधि आपके अखाड़े में ही बनाई गई, जो आज भी वर्त्तमान है।

(२)

अर्थ धर्म्म अरु काम सुख, पापिहु के घर होय।
सन्त-समागम नाम-धन, दुरलभ नर को दोय ॥[१]

(३)

चतुराई चूल्हे पड़े, वाहि न मिलिहें राम।
सत्य नाम रटता रहे, तब सरिहै सब काम ॥[२]

(४)

जो घट प्रेम न संचरे, नहीं नाम का ध्यान।
साधुन सेवा नाहिं घर, जीवत जानु मसान ॥[३]

(५)

रटत-रटत रसना थके, प्यासे कण्ठ सुखाय।
प्रेम न छाड़े पपिहरा, नित नव बढ़े सवाय ॥[४]

(६)

सुमिरन से सुधि यों करो, जैसे जल अरु मीन।
एक पलक बिछुरे नही, राति दिवस लौ-लीन ॥[५]

(७)

गुप्त जाप सुमिरन करै, बाहर लखै न कोय।
ओठ न फरकत देखिये, अन्दर राखो गोय ॥[६]

(८)

सुमिरन सेवन बिना नर, होन चाहे भव पार।
हरिचरण कस ऊबरे, बूड़े माँझे धार ॥[७]

(९)

मन माला जो नर जपे, निः अक्षर निज नाम।
साहेब से परिचय करे, तब पावे वह ठाम ॥[८]

१-८. 'हरिचरणामृत-सतसई' (श्रीमहन्त हरिचरणदास कबीरपंथी, प्रथम सं०, सं० १९८१ वि०), पृ० १०, १५, २२ तथा २३।

(१०)

सन्तन दरस प्रताप से, महा पुन्यफल होय।
दर्वहि जौ वह करि कृपा, पाप न राखे कोय ॥[१]

*

हरिराज द्विवेदी

आप चम्पारन जिले के 'बैकुठवा' नामक ग्राम के निवासी थे।[२] आपका जन्म एक पंडित-परिवार मे हुआ था। आपके पूर्वजो में गणेशदत्त द्विवेदी, श्रीपति द्विवेदी, रमापति द्विवेदी आदि संस्कृत के मान्य विद्वान् हुए थे। आप भी संस्कृत के एक अच्छे विद्वान् थे।[३] आपको बेतिया राज-दरबार से सम्मान प्राप्त था। कहते हैं, पिउन्दीबाग (बेतिया) के शिव-मन्दिर पर जो प्रशस्ति अंकित है, उसके लेखक आप ही हैं। हिन्दी में आपने महारानी विक्टोरिया की प्रशस्ति लिखी थी।[४] अपने जीवन के अंतिम दिनों में आप वाल्मीकि रामायण का हिन्दी-पद्यानुवाद कर रहे थे, जिसे अपूर्ण ही छोड़कर स्वर्गवासी हो गये।[५] आपकी रचनाओ के उदाहरण नही मिले।

*

---

१. 'हरिचरणामृत-सतसई' (वही), पृ० २८।

२. वही, पृ० २७।

३. आपने संस्कृत में कई पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें दो, 'मुनिवश-पद्धति' और 'नारायणलहरी', प्रमुख हैं। प्रथम की रचना आपने अपने किसी पूर्वज की स्मृति में की थी। उसमें प्रसंगवश आपने अपनी वंश-परम्परा का भी उल्लेख कर दिया है। द्वितीय की हस्तलिखित-पोथी आपके एक वशधर पं० इन्द्रदत्त द्विवेदी के पास है।—स०

४. महारानी विक्टोरिया की हीरक-जयती सन् १८७७ ई० में, बिहार में मनाई गई थी। उसी अवसर पर वह प्रशस्ति लिखी गई होगी। उसकी रचना के समय आप कम-से-कम ४० वर्ष के रहे होंगे। अतः, अनुमान होता है कि सन् १८३७ ई० के लगभग आपका जन्म हुआ होगा। —सं०

५. इस अनुवाद का कुछ अश आपके एक वशधर प० सरस्वती द्विवेदी के पास सुरक्षित है।

तृतीय अध्याय

[वे साहित्यकार, जिनका जन्म-काल अनिश्चित है।]

अम्बालिका देवी

आप चम्पारन-जिले के उपाध्याय-परिवार की एक विदुषी सदस्या और रामनगर-राज्य (चम्पारन) के आश्रित श्रीअम्बिकाप्रसाद उपाध्याय की धर्मपत्नी थी।[1] आपको हिन्दी के अतिरिक्त बँगला-भाषा का भी अच्छा ज्ञान था। आपने बँगला-उपन्यास 'राजपूत-रमणी' का हिन्दी में अनुवाद किया था। आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

※

अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय

आप चम्पारन के प्रतिष्ठित उपाध्याय-परिवार के एक प्रमुख सदस्य और रामनगर-राज्य (चम्पारन) के आश्रित थे।[2] आपने नेपाल का एक इतिहास लिखा था, जिसमें रामनगर-राज्य का इतिहास भी है। यह सन् १९१७ ई० में पहली बार प्रकाशित हुआ था।[3] आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

अम्बिकाशरण

आप सारन-जिले के निवासी तथा बाबू नगनारायणजी[4] के समकालीन और उनके दरबारी कवि थे। ब्रजभाषा मे आपने केवल स्फुट-रचनाएँ ही की थी, जिनमें से अधिकांश अब उपलब्ध नही होती।

---

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ३५।

२. वही, पृ० ३४-३५।

३. आपकी मृत्यु के बाद श्रीराजेश्वरीप्रसाद उपाध्याय (राजीव बाबू) ने इसमें आवश्यक संशोधन-परिवर्द्धन कर इसका नवीन संस्करण प्रकाशित किया था।—वही।

४. इनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र द्रष्टव्य। इनका जन्म-काल सन् १८१६ ई० है। अतः, आपका स्थिति-काल उसी समय के आसपास होगा।—सं०

उदाहरण

एहो बृन्द विद्वज्जन तो ते का बताऊँ हाय
मुख ते निकारे उर-ज्वाला-सी जगत है।
आज नगराज त्याज अवनि समाज पद
पगन पधारे वाते फेर ना डगत है।
अम्बिका बखाने हेरि अम्बर ते देवगन
बिकल बेहाल याहि बैन न पगत है।
कंचन-कलित बसुधा की ये अँगूठी हाय
नग के प्रकास बिनु सूनी-सी लगत है।[1]

*

ईनरराम

आप चम्पारन जिले के सरभंग-सम्प्रदायी कवि थे। आपकी रचना में भोजपुरी भाषा का भी पुट है।

उदाहरण

अब घर जाए द ए सखिया, राम सुरतिया लागल मोर।
छन-छन पल-पल कल ना परत है, गृह आँगन भइले भोर।
सुरति सुहागिनि बिरहे ब्याकुल, पलको ना लावे भोर।
अब घर जाए द ए सखिया, राम सुरतिया लागल मोर।
निरखत परखत रहत गगन में, निसिदिन लागत डोर।
अबिचल नाम जपो अभिअंतर, अब गवनवाँ होइहें मोर।
अब घर जाए द ए सखिया, राम सुरतिया लागल मोर।
भवजल-नदिया अगम बहे सखिया, चहुँदिसि उठत हिलोर।
जय 'ईनर' पलक मे उतरी, सत साहेब का ओर॥[2]

*

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथ 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' से। इस कवित्त की रचना आपने अपने आश्रयदाता बाबू नगनारायण सिंह के स्वर्गवासी होने पर की थी।

२. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४७।

उमानाथ वाजपेयी

आप सिहोरवा (गोविन्दगंज, चम्पारन) के निवासी थे।[१] आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ ही खड़ीबोली में मिलती हैं।

उदाहरण

सावन मास निरास भये बरखा निसिबासर होत ना देखा।
घामिन से जरि जात अनाज समाज छुटे सब बंधु बिसेखा।
बेद-पुरान कोई नहीं जानत लोग कहे सब झूठ के लेखा।
उमानाथ बिचारि कहे जग जातहि राखि लिये असलेखा॥[२]

*

करताराम

आप पहले मुजफ्फरपुर जिले के 'काँटी' नामक स्थान के निवासी थे, पीछे माता का देहान्त हो जाने पर गंडकी (नारायणी) के किनारे केसरिया (चम्पारन) से चार मील दक्खिन 'ढेकहा' (सत्तरघाट) नामक स्थान में जा बसे।[३] आपके पिता का नाम था वीरसिंह और माता का फुलेश्वरी।[४]

'ढेकहा' में राम-नाम का सुमिरन करते हुए आप अपनी जीविका के लिए कठोर परिश्रम करते थे। मूँज की रस्सी बटकर बाजार में बेचते और स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करते थे। आपके छोटे भाई धवलराम[५] भी ईश्वर-भक्त-कवि थे। आपकी वंश-परम्परा में भुवालराम और सनेहीराम भी कवि हो गये हैं, किन्तु उनकी रचनाएँ दुष्प्राप्य हैं।

आप सरभंगी संत-कवि थे। आपकी रचनाओं का एक संग्रह 'करताराम के पद' के नाम से, पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था, किन्तु अब दुर्लभ है।[६]

---

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० २१।
२. वही, पृ० ३०।
३. वही, पृ० ३८।
४. आपके माता-पिता उत्तर-प्रदेश के 'ददरी' ग्राम (बलिया) के निवासी थे कहते हैं, आपके पिता के देहान्त के पश्चात् ही उक्त ग्राम में जोरों का अकाल पड़ा। अतः, जीविका खोजने के उद्देश्य से आप अपने भाई धवलराम के साथ 'काँटी' चले आये। —सं०
५. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य। धवलराम को आपका बड़ा भाई भी बताया गया है। —देखिए, 'संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय' (डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, प्रथम सं०, सन् १९५९ ई०), पृ० १४८।
६. श्रीविजयेन्द्र किशोर (सब-इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स, केसरिया, चम्पारन) ने अपने दिनांक १-४-५७ के पत्र में आपकी इस पुस्तक की चर्चा की है। किन्तु, वे इसमें संगृहीत रचनाओं को आपकी रचनाएँ नहीं मानते। अपने इस मत का उन्होंने कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दिया है। हाँ, 'संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ में 'करताराम-धवलराम चरित्र' नामक पुस्तक का उल्लेख है और उसमें उसी से उदाहरण भी संकलित हैं। संभवतः, आप दोनों भाइयों की रचनाओं का वह सम्मिलित संग्रह है।—सं०

उदाहरण

(१)

गहै गरीबी झूठ न बोले जथा-लाभ संतोषा है।
तन-मन से उपकार पराया 'करता' संत अनोषा है ॥
बिना परिश्रम घीव शक्कर को दुनिया से लेइ खाता है।
'करता' नाम-भेद नहि जानत झूठा संत कहाता है ॥
पर-धन धूर नारि नागिनि सम मेहनत करके खाता है।
आठो पहर नाम-रस पीवे 'करता' संत कहाता है ॥[1]

(२)

जग में बैठे संत न होखे पंचागिनि नहि तापे ते।
वह 'करता' जो संत होत है रामनाम लव लावे ते ॥
पूजा व्रत तो करम-काण्ड है सन्तन को नहि दुनिया को।
'करताराम' कहतु है साधो राम-नाम का रसिया को ॥
तिलक-छाप से राम-मिलन नहि नहि कपड़ा रंगवावे ते।
'करताराम' कहत है सुन लो संत राम-गुन गावे ते ॥
सन्त न करता टोपी बनगी योगी अलख जगावे के।
जटा भभूति अवर मृगछाला 'करता' जग देखलावे के ॥[2]

(३)

बडे सरकार से लोग कहे कोई तीरथ चलिए महराजू।
मुसुकाई कहे हरिनाम गहे हिय सत्य धरे घर तीरथराजू ॥
चहुँ खूट मही विचरे न धरे हिय सत्य कहो तोहि का जग काजू।
'करतार' कहे गुरु तत्त्व गहे मन शुद्ध भये तन तीरथराजू ॥[3]

---

१. 'सतमत का सरभग-सम्प्रदाय' (वही), पृ० १२२।

२. वही, पृ० १२१। इसकी छठी-सातवी पक्तियों का पाठ 'चम्पारन की साहित्य-साधना' में इस प्रकार है—

तिलक-छाप में राम मिले नहिं नहिं कपडा रगवावे ते।
करताराम मन्त सोइ जानौ नामहि सुरति लगावे ते ॥

३. 'सतमत का सरभग सम्प्रदाय' (वही), पृ० ६२।

(४)

साधेउ न तन साधु कहाँ वह क्रोध किए पुनि बोध कहाँ है।
मन नाहि मरे जिव मारि के खाहु करो कर माति लहै गति नाहीं ॥
क्रोध रहे जिन्हके मन मे अस बोध करौ सब पाप तहाही।
'करता' यह नेम कियो दृढ़ कै मनसा मुख आनु से देखे बनाहीं ॥[1]

※

कवीन्द्र

आप मिथिला के बिसौली नामक स्थान के निवासी थे।[2] आपके वंशधर आगे चलकर उत्तरप्रदेश में जाकर बस गये। आपके पिता का नाम 'हरीन्द्र' और पितामह का 'रत्नपति' था। आपके पुत्र 'मुनीन्द्र' भी हिन्दी के कवि हुए। आपने हिन्दी में कुछ स्फुट कवित्तों की रचना की थी। आपकी कोई पुस्तकाकार रचना नही मिलती।

उदाहरण

तूही खड्गधारा निराधारा की अधारा मातु
तू ही धाराधर की सुधार ह्वै ढरतु है।
सुभट हजारन में जाने जन आपने को
जहाँ रन रूह की वदूह प्रगटतु है॥
भनत कवीन्द्र तेरी मूरति त्रिलोकमयी
ठौर-ठौर सूरनि यों पूरन पठतु है।
जहाँ देव-वृन्दन पै परम निरारी भीर
तहाँ अम्ब तेरी ही निपारी निपटतु है॥[3]

※

कारीराम

आप चम्पारन-निवासी सरभंगी-सम्प्रदाय के एक संत-कवि थे। आपने हिन्दी में कुछ स्फुट पदों की रचना की थी। आपका कोई अच्छा पद नही मिला।[4]

※

---

१. 'संतमत का सरभग-सम्प्रदाय' (वही), पृ० १२२।
२, 'सरस्वती' (वही, भाग ३९, खड १, संख्या ५, मई, सन् १९३८ ई०), पृ० ५२७।
३, वही।
४. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' में आप का एक पद उद्धृत है, किन्तु उसका पाठ भ्रामक ज्ञात होता है।
—देखिए, वही, पृ० ४८-४९।

केशवदास

आप चम्पारन-जिले के जिवधारा स्टेशन के समीप बेलवतिया-मठ में निवास करते थे।[१] आप एक प्रसिद्ध कबीरपंथी निर्गुणिया संत थे। आपके गुरु थे छत्तरबाबा[२], जिनकी गद्दी पंडितपुर (चम्पारन) मे थी। आपके शिष्यों में प्रमुख थे रसालदास और सामबिहारी दास।[३] आपने निर्गुण-भक्ति-परम्परा में कुछ पदों की रचना भोजपुरी-मिश्रित भाषा में की थी, जिनमें से कुछ उपलब्ध हैं।

उदाहरण

(१)

आजु मोरा हरि के अवनवाँ, जब हम सुनलों हरि के अवनवाँ।
चन्दन लिपलो हो भवनवाँ, सिरि पंडितपुरवा में मेरो गुरु गदिया।
उतर बहे हो लखनवाँ, गगन-मंडल से गुरु मोरा अइले।
'केसो' लोटे हो चरनवाँ, आज मोरा हरि के अवनवाँ॥[४]

(२)

सुधि कर बालेपन के बतिया।
दसो दिसा के गम जब नाहीं संकट रहे दिन-रतिया।
बार-बार हरि से कौल कियो है बसुधा में करब भगतिया।
बालेपन बाले में बीते तरुनी कड़के छतिया।
काम क्रोध दसो इन्द्री जागे ना सूझै जतिया से पँतिया।
अन्तकाल में समुझि परेगा जब जम्हु घेरे दुअरिया।
देवा देई सभे कोई हारे झूठ भइले जडी-बुटिया।
केसोदास समुझि के गावेले हरिजी से करेले मिनतिया।
सामबिहारी सबेरे चेतो अंत मे कोई न संघतिया॥[५]

*

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ५०। 'सन्तमत का सरभंग-सम्प्रदाय' के अनुसार बेलवतिया-मठ को आपने ही स्थापित किया था। यह स्थान मोतीहारी थाने में है। —देखिए, वही, पृ० १५८।

२. इनका परिचय इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में द्रष्टव्य।

३. 'संतमत का सरभग-सम्प्रदाय' (वही), पृ० १५६।

४. 'चम्पारन की साहित्य साधना' (वही), पृ० ५०। दूसरे उदाहरण की पहली पाँच पंक्तियाँ 'सन्तमत का सरभग-सम्प्रदाय' में छपे पाठ के अनुसार हैं। —देखिए, वही, पृ० ४८।

५. वही।

कौलेसर बाबा

आप सारन-जिले के निवासी एक राममार्गी संत थे।[१] जीवन-भर आप रमता योगी बने भ्रमण ही करते रहे। आपके अनेक शिष्य आज भी वर्त्तमान हैं। श्रीहनुमान्‌जी आपके सिद्ध इष्टदेव थे। आपकी सिद्धि के चमत्कारों की अनेक कहानियाँ लोक-प्रचलित हैं। कहते हैं कि जंगल में गाय चराते-चराते भूख लगने पर रोते समय एक दिन आपको हनुमानजी ने दर्शन दिये थे और उसके बाद प्रायः आपकी पुकार सुनकर प्रकट हो जाया करते थे। राम-नाम की रट लगी रहने का यह फल हुआ। आपकी उपदेश-प्रधान रचनाएँ भोजपुरी भाषा में हैं।

उदाहरण

जेकर घर मइल, तेकर घर गइल। जेकर घर साफ, तेकर घर आप ॥
झुठमुट खेले सचमुच होय। सचमुच खेले बिरले कोय ॥
जो कोई खेले मन-चितलाय। होते-होते होइए जाय ॥[२]

*

कृपानारायण

आपका जन्म नयागाँव (सारन) में हुआ था।[३] आपके पिता का नाम था ठाकुर संतोष नारायण। बीसवीं-शती के प्रथम-चरण के अँगरेजी, हिन्दी और भोजपुरी के यशस्वी कवि श्रीरघुवीर नारायणजी आपके ही प्रपौत्र थे। आप स्वयं मोतीहारी (चम्पारन) में सिरिश्तेदार थे। उर्दू-फारसी के आप बड़े अच्छे विद्वान् थे। इन भाषाओं में आपकी कुछ रचनाएँ भी मिलती हैं। कहते हैं, आपने भोजपुरी में भी कुछ रचनाएँ की थी। हिन्दी में आपने एक कविता-पुस्तक 'आशिक-गदा'[४] के नाम से लिखी थी, जिसमें इस्लाम की दार्शनिकता के साथ-साथ दो प्रेम-विह्वल प्राणों की मर्मस्पर्शिनी कथा है।[५]

---

१. 'हिन्दी-साहित्य को बिहार की देन' (वही), पृ० १६२।

२. वही।

३. श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण (दहियावाँ, छपरा) द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर। ये भी आपके वंशधरों में एक प्रतिभाशाली युवक कवि हैं।

४. यह पुस्तक छपकर प्रकाशित भी हुई थी। इसके आरम्भ में आपने ललित छंदों में अपना वंश-परिचय दिया है। संयोग-शृंगार का अत्यन्त आकर्षक वर्णन इस पुस्तक की विशेषता है।

५. 'रघुवीर नारायण—जीवनी तथा कृतियाँ' (श्रीचन्द्रकिशोर पाण्डेय द्वारा सन् १९५९ ई० में प्रस्तुत एम्० ए० की थीसिस) पृ० १७।

उदाहरण

औरन को छाड़ि मोहि रोकत हौ बार-बार
कहौ हौं पुकारि भारि रारि मचि जायगो।
धाय-धाय अंचल कौ झोरो झकझोरो ना
सारी मोरी फाटिहै तो कामरि बिकायगो॥
जौबन-बल पाके हौ अंगो पर हाथ धरत
एकौ लर मोतिन की टूटि जो हेरायगो।
एक-एक मोतिन के मोलन के पाछे 'कृपा'
नन्द वो जसोदा कान्ह तीनहू बिकायगो॥[1]

*

कृष्णप्रताप शाही

आप सारन-जिले के हथुआ-राजवंश में जन्मे थे।[2] आपका विद्यानुराग प्रशंसनीय था। आपकी अभिरुचि चित्रकला की ओर भी थी। आपने अनेक प्रामाणिक पौराणिक चित्रों का निर्माण कराया था, जिनमें से एक 'अग्निदेव' के चित्र को आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित कराया था।

आपके दरबार में कवियों का अच्छा जमघट था। आप स्वयं भी कविता करके अपने दरबारियों को सुनाया करते थे। आपने भजन और दोहे के सिवा होली, चैती आदि गीतों की भी रचना की थी। आपकी रचनाओं का एक संग्रह 'शोक-मुद्गर' के नाम से काशी में छपकर प्रकाशित हुआ था। उदाहरण नहीं मिले।

*

खक्खन मियाँ

आप चम्पारन-जिले के 'ममरखा' नामक स्थान के रहनेवाले थे।[3] 'चैनसिंह का पँवारा' नाम से आपकी एक करुण-वीर-रस-प्रधान पद्यात्मक रचना आपके वंशजों के कंठ में बसी सुनने में आती है। आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले।

*

---

१. बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के छठे अधिवेशन (१ नवम्बर, सन् १९२४ ई०) के सभापति राजाबहादुर कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर के अभिभाषण से।—देखिए, 'बिहार की साहित्यिक प्रगति' (वही), पृ० १९७।

२. एकादश सारन-जिला-साहित्य-सम्मेलन (हथुआ, सन् १९५३ ई०) के स्वागताध्यक्ष श्रीकुमार नकुलेश्वरेन्द्र शाही के भाषण से।

३. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ६।

गंगादत्त उपाध्याय

आप चम्पारन-निवासी थे।[१] आपके द्वारा रचे एक ज्योतिष-ग्रंथ की हस्तलिखित-प्रति आपके वंशधर श्रीलक्ष्मीदत्त उपाध्याय के पास सुरक्षित है। आपकी रचनाओं का कोई उदाहरण नही मिला।

*

गुलाबचन्द

आपकी रचनाओ मे आपका उपनाम 'आनन्द'[२] मिलता है।

आप शाहाबाद-जिले के निवासी[३] और सन्त जयनारायणजी[४] के शिष्य थे। आपकी एक पुस्तकाकार रचना 'आनन्द-भण्डार' नाम से प्रकाशित हुई थी।[५] इसमें आपके द्वारा रचित भोजपुरी के अनेक भजन संगृहीत हैं। आपकी रचनाओं में कबीर के निर्गुणवाद की स्पष्ट झलक है और कहीं-कहीं सरभंग-सम्प्रदाय का भी प्रभाव परिलक्षित होता है तथा उनमें भाषा की सरलता, भाव की स्पष्टता, पद-पंक्तियों की समरसता आदि भी है।

उदाहरण

(१)

देख चुनरी में लागे न दाग सखी,
ई चुनरी पिया आप बनाए,
तानि करमवाँ के ताग सखी,
पतिबरत-रंग में रँगल चुनरिया,
प्रेम-किनरिया के लाग सखी,
ई चुनरी जिन जतन से ओढ़े,
'आनन्द' तेहि के जागे भाग सखी।[६]

---

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ३४।

२. इस नाम के एक और कवि १८वीं शती में, मिथिला में हो गये हैं। वे मिथिलेश महाराज माधवसिंह (सन् १७७६-१८०७ ई०) के दरबारी कवि थे।—देखिए,'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १०१।

३. 'गाँव-घर' (भोजपुरी-पाक्षिक, वर्ष १, अंक १, १ मार्च, सन् १९६१ ई०), पृ० १७।

४. ये काशी के प्रसिद्ध औघड़ सन्त कीनारामजी की परम्परा के संत थे।

५. इस पुस्तक की एक मुद्रित प्रति ओंकारेश्वर प्रसाद (आमलापट्टी, मोतीहारी) ने आज से चार वर्ष पहले शाहाबाद जिले के किसी गाँव में देखी थी।—देखिए, 'गाँव-घर' (वही), पृ० १७।

६. वही।

(२)

भजन तजि जिअरा कइसे सुख पइबे
जोग बिहाय भोग-रस चाखत,
बार-बार भव-कूप में अइबे,
नाता-नेह-गेह में फँसि-फँसि,
अपनो सरबस मूल गँवइबे,
काम-करोध-लोभ में रत नित,
अपना रामजी से कब लव लइबे,
मोह निसा में निसि-दिन सोअत,
अन्तहुँ जाइ चिता पर सोइबे,
भजु नारायण जय नारायण,
'आनन्द' पइबे अइबे न जइबे।[1]

*

गोविन्द मिश्र

आपका उपनाम 'कवीश्वर' था।

आप दरभंगा-निवासी महामहोपाध्याय पं० चित्रधर मिश्र के पुत्र थे।[2] आपने हिन्दी में भी काव्य-रचना की थी, किन्तु उनके उदाहरण नहीं मिले।

*

गौरीदत्त

आप चम्पारन-जिले के निवासी थे। सरभंग-सम्प्रदाय में सदानन्दजी की शिष्य-परम्परा में परपन्तबाबा के बाद आपका ही नाम आता है।[3] आपने भी निर्गुण-भक्ति-परम्परा में कुछ पद लिखे थे, किन्तु वे अब उपलब्ध नहीं होते।

*

१. 'गाँव-घर' (वही), पृ० १७।

२. दीवान-बहादुर श्रीकामेश्वरनारायण सिंह (नरहन, दरभंगा) के दिनांक २६-९-५६ के पत्र के आधार पर।

३. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ३७।

जगन्नाथ सहाय

आप बड़ाबाजार मुहल्ला, हजारीबाग (छोटानागपुर) के निवासी[1] और हिन्दी के काव्यानुरागी लेखक थे। आपकी निम्नलिखित हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हुई थी—(१) आनन्द-सागर[2], (२) प्रेमरसामृत, (३) भक्तरसनामृत, (४) भजनावली, (५) कृष्णबाललीला, (६) मनोरंजन, (७) चौदहरत्न[3] और (८) गोपालसहस्रनाम। इनके अतिरिक्त आपकी स्फुट-कविताओं के दो संग्रह अभीतक अप्रकाशित हैं। आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले।

*

जनेश्वरी बहुआसिन

आप बड़हगोड़िया (दरभंगा) के महाराज-कुमार श्रीनेत्रेश्वर सिंह (वनमाली बाबू) के द्वितीय पुत्र बाबू नन्दनजी की पत्नी थीं।[4] आपने मैथिली में अनेक गीतों की रचना की थी, जिनमें से कुछ आज भी लोककंठ पर जीवित हैं।

उदाहरण

(१)

जय जय तारा सब दुख हारा, जय जगदम्बा नाम तोहारा।
जय काली जय त्रिपुर सुन्दरी, जय तारिन अहि हारा॥
तोहर अन्त केओ नहि पाबए, महिमा अगम अपारा।
चारि भुजा तिन नयन बिराजित, परिहन बर बघछाला॥
फनि भूषन मुण्डमाल बिराजए, प्रत्यालीढ़ अधारा।
दासि जनेश्वरि देवि दिसि हेरिअ, धएल चरन-गहि तारा॥[5]

---

१. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय-भाग), पृ० १२८६।

२. यह पुस्तक नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ) से प्रकाशित हुई थी।

३. 'हिन्दी-सेवी-संसार' (लखनऊ) में इस पुस्तक का नाम 'चौदहरत्न' छपा है, पर मिश्रबन्धुओं ने इस पुस्तक का नाम 'चौदहरत्न' ही बतलाया है।—देखिए, वही, पृ० १२८६। मेरा अनुमान है कि मिश्रबन्धुओं का लिखा हुआ नाम ठीक है। लिखावट के भ्रमात्मक होने से ऐसी भूल हो जाना बहुत संभव है।—सं०।

४. प्रो० ईशनाथ झा (चन्द्रधारी-मिथिला-कॉलेज, दरभंगा) द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।

५. उन्हीं से प्राप्त।

(२)

जागिअ कृष्ण कमलदल-लोचन, दुखमोचन सुखदाइ।
भोर भेल पह फाटए लागल, पक्षिक शब्द सुनाइ॥
अबहु जागु चिन्तामनि मोहन, तुअ बिनु चित अकुलाइ।
ब्रह्मादिक सुर नर मुनि सभ जन, दरस हेतु ललचाइ॥
दए दरसन करु सब दुख भञ्जन, जमुमति-पुत्र कन्हाइ।
सुनि करुनामय जागि उठल झट, दयाधाम हरखाइ॥
मुरलि मुकुट बनमाल सम्हारथि, सभ मिलि दरसन पाइ।
माखन मिसरी दही मलाई, बहुबिधि भोग बनाइ।
मुदित जनेश्वरि करती आरति, जनम सुफल बनि जाइ॥[१]

*

जयगोविन्द महाराज

आप पूर्णियाँ-जिले के बहोरा-ग्राम-निवासी ब्रह्मभट्ट थे।[२] आपका जन्म सन् १८५० ई० के कुछ पहले हुआ था।[३]

आप श्रीनगराधीश राजा कमलानन्द सिंह 'साहित्य-सरोज' (सन् १८६५-१६०३ ई०) के दरबारी कवि थे।[४] राजासाहब आपको माहवारी कुछ नकद रुपये तो देते ही थे, उसके अतिरिक्त उन्होंने भागलपुर के नवहट्टा-ग्राम (सहर्षा) में आपको खेती-बारी के योग्य जमीन भी दी थी। जब राजासाहब का निधन हो गया, तब आप गंगातटस्थ 'मदारीचक' चले आये और वहीं स्थायी रूप से रहकर वृद्धावस्था में भगवद्भजन करने लगे। उन दिनों श्रीनगर छोड़ने से आप बहुत दुःखी रहा करते थे। उस समय आपकी अवस्था ६५ वर्ष की थी।[५]

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।

२. अध्यापक श्रीरामनारायण सिंह 'आनन्द' (बड़हरा कोठी, पूर्णियाँ) से प्राप्त सूचना के आधार पर।

३. मिश्रबन्धुओं ने आपका जन्म सं० १६१० वि० (सन् १८५३ ई०) के लगभग माना है। —देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, भाग ४, प्रथम स०, स० १९९१ वि०), पृ० ११६।

४. मिश्रबन्धुओं ने आपको कुँवर कालिकानन्द सिंह (श्रीनगर) का आश्रित कवि बतलाया है। —देखिए, वही। कुमार कालिकानन्द सिंह राजा कमलानन्द सिंह के सगे भाई थे।

५. बड़हरा कोठी (पूर्णियाँ) के अध्यापक श्रीरामनारायण सिंह 'आनन्द' ने दिनांक १८-६-५६ को प्रेषित सूचनाओं में बतलाया है कि "उस समय मैं (पत्र-प्रेषक) मदारीचक में अध्यापक था। आपका परिचय पाकर बराबर आपके यहाँ जाने लगा। आपने मुझे कविता पढ़ाना आरम्भ किया। आपकी विद्वत्ता एवं साधुता का मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा।"

आप परम वैष्णव और 'गीता' के अनन्य भक्त तथा उपासक थे। दोनों जून गंगा-स्नान और संध्या-पूजा करते साधु-जीवन व्यतीत करते थे। प्रायः समस्त गीता आपको कण्ठस्थ थी। इसी कारण पूर्णियाँ के समाज में सभी धनी-मानी सज्जन आपका आदर करते थे। आपके एक पुत्र श्रीअयोध्याप्रसाद राय हैं, जो बड़े सज्जन तथा साहित्यप्रेमी हैं।

आप रीतिकालीन-परम्परा के कवि थे। पिंगल, अलंकार, नायिका-भेद, रस, गुण आदि पर आपका पूरा अधिकार था। आपकी रचनाएँ प्रायः सरस और प्रसाद-गुण-युक्त ब्रजभाषा में हैं। आपने निम्नांकित पुस्तकों की रचना की थी, जो दुर्भाग्यवश अभीतक अप्रकाशित ही हैं—(१) साहित्य-पयोनिधि, (२) अलंकार-आकर,[१] (३) कविता-कौमुदी, (४) समस्यापूर्त्ति और (५) दुर्गाष्टक। इनके अतिरिक्त और भी कई छोटी-मोटी स्फुट-रचनाएँ आपने की थीं। आपकी अनेक समस्यापूर्त्तियाँ, सन् १८६८ ई० में, कानपुर से प्रकाशित 'रसिक-मित्र' नामक मासिक-पत्रिका में छपी थीं। आप सन् १६१५ ई० के नवम्बर में मदारीचक के गंगा-तट पर परलोक सिधारे।[२]

उदाहरण

(१)

विकसित कंज-से चरन अरुनारे मंजु,
करिबर मन्द-से गमन सुहाये है।
चपला अचंचल-प्रभा से गोरे गात जाकी,
उर-जारत श्रीफल-से गोल दरसावे है।
पल्लव-से कोमल सुपानि 'जयगोविन्द' कवि,
मुक्ता बिसद-से दसन-पाँति भावे है।
सफरी-से लोचन चपल मन-भावन है,
चन्द से बदन-तिय दिव्य दरसाये है।[३]

---

१. यह पुस्तक कला-भवन (पूर्णियाँ) के मंत्री साहित्यरत्न श्रीरूपलालजी के पास सुरक्षित है।
२. मिश्रबन्धुओं ने आपका मृत्यु-काल सं० १६७० वि० (सन् १६१३ ई०) माना है। —देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही), पृ० ११६।
३. अध्यापक रामनारायण सिंह 'आनन्द' (वही) से प्राप्त।

(२)

जंघ को उठाय बैठी तकिया सहारे बाल,
निबिड़-नितम्ब ताकी सोभा दरसाती है।
चम्पक-कली के हार कुच पै समीर लागे,
चंचल पटंचल की छवि छहराती है।
कवि 'जयगोविन्द' अभिषेक-मनसिज-हित,
बेदी पर रम्भा दुइ तरु दरसाती है।
बंदन-निवार-जुत तीरथ के तोय-भरे,
कंचन के घट पै पताका फहराती है।[1]

(३)

जगत मँझार द्विजराज सों बखानो जात,
जाके आगे बिबुध-समाज को न लेखो मैं।
रह्यो सँपूरन अमल गुन जोतिन सों,
कियो उदास ताको सबिधि परेखो मैं।
सनमुख होत माँहि कवि 'जयगोविन्द' कहें,
हेरत में काहे मुख फेरत निरेखो मैं।
चन्द्र सों लजात जलजात सदा जानो जात,
आज जलजात सों लजात चन्द देखो मै।[2]

(४)

कुसुमित विविध बिसाल तरु-राजिन पै,
क्वैलियाँ मधुर-मृदु बोलियाँ सुनावैगी।
सीतल बयार 'जयगोविन्द' दिसि दक्खिन से,
धीरे-धीरे भौर-भीर संग लिये आवैगी।
होरी के उमंग मे संजोगिने सिँगार साजि,
उछरि-उछरि रंगरेलियाँ मचावैगी।
तोहि ढिग आये बिना नायक बसंत माँहि,
तब आप ही सों आप मान को मिटावैगी।[3]

---

१. अध्यापक श्री रामनारायण सिंह 'आनन्द' (वही) से प्राप्त।
२. उन्हीं से प्राप्त।
३. वही।

(५)

कनकलता में जुगल फल, तापै सोम लखाय।
तेहि में कोकिल कीर अरु, धनुष बान दरसाय ॥[१]

(६)

सोइ बानि 'जैगोविन्द' लोकनि में,
स्तुति-स्वाद-सुधा सरसावती है।
जोइ आन के आनन से निकली,
बसुधा में सुकीरति छावती है।
पर आपने आनन से निकली,
विकली हो कहीं नहिं भावती है।
कुच आपन आपहि से ज्यों तिया,
मरदे में कहूँ सुख पावती है ॥[२]

(७)

कुमुदिनि-लाज-उनमोचन अमन्द चन्द,
स्वकर पसारि निसि उदित लखावेंगे।
जब कुसुमित तरु-ऊपर उमंग-भरे खग,
कोकिलादि स्वर मधुर सुनावेंगे ॥
कवि जयगोबिद मलयाचल-मिलित पौन,
धीरे-धीरे संग भौंर भीर लिये आवेंगे।
सायक-कुसुम गाढ़ मान को मिटाये बिना,
मेरे ढिग आये बिना नायक रिझावेंगे ॥[३]

---

१. अध्यापक श्री रामनारायणसिंह 'आनन्द' (वही) से प्राप्त।

२. उन्हीं से प्राप्त।

३. वही। यह कवित्त सन् १८६६ ई० में, 'काव्यसुधाधर' में प्रकाशित भी हुआ था।

(८)

गगन नखत-समाज में द्विजराज सुखमा-रासि ।
बिसद चाँदनि सो सुशोभित रहेउ दिसि की भासि ॥
चितै रहत चकोर जेहि मुद कुमुद मन में लाय ।
हाय ! तिनको आय औचक राहु लीन्हेउ खाय ॥[1]

❋

जयनाथ झा

आपको 'कवीश्वर' की उपाधि प्राप्त थी ।[2]

आप दरभंगा-जिले के 'हरिपुर' नामक ग्राम के निवासी थे ।[3] आपके पिता का नाम था सनाथ झा । आप अपने पिता के चतुर्थ पुत्र थे । आपने महाराज रुद्रसिंह (सन् १८३६-५० ई०) के आश्रय में रहकर काव्य-रचना की थी । आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले ।

❋

जवाहर प्रसाद

आपका निवास-स्थान था शाहाबाद जिले का 'चन्दा-अखौरी' (डा० गजराजगंज) नामक ग्राम ।[4] आप उर्दू के अतिरिक्त हिन्दी के भी कवि थे । आपकी कोई रचना पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं मिलती । आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले ।

❋

---

१. इसकी रचना आपने राजा कमलानन्द सिंह की मृत्यु होने पर की थी ।

२. "एहि उपाधिक घटना एहिरूपें भेल सुनऽल थिक जे—श्रीमानँक निकट १ केओ कवि परीक्षा देबाक हेतु आयल छलाह । श्रीमान् परीक्षणार्थ हिनक आह्वान कयल । ई अस्वस्थ रहैत आबि नहि शकलें १ टा दोहा अनुलोम-विलोम क्रमें हिन्दी संस्कृतोभयभाषाबद्ध कै पठाय लिखल जे—'जों एकर जोड़ा बना देथि तँ 'कवीश्वरो'—पाधिएँ भूषित कयल जाथि । अर्थोपरि यथावत् (ठीक २) कहथितँ 'कवि' कहाबथि से नहि तखन 'ठक' । दोहा यथा—

नाम कावशि तेरोभी गयो राजमकानते ।
भो विनोदममा सीधी तिया चाननते जरा ।"

—देखिए, 'मिथिलाभाषामय-इतिहास' (म० म० प० श्रीमुकुन्दझा बख्शी, प्रथम स०), पृ० ४०६ (पाद टिप्पणी) ।

३. वही ।

४. चन्दा-अखौरी, डा० गजराजगंज, जि० शाहाबाद के निवासी श्रीभुवनेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव 'भानु' (महादेवा, आरा) से प्राप्त सूचना के आधार पर ।

जानकी प्रसाद

आप पटना-निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थे।[१] आपके पिता का नाम था पं० शेषदत्त[२] जी, जो 'मानस-मयंक' के रचयिता पं० शिवलाल पाठक के शिष्य थे। कहते हैं, आपने पं० शिवलाल पाठक द्वारा रचित 'मानस-अभिप्राय-दीपक' पर वार्त्तिक टीका लिखी थी।[३] आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

※

ठाकुर प्रसाद

आपका उपनाम 'जगदीशपुरी' था।

आप जगदीशपुर (शाहाबाद) के निवासी और दलीपपुर (शाहाबाद) के महाराजकुमार बाबू नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह 'ईश'[४] के काव्यगुरु थे।[५] काव्य-रचना में आपकी भी अच्छी प्रसिद्धि थी। आपकी रचनाओ के उदाहरण नही मिले।

※

डोहूराम

आप चम्पारन-निवासी एक सरभंगी संत थे।[६] आप भोजपुरी में निर्गुणी कविता बेडौल ढङ्ग से करते थे। आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले।

※

---

१. 'प्रभाकर' (साप्ताहिक, मुँगेर, ३० जुलाई, सन् १६४४ ई०), पृ० ५।

२. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

३. "सुनने में आया है कि जिला मुँगेर के पुन्नरक नामक ग्राम में मानस-अभिप्राय-दीपक सं० १८१७ ई० का लिखा हुआ, रामनामकलाकोषमणिमंजूषा की टिप्पणी, तुलसी-सतसई पर तिलक और मानस-मयङ्क की टिप्पणी, शेषदत्तजी वा महादेवदत्तजी वा पं० जानकीप्रसादजी (इन्हीं में से किसी) की लिखी और लिखाई हुई एक वैष्णव की ठाकुरवाड़ी में सुरक्षित मौजूद है। श्रीस्नेहलताजी से मालूम हुआ कि पुन्नरक में उन्हें किसी से यह समाचार मिला है कि वहाँ एक बड़े भारी रामायणी हो गये हैं, जो भक्तमालीजी के नाम से प्रसिद्ध थे और शृंगारी थे। उनके यहाँ बहुत-से मानस-सम्बन्धी और शृंगारोपासना-सम्बन्धी ग्रंथ तथा बढ़ैयावाली मानस की पोथी की एक प्रतिलिपि सुरक्षित है। सम्भवतः इन ग्रंथों की उपस्थिति के कारण कोई-कोई इनको शेषदत्तजी का विद्यार्थी समझते हैं।"—'कल्याण' (मानसांक) में महात्मा श्रीअंजनिनन्दन शरण-लिखित 'मानस के प्राचीन टीकाकार' शीर्षक लेख।—देखिए, वही, पृ० ९१३।

४. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

५. तृतीय बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (सीतामढ़ी) के सभापति श्रीशिवनन्दन सहाय के भाषण से।—सं०

६. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४७ में आपकी रचना का एक उदाहरण है, पर वह भी निरर्थक और ऊटपटाँग है। उससे इतना ही संकेत मिलता है कि आप सरभंगी सन्त-कवि टेकमनराम और भीखमराम के शिष्य हैं। उक्त दोनों कवियों का परिचय इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में द्रष्टव्य है।—सं०

तोफाराय[1]

आप सारन-जिले के निवासी थे। सीवान सब-डिवीजन के 'आँदर' परगने का 'पतारि' गाँव आपका जन्म-स्थान है।[2] आपका जन्म-काल अज्ञात है। किन्तु सन् १८५७ ई० के सैनिक-विद्रोह के समय आप वर्त्तमान थे। आपने भोजपुरी भाषा मे 'कुँवर-पचासा' नामक एक कविता-पुस्तक रची थी, जिसमे विप्लवी नेता बाबू कुँवरसिंह और अँगरेजी फौज की उस लड़ाई का वर्णन है, जो बीबीगंज (शाहाबाद) मे हुई थी।[3]

कहते हैं, आपके पूर्वज गौड़ ब्राह्मण थे, पर मुगल-सम्राट् औरंगजेब के समय मे मुसलमान बना लिये गये थे। अब भी आपकी वंश-परम्परा में हिन्दू-धर्म के अनुसार आचार-विचार देखा जाता है। आपके कुल मे कई कवि हो चुके हैं—सविता, मिट्ठू, चन्देश्वरी, नान्हक, रामफल, बिसुनी, झपसी (झपट्ट), दया, जोह, सखावत[4] आदि। आपके पिता का नाम उमराव राय, पितामह का हरिराय और प्रपितामह का हितूराय था। आपके एकमात्र पुत्र का नाम धनपाल राय था, जिनकी एकमात्र सन्तान एक कन्या थी।

आप जगदम्बा दुर्गा के उपासक थे। कहा जाता है कि एकबार कविता रचते समय आपको उन्माद-सा ज्ञात हुआ। ऐसा अनुभव होते ही आप विन्ध्याचल-धाम चले गये और भगवती विन्ध्यवासिनी की स्तुति स्वरचित छंदों मे की। वहाँ से घर लौटने पर आपका देहान्त हुआ। प्रसिद्ध हिन्दी-कवि 'पजनेस' से आपका घनिष्ठ परिचय था। मिश्रबन्धुओं ने 'पजनेस' का जन्म-काल सं० १८७२ वि० (सन् १८१५ ई०) और कविता-काल स० १६०० वि० (सन् १८४३ ई०) माना है। अतः, आप 'पजनेस' के समकालीन थे। 'पजनेस' के छोटे भाई 'भुवनेस' अपनी एक प्रेयसी के प्रेम-सम्बन्ध से छपरा (सारन) मे ही रहते थे और स्वयं 'पजनेस' भी हथुआ-राज्य (सारन) और बेतिया (चम्पारन) के दरबारों में आते-जाते थे। इस तरह उनका-आपका पारस्परिक सम्पर्क संभव प्रतीत होता है। हथुआ-बेतिया-दरबारों के अतिरिक्त आप मझौली-नरेश (गोरखपुर) के दरबार में भी जाते थे। 'मझौली-विवाह- वर्णन' नामक एक कविता-पुस्तक भी आपने लिखी थी, जिसमें राजवंश के एक विवाहोत्सव[6] का दृश्य वर्णित है। उसमें आपने सं० १६०२ वि० (सन् १८४५ ई०)

१. आपका परिचय श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (वही) द्वारा प्राप्त सामग्री के आधार पर तैयार किया गया है। —सं०

२. उन्हीं के (वही) द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।

३. इनसे जान पड़ता है कि उस समय आपकी अवस्था तीस-चालीस वर्ष की रही होगी। इस प्रकार आपका जन्म-काल उन्नीसवीं-शती की दूसरी दशाब्दी में जान पड़ता है।—स०

४. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

५. "हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'पजनेस' को एक कवित्त के लिए बेतिया के एक महाराज ने बीस हजार रुपये दिये थे।"—देखिए, 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० १८।

६. मझौली (गोरखपुर) के महाराज तेजमल्ल के पुत्र उदयमल्ल का विवाह डुमराँव (शाहाबाद) के महाराज महेश्वरबख्श सिंह के यहाँ हुआ था।—सं०

का उल्लेख किया है। उसकी कविता भटैती मात्र है। तीसरी पुस्तक 'विन्ध्यवासिनी-स्तोत्र' की रचनाएँ भी साधारण श्रेणी की हैं। वस्तुतः आप एक अच्छे कथक्कड़ चारण थे। केवल एक बानगी काफी है, जिसमें गाँव के लोगों का चित्र अंकित है।

उदाहरण

सत्य के सरूप खडा करिके करत पाप,
पाप से न डरे सत्य मन से उतारे है।
कोबिद कबिन्दन के नेकु नहिं त्रास मानै,
पुन्य को न जानै बैन अबिद उचारे है॥
कहै तोफाराय साँच बोले रिसियाय उठे,
झूठन सो नेहवान हद्द को बिगारे है।
करिके निसंक पाप आतमा उठाये धूम
देखि देखि रोम रोम डहकत हमारे है॥[1]

❋

दरसनदास

आप चम्पारन-निवासी सरभंग-सम्प्रदाय के एक संत थे।[2] निर्गुणियाँ कवि कबीर में आपकी अपार श्रद्धा-भक्ति थी। आपकी स्फुट रचनाएँ भोजपुरी में मिलती हैं।

उदाहरण

जब लग मन मोरा रहले बहेडवा,
तब लग पिया नइखे पास हो।
एक दिन मन मोरा लागल पिया से,
छुटि गइले जग संसार हो।
जगमग जगमग भइले बरिअतिया,
भइले मँड़इया बीच ठाढ़ हो।

---

१. श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (वही) से प्राप्त।
२. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), ४६।

केकरा के परिछी हम केकरा के छाड़ी,
के होइहे कंत हमार हो।
सभनी के परिछब केहू के ना छाड़ब,
निरगुन ब्रह्म अपार हो।
काम क्रोध के मारि नसावो,
छुटि गइले जम्हुआ के त्रास हो।
साहेब कबीर इहो मंगल गावेले,
गावेले दरसन दास हो।[1]

❋

दीनदयालु

आप चम्पारन-जिले के निवासी और बेतिया (चम्पारन) के महाराज बहादुर आनन्दकिशोर सिंह (सन् १८१५-३८ ई०) और नवलकिशोर सिंह[2] (सन् १८३८-५५ ई०) के दरबारी कवि थे।[3] आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले।

दीहलराम

आपका जन्म फतुहा (पटना) में हुआ था।[4] आप कसेरा (ठठेरा) जाति के थे। बचपन में ही आप मुजफ्फरपुर चले गये। जन्मान्ध होने पर भी आप अपना जातीय व्यवसाय स्वयं करते थे। आप एक अच्छे वक्ता थे। धार्मिक और सामाजिक विषयों पर प्रभावशाली भाषण किया करते थे। वक्ता के अतिरिक्त आप एक कवि भी थे। आपकी कविता के मुख्य विषय थे ईश्वरभक्ति तथा पारस्परिक प्रेम। आपकी एक

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४६-४७।

२. ये सन् १८५५ ई० में परलोकवासी हुए थे। इनका जन्म-काल अज्ञात है। तब भी अनुमान है कि सन् १८१६ ई० और सन् १८५५ ई० का मध्यभाग ही आपका जन्म-काल रहा होगा।—सं०

३. —द्रष्टव्य, बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन (बेतिया) के स्वागताध्यक्ष सेठ राधाकृष्णजी का भाषण और 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० १९।

४. श्रीललितकुमारसिंह 'नटवर' (नवयुवक-समिति, मुजफ्फरपुर) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

भक्तिपूर्ण पंक्ति लोककंठ में मिलती है—'कवि दीहल हे मन चेत करो, भजु राम सिया जिन जन्म दिया।' आपकी रचनाओं का एक संग्रह (अनुभवप्रकाश) भी छपा था, जो अब अप्राप्य है।[1]

उदाहरण

(१)

फाटा जो दूध ताहि बनत रसगुला,
अति उत्तम होत स्वाद भोग ठाकुर को लगावत है।
फूटा जो मोती ताहि भसमी बनाय करि,
रोगी को खवाय केते रोग को नसावत है।
टूटा जो कनक वस्तु मोल से बिकाय जात,
याही से लोग याको जतन करावत है।
कहै रामदीहल व्यवहार में बिचारि देखो,
फाटा फूटा टूटा तीन तौन काम आवत है॥[2]

(२)

फाटा जो टाट ताको कागज बनाय जात,
पोथी पुरान लिखत बही करे गौर है।
फूटा जो कपास ता सो बसन विचित्र होत,
सुख और सोभा अति देत ठौर-ठौर है।

---

१. इस छपी पुस्तक की एकमात्र खण्डित प्रति मुजफ्फरपुर की नवयुवक-समिति के सौजन्य से प्राप्त हुई है, जिसमें कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, कुण्डलिया, छप्पय, लावनी, घनाक्षरी आदि प्रकाशित हैं। कुछ अश्लील रचनाएँ भी हैं। कई रचनाओं में भोजपुरी भाषा का पुट भी है। उसकी दो-चार लावनियों में आपने अपना परिचय दिया है। आरम्भ और अन्त के कई पृष्ठ नष्ट हो गये हैं, अतः रचना-काल आदि के अनुमान का कोई आधार नहीं है।

फतुहां है गुरुद्वारा मेरा कसेरटोली में रहते हैं।
दानापुर पटने के बीच में बैठ ख्याल को कहते हैं॥
दोनों पट्टी बसे कसेरा कहीं कहीं पर बनिया हैं।
हर शूकर को भजन जो होता कुतरू राम भजनिया हैं॥
दंगल हुआ अखाड़े पर जो गानेवाले सब आये।
जो कछु निर्गुन हुआ वहाँ पर सोई मेरो मन भाये॥

—'अनुभवप्रकाश' (दीहलराम, विशेष विवरण अनुपलब्ध), पृ० ५९-६०।

२. वही, पृ० ४४ और ४९।

टूटा है पिनाक सिया राम से बियाही गई,
आनँद उछाह बहुत होत पौर-पौर है।
कहैं राम दीहल व्यवहार में बिचारि देखो,
फाटा फूटा टूटा तीन ऐसे सिरमौर है॥[१]

(३)

सुन्दर नारि तजे गृह मे बस बेस्या के होय दुलारत है।
भूषन बस्त्र सिगार करावत खोवत माल अमारत है।
धन नाहि मिलै गनिका को जबै गनि कै पनही दस मारत है।
तबहूँ ना तजे जड दास बने यहि कारन भारत गारत है॥[२]

(४)

को भेंटे बिछुरे कवन, नाम रूप के नास।
रामदिहल कह जो लखे, तिनको ससुर न सास॥[३]

*

द्वारकाप्रसाद मिश्र

आप 'कविरंग' के नाम से प्रसिद्ध थे।

आप शाहाबाद-जिले के पचरुखिया-ग्राम के निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे।[४] आपका सम्बन्ध डुमराँव के राज-दरबार से था। संभवतः, आप वहाँ के दरबारी कवि थे।[५]

१-२. 'अनुभवप्रकाश' (वही), पृ० ४४ और ४६।

३. वही, पृ० ३४।

४. —देखिए, श्रीगंगाशरणसिंह का 'बिहार के कुछ कवि' शीर्षक लेख—'सम्मेलन-पत्रिका'। (वही, भाग १४, अंक २, सं० १९८३ वि०), पृ० ५४।

५. राघवपुर (बिहटा, पटना) निवासी मिश्र अवधप्रसाद शर्मा, काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, (हेड-पंडित, रेलवे-स्कूल, खगौल, दानापुर, पटना) द्वारा प्रेषित ६-१०-५५ के पत्र के आधार पर। श्रीशर्माजी का अनुमान है कि आप सन् १८५५ ई० के आसपास रहे होंगे। अतः, आपका जन्म सन्-ईसवी की उन्नीसवीं शती के प्रथम चरण में हुआ होगा।—सं०

आप सिंहावलोकन लिखने में सिद्धहस्त थे। श्रीगंगाशरण सिंह[1] को काशी के किसी शिला प्रेस में मुद्रित आपकी एक छोटी-सी कविता-पुस्तिका मिली थी, जिसमें मात्र २८ छंद हैं।[2] इसके अतिरिक्त आपकी और कोई कृति नहीं मिलती।

उदाहरण

(१)

पीके बिना कबि रंग सो कादर कीन सो बादर आकरि नीके।
नीके झुके झमके झरि नीर गँभीर झकोरन झोरन जीके॥
जीके कहा डरपावन पावन सावन काम-सुधारस पीके।
पीके बिके कर जीनो भलो पै व जीने न दे धुनि दादुर पी के॥[3]

(२)

मास असाढ़ चढ़्यो कबि रंग सजो घन बाढ़ चहूँ दिसि भारी।
काली घटा चपला की छटा लखि होवे लटा मन मोद सुधा री॥
आ मोहि कादर कोन सो बादर सादर लाज को चादर फारी।
ई बरसात न मोहि सोहात भयावन रात बिना गिरिधारी॥[4]

(३)

सावन में सजनी जो सोहात सो बात नहीं बिछुरे मनभावन।
भावन है पिय आवन की ननदी दुख दे कहि बात लजावन॥
जावन ही वन देखन को कवि रंग सखी सब धूम मचावन।
चाव नहीं चुनरी पहिरों बरसा बरसे मोर प्रान नसावन॥[5]

(४)

सारी सोहात नहीं तन में कर कंकन कुंडल कानन बारी।
बारिद घेरि लियो कबि रंग सुदामिन जोति करेज निकारी॥
कारि घटा कड़कै सजनी रजनी जनु जानि परे है कटारी।
टारी बसन्त न मारी सखी यह भादव धीरज ख्याल बिसारी॥[6]

---

१. इस इतिहास के लिए खोज का काम करनेवाले साहित्यिक व्यक्तियों में ये अन्यतम हैं। ये पटना-जिले के निवासी और वर्त्तमान काल में केन्द्रीय संसद्-सदस्य तथा प्रजा-समाजवादी नेता हैं।—स०

२. 'सम्मेलन-पत्रिका' (वही), पृ० ५४।

३. वही।

४. मिश्र अवधप्रसाद शर्मा (वही) द्वारा प्रेषित।

५. उन्हीं के द्वारा प्रेषित।

६. वही।

(५)

छतिआ में खिली नवरंग-कली कबि रंग मतंगज की गतिआ।
गतिआ ई मनो मनभावन की मन-भावन सावन की रतिआ॥
रतिया नँद कंद कली बिकसी निकसी रस-भेदन की बतिआ।
बतिआ करिके मुख फेरि लियो तब काहे लगावत हो छतिआ॥[1]

※

धवलराम

आप पहले मुजफ्फरपुर-जिले मे 'काँटी' नामक स्थान के निवासी थे। पीछे माता का देहान्त हो जाने पर आप अपने भाई 'करताराम' के साथ गंडकी (नारायणी) तट के 'ढेकहाँ' (सत्तरघाट) में जा बसे।[2] आपके पिता का नाम वीरसिंह और माता का नाम फुलेश्वरी था। 'ढेकहा' मे करताराम के साथ आप भी रामनाम सुमिरते हुए मूँज की रस्सी बटकर बाजार में बेचते और स्वावलम्बन के सहारे जीवन बिताते थे।

आप एक सरभंगी संत-कवि थे। 'करताराम-धवलराम-चरित्र' नामक ग्रन्थ में आप दोनो सगे भाइयों की रचनाएँ संकलित हैं।[3]

उदाहरण

जग मे बहुत पंथ बहु भेषा, बहु मन बहु उपाय उपदेसा।
कोइ तपसी तप करे अखण्डा, कोइ पूजा व्रत नेम प्रचण्डा।
कोइ वैराग कोइ सन्यासी, कोइ पंथाई अलख उदासी।
जटा भभूति तिलक मृगछाला, छापा कण्ठी कपड़ा लाला।
यहि सब है सन्तन के लक्षण, की कछु अंब[4] ये कहिय बिचक्षण।
अवरो सन्त रहस्य अनेका, कहिये कृपा कर होइ विवेका।[5]

※

१. मिश्र अवधप्रसाद शर्मा (वहीं) द्वारा प्रेषित।
२. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ३८।
३. आपकी रचनाएँ आपके भाई करताराम की रचनाओं के साथ पुस्तकाकार प्रकाशित हुई थीं; किन्तु अब वे दुष्प्राप्य हैं।—सं०
४. यहाँ 'अंब' के बदले 'अन्य' जान पड़ता है, सम्भव है कि लिखावट या छपाई की भूल हो गई हो।—सं०
५. 'सन्तमत का सरभंग-सम्प्रदाय' (वही), पृ० १२१। इन पंक्तियों में आपने 'करताराम' से सन्तों के लक्षण पूछे हैं। लक्षण करताराम के उदाहरण में देखिए।—सं०

ध्रुवदास

आप छपरा (सारन) के निवासी थे। डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह के लेखानुसार आप १६वीं शती (पूर्वार्द्ध) में वर्त्तमान थे।[१] आपने हिन्दी में तीन पुस्तकों की रचना की थी—(१) वाणी, (२) सिद्धान्त-विचार और (३) भक्त-नामावली। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

*

नवरंगी सिंह

आप मुजफ्फरपुर-जिले के 'रीगा' नामक स्थान के निवासी थे।[२] आपने एक नवीन प्रणाली से 'सुखसागर' नामक एक ग्रंथ की रचना की थी। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।[३]

*

परपन्तबाबा

आप मँगुराहा-ग्राम (गोविन्दगंज, चम्पारन) के निवासी और[४] सदानन्दजी के शिष्य थे। सरभंग-सम्प्रदाय के एक संत तो आप थे ही, संस्कृत और ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता तथा शकुन-विचारक भी थे। मँगुराहा में एक पोखरे पर आपकी समाधि अब भी वर्त्तमान है। इन दिनों उक्त ग्राम में आपके नाम पर 'परपन्त-सेवा-समिति' नामक एक संस्था भी स्थापित है। आपने हिन्दी की निर्गुण-भक्ति-परम्परा में कुछ पदों की भी रचना की थी, जो अब अनुपलब्ध हैं।[५] आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

*

---

१. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय', (वही) पृ० ५४५।

२. बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन (सीतामढ़ी) के स्वागताध्यक्ष श्रीरामविलासजी के भाषण से।

३. 'नौरंग' नामक एक कवि की रचना 'नवरंग-विलद' श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय (गया) के हस्तलिखित-विभाग में सुरक्षित है (काव्य ३६), जिसमें नौरंग कवि की ब्रजभाषा-कविताएँ संगृहीत हैं। कहना कठिन है कि ये नौरंग कवि आपही थे या आपसे भिन्न कोई दूसरे व्यक्ति।—सं०

४. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ३६।

५. ज्ञात हुआ है कि आपके एक वंशधर (श्रीमहेश मिश्र) के पास आपके कुछ पद सुरक्षित हैं।

पूरनराम

आपका निवास-स्थान चम्पारन-जिले के 'आदापुर' नामक स्थान मे 'पुरवारी घाट' पर था।[1] आप शीतलरामजी के शिष्य थे। आपकी जो स्फुट रचनाएँ मिली हैं, उनमें हिन्दी के साथ भोजपुरी का भी सम्मिश्रण है।

उदाहरण

अब भए भोर मन जागु सबेरा।
भजन करन के इहे है बेरा हो॥
माया-मोह मे रहले सब दिन घेरा।
अंत मे कोई ना आयेगा काम तेरा हो॥
भइल विहान धुंध फाटे के बेरा।
वोइसे फाटे भरमक तन के तेरा हो॥
श्रीभीनकराम दया दीजे सतगुरु
श्रीसीतलराम का कीरपा से
आदापुर पुरबारी घाट पर
पूरनराम के परि गइले डेरा हो॥[2]

*

प्यारेलाल

आप चम्पारन-जिले के निवासी कायस्थ और बेतिया (चम्पारन) के महाराज आनन्दकिशोर सिंह (सन् १८१५-३८ ई०) और नवलकिशोर सिंह (सन् १८३८-५५ ई०) के दरबारी कवि थे।[1] आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले।

*

---

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४१।

२. वही।

३. द्वितीय बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (बेतिया) के स्वागताध्यक्ष सेठ राधाकृष्णजी के भाषण से। आपके आश्रयदाता दोनों महाराजों के समय के आधार पर अनुमान है कि आपका स्थिति-काल इसी अवधि के अन्तर्गत होगा। तदनुसार, आपका जन्म सन् ईसवी की उन्नीसवीं शती के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ जान पड़ता है।—सं०

प्राणपुरुष

आप चम्पारन के निवासी सरभंग-सम्प्रदाय के एक संत थे। आपकी स्फुट रचनाएँ भोजपुरी में मिलती हैं।

उदाहरण

कतेक दिन भरब जमुना गहरी।
घर मोरा दूर, गागर सिर भारी, सास ननद घर बड़ रगरी।
गागर फूटे, सकल कल छूटे, सास ननद घर में करे झगरी।
श्री टेकमन महाराज भिषम प्रभु, प्राणपुरुष राम गुरु के चरण पकड़ी।[1]

※

फुल्लेबाबू

आप मोनिहारी (चम्पारन) के निवासी थे। सारन-जिले के पटेढ़ी-निवासी साहित्यिक रईस बाबू नगनारायण सिंह के दरबार से आपका सम्बन्ध था। हिन्दी में आपकी कुछ स्फुट काव्य-रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं।

उदाहरण

तुम आयो नँदलाल जू, सँग लायो न दलाल।
मोल कवन बिधि कीजिए, बिनु गुन मुक्तामाल।
बिनु गुन मुक्तामाल, फूल किमि मोलहि कीजै।
जेहि नीलम उर गगन माँहि, तारा पटु दीजै।
किमि तेहि देत दुराय, सवत जेहि दै बिलमायो।
गावत प्रात बिभास, नयन मीजत तुम आयो।[2]

※

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४८।

२. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित-ग्रंथ 'दुर्गा-भक्तितरंगिणी' से। श्रीनगनारायण सिंह का स्थिति-काल सन् १८१६ से ७६ ई० तक है। इसी अवधि के अन्तर्गत आपका समय भी रहा होगा।—सं०

भुवन झा

आप चम्पारन-जिले के पदुमकेर नामक स्थान के निवासी थे।[1] आपके पिता का नाम था स्पर्शमणि झा, जो बेतिया-राज के दरबारी पंडित थे। आपने हिन्दी में बहुतेरी कविताएँ की थीं। आपकी समस्यापूर्त्तियाँ काव्य-प्रेमियों को बहुत रुचती-जँचती थीं। आपने सत्यनारायण-व्रत कथा का पद्यानुवाद भी किया था।[2] आपकी मृत्यु १३०३ फसली (सन् १८९६ ई०) के ज्येष्ठ मास में हुई थी।

उदाहरण

(१)

लोटती परजंक पैं एँडि एँड़ि चहुँ ओर
सुन्दरि सलोनी गात मानो शक्र-भामिनी।
विरह के नगारे उर-अन्तर धुधकारे भये
ताते मतवारे अँधियारे पेखि जामिनी।
झिल्ली झनकारे पिक-दादुर डारै 'भुवन'
प्रीतम विदेस कैसे धीर धरै कामिनी॥
मारि डारै मदन मरोरि डारैं दादुर
दबोरि डारै बादल दबाय डारै दामिनी॥[3]

(२)

सूझत आर न पार कहीं भवसागर घोर कठोर तरंगा।
नैया पुरानि बहै झँझरी एक केवट है मतवाल मतंगा।
कासे कहौं अब कौन सुनै कोइ घाट न बाट न सज्जन संगा।[4]
और के आस-भरोस नहीं मोहि पार करो महारानीजु गंगा।

❊

1. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वहीं), पृ० २३। कहते हैं, बेतिया राज-कचहरी के पीछे आपका अपना मकान भी था, जिसे कमना पाण्डेय नामक किसी व्यक्ति ने खरीद लिया।
2. मिथिलाक्षर में लिखी इनकी एक हस्तलिखित पोथी, आपके वंशधर श्रीराधारमण झा के पास है:—सं०
3. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वहीं), पृ० २३-२४।
4. वहीं, पृ० २४।

भेषनाथ झा

आप गंगौली (मनीगाछी, दरभंगा) के निवासी एक अच्छे नाटककार थे। आपका लिखा 'नारद-भ्रम-भंग' नामक एक नाटक प्रकाशित है। किन्तु, आपकी रचना के उदाहरण मिले नही।

❋

मनसाराम[1]

आप पहले 'साठी' (चम्पारन) के समीप 'भुसहरवा' नामक ग्राम में रहते थे, पीछे 'भटवलिया' (केसरिया, चम्पारन) में रहने लगे।[2] ज्ञात होता है कि मृत्यु के कुछ दिन पहले आप पुनः अपने पूर्व निवास-स्थान पर चले गये थे; क्योंकि आपकी समाधि वही स्थित है। आप पहले शाक्त थे, पीछे सरभंगी हुए। आपकी कुछ रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

उदाहरण

मूढ़ महिषासुर के मर्द्दिनी है महामाता
महिमा महान मही-मंडल मो मंडी है।
खूब खंग खप्पर खलक-खलक खोपड़ी ले
खलों की खलों की खलों की खाल खंडी है।
उज्वल उमंडी नव खंडों में अखंडी कृत
पापिन को प्रचंडी जाको विभुता बिहंडी है।
'मनसा' बखानी बेदबानी जगरानी जान
संत-सुखदानी जो भवानी मातु चंडी है॥[3]

❋

१. इस नाम के दो सरभंगी संत हो गये हैं, जिनमें एक सरभग-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक चनवाइन (चम्पारन) निवासी संत सदानन्दजी के शिष्य थे और दूसरे अखरा (चम्पारन)-निवासी सरभंगी संत, छत्तरबाबा के गुरु। —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ११६ और १७२।

२. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ३७।

३. वही।

महादेव प्रसाद[1]

आपका उपनाम 'मदनेश' था।

आप झाऊगंज, (पटना सिटी) के निवासी एक कवि थे।[2] आपकी निम्नलिखित रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित हैं—(१) गंगालहरी, (२) नखसिख रामचन्द्रजी, (३) मदनेश-मौजलतिका, (४) मदनेश-कल्पद्रुम, (५) संकटमोचन आरसी, (६) मदनेश-कोष, (७) तनतीम्र-ताला की तरहदार कुंजी और (८) भैरवाष्टक। आपकी रचनाओं के उदाहरण नहीं मिले।

※

माधवेश्वरेन्द्र प्रताप साही

आपका उपनाम 'माधव' था।

आप सारन-जिले के प्रसिद्ध 'माँझा'-राजघराने के थे।[3] आपके पिता का नाम था श्रीहरिहरेन्द्र प्रताप साही उर्फ हीरा साहब, जो हिन्दी के एक अच्छे कवि थे। आपके चाचा स्वामी लालसाहब भी लाल कवि के नाम से हिन्दी की रचनाएँ करते थे।[4] आपका विवाह हथुआ-नरेश (स्व०, गुरु महादेवाश्रम प्रताप साही की बहन से हुआ था। आपने हिन्दी में अनेक कविताएँ की थीं, जो अप्रकाशित हैं। आपकी रचनाओं के एक संग्रह का नाम 'माधव-मुक्तावली' है।

उदाहरण

(१)

सावन की आवन में झूला झूलवे को ठानी,
गई सखी संग साजि सुन्दर बगियान में॥
पाई तहँ साँवरे को धाई अकुलान भरी,
धरि दबकाय लाइ वाको अलियान में॥

१. इसी नाम के एक और भी साहित्यकार हुए हैं, जो पटना के बालमगंज मुहल्ले के निवासी थे और जिनका लिखा 'चन्द्रप्रभा-मनस्वी' नाटक सन् १८८४ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके प्रकाशक वे स्वयं ही थे। कहा नहीं जा सकता कि वे आपसे भिन्न व्यक्ति थे या नहीं। —देखिए, 'हिन्दी पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ५४२।

२. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० ४२२।

३. एकादश सारन-जिला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (हथुआ, सन् १९५३ ई०) के स्वागताध्यक्ष श्रीकुमार नृपेन्द्रेश्वरेन्द्र साही के भाषण से।

४. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

पाय प्रिय प्रीतम को लपटि लगाय लिन्हीं,
कर दबकाय लिन्ही माधव छतियान में ॥
काम भूले उर में उरोजन में दाम भूले,
श्याम भूले प्यारी के अन्यारो अँखियान में ॥[१]

(२)

जात रही जमुना जल को, दुति-दंतन दामिनि सो दरसै ।
मुख-अम्बुज कोमल चन्द्रप्रभा, दुइ नैनन खंजन सो सरसै ॥
कटि-किंकिनि माल प्रवाल लसै, मानो बोलनि बैन अमी बरसै ।
उत घूँघट माधव टारि दई तम तोम में चन्द्र दुरै दरसै ॥[२]

मायाराम चौबे

आप चम्पारन-जिले के 'मुसहरवा' नामक स्थान के निवासी थे।[३] आप कवि तुलाराम के समकालीन माने गये हैं। आप बेतिया (चम्पारन) के महाराज आनन्दकिशोर सिंह (सन् १८१५-३८ ई०) और नवलकिशोर सिंह (सन् १८३८-५५ ई०) के दरबारी कवि थे।[४] आपने विशेषतः स्फुट रचनाएँ ही की थी। आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

❋

१. श्रीशिवप्रसाद गुप्त (हथुआ, सारन) से प्राप्त।
२. उन्हीं से प्राप्त।
३. पं० श्रीगणेश चौबे (बँगरी, पिपराकोठी, चम्पारन) से प्राप्त सूचना के आधार पर।
४. इन दोनों बेतिया-नरेशों के राज्य-काल के अन्तर्गत ही आपका स्थिति-काल रहा होगा।—सं०

मित्रनाथ

आप दरभंगा-जिले के 'गगौली' नामक स्थान के निवासी मैथिल ब्राह्मण (श्रोत्रिय) थे।[1] उक्त ग्राम के प्रसिद्ध नैयायिक लोकनाथ झा आपके ही पौत्र थे। मैथिली में आपके कुछ पद उपलब्ध होते हैं।

उदाहरण

आज देखल हम ओगे सजनी। मुख-छवि चन्द उदित हो रजनी ॥
नयन-कमल युग अति अभिरामे। मुरुछित युवजन हनि बिसरामे ॥
कुण्डल-चिकुर कपोल सोहाए। अमिअ-तृषा नागिनि चलि आए।
श्रुति-ताटङ्क अनूप बनाए। जनु दुइ चक्र मदन-रथ आए ॥
रूप अनूप सकल अङ्ग ताही। कवि लज्जित उपमा देब काही ॥
तेहि छवि निरखि लपटु यदुराई। जनु नवघन तर बिजुरि समाई ॥
'मित्रनाथ' कवि मन दए गाई। हृदय लाए ब्रज-युवती कहाई ॥[2]

※

मिसरीदास

आप चम्पारन-निवासी सरभंग-सम्प्रदाय के एक संत थे।[3] आपके गुरु थे सीतलरामजी। आपकी स्फुट-रचनाएँ यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं, जो संतों की अटपटी वाणी में हैं और उनमें भोजपुरी भाषा का पुट अधिक है।

उदाहरण

संझा आरती निसुदिन सुमिरो हो, सुमिरन करत दिन-दिन भिनऽ हो।
धीरज ध्यान दीढ करु बाती
गुरुजी के नाम अचल कर थाती
ग्यान घ्रित सुरति घुरु बीच ब्रह्म अगिन तनु लेसहु दीप हो।
दया के थारी सारा घर चउर प्रेम पुहुप लइ परिछहु पाउ हो।
मुकरित आरती साजि के लीन्हा
धरम पुरुष परमातम चीन्हा,
अनहद नाद जहाँ हंसा गाजे
श्रीपूरनराम का चरन मे मिसरीराम संझा आरती गावे हो।[4]

---

१. 'मैथिली-गीत-रत्नावली' (वही), पृ० ८५।
२. वही, पद-संख्या ८३, पृ० ८९-९०।
३. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४१।
४. वही।

युगलकिशोर

आप गया-जिले के दाऊदनगर थाने के खुटहा नामक स्थान के निवासी थे और[1] ब्रजभाषा के एक अच्छे पूर्त्तिकार थे। स्फुट काव्य-रचनाओं के अतिरिक्त आपकी कोई पुस्तकाकार रचना नहीं मिलती। आपका रचना-काल[2] सं० १८९७ वि० (सन् १८४० ई०) बतलाया गया है। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

*

योगेश्वरराम

आप 'परमहंस बाबा' के नाम से प्रसिद्ध थे।

आपका निवास-स्थान चम्पारन का रूपवलियामठ था।[3] आपने गृहस्थाश्रम में ही रहकर भक्ति और योग-साधना में सिद्धि प्राप्त की थी। हिन्दी में आपने कुछ पदों की भी रचना की थी, जिनपर भोजपुरी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आपके पदों का एक संग्रह स्वरूप-प्रकाश नाम से प्रकाशित भी हुआ था, जो अब अप्राप्य है।[4]

उदाहरण

टूटे पँचरंगी पिंजड़वा हो सुगना उड़ि जाय।
सुगनू रहले पिंजड़वा में सोभा बरनि न जाय।
उड़त पिंजड़वा खाली हो सब देखि डेराय।
दसो दरवजवा जकिरिया हो लगले रहि जाय।
कवन दुआर होइ गइले हो तनको ना बुझाय।
सभनी भइले निरदइया हो अवघट ले जाय।
सारा रचि धरत पिंजड़वा हो ओमें अगिन लगाय।
सिरि जोगेसर दास काया पिंजड़ा हो नित चनन लगाय।
सेहू परले मरघटिया हो ओसे अगिन धहाय॥[5]

*

१. 'गया के लेखक और कवि' (वही), पृ० १४०।
२. आपका रचना-काल यदि सन् १८४० ई० था, तो आपका जन्म सन् ईसवी की उन्नीसवीं शती के शुरू में ही हुआ होगा।
३. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ५५।
४. इसका प्रकाशन चकिया इलाके के बारागोबिन्द-निवासी श्रीबैजूदेव नामक किसी व्यक्ति ने किया था।
५. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ५५।

रमाकान्त

डॉ० ग्रियर्सन का अनुमान है कि आप मिथिला के निवासी थे। आपने व्रजभाषा में कुछ गीतों की रचना की थी, डॉ० ग्रियर्सन ने जिनका संग्रह किया था।[१] पर, आपकी रचनाओं के उदाहरण मिले नहीं।

※

रमापति[२]

डॉ० ग्रियर्सन ने आपको मैथिल कवि बतलाया है।[३] आपके जीवन का विवरण और आपकी रचना का उदाहरण न मिला।

※

राजेन्द्रकिशोर सिंह

आप बेतिया (चम्पारन) के महाराज थे। आपका राज्य-काल सन् १८५५ से ८३ ई० तक था।[४] आप अपनी उदारता एवं दानशीलता के लिए बड़े प्रसिद्ध थे।[५] अतः, प्रजा ने आपको 'कलि-कर्ण' की उपाधि दी थी। आपका दरबार कवियों, पंडितों, चित्रकारों और गुणज्ञों से सदा भरा रहता था। पं० छोटक पाठक, पं० जगन्नाथ तिवारी, बाबू दीनदयाल, मुंशी प्यारेलाल, पं० नारायणदत्त उपाध्याय, पं० कालीचरण दुबे, पं० महावीर चौबे, मँगनीराम आदि आपके भी आश्रित दरबारी पंडित और कवि थे। इन लोगों की साहित्य-चर्चा से मनोविनोद करने के अतिरिक्त आप स्वयं भी कविताएँ रचते थे, पर आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।[६]

※

---

१. डॉ० जार्ज ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० ३२२।

२. दरभंगा-जिले के तरौनी ग्राम-निवासी अठारहवीं शती के प्रसिद्ध सन्त-कवि परमहंस विष्णुपुरी का सन्यास के पूर्व भी यही नाम था। यों, सन्यास के पूर्व आपके दो और नामों ('विष्णुशर्मा' और 'वैकुण्ठपुरी') की चर्चा कुछ लेखकों ने की है।—देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ५५।

३. —देखिए, डॉ० जॉर्ज ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० ३२१ और 'Journal of Asiatic Society of Bengal' (Vol. 53), P. 83.

४. 'वार्षिकी' (सम्पादक-मंडल, सन् १९६१-६२ ई०), पृ० ४९। आपको गद्दी सन् १८५५ ई० में मिली थी। उस समय आपकी कितनी अवस्था थी, इसका पता नहीं लगा। अतः, आपके जन्म-काल का अनुमान करना कठिन है।—सं०

५. आपने "आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को उनके दुर्दिन में, धन देकर पोषण किया था तथा राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' को भूमि देकर वास्तविक राजा बनाया था। कहते हैं, एकबार उन्होंने कविवर पजनेस को उनके एक कवित्त पर प्रसन्न होकर १० हजार रुपये पुरस्कार दिये थे। काशी-नरेश महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के दरबारी कवि सरदार को भी आपने कई बार सम्मानित किया था।"—वही।

६. बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीयाधिवेशन (बेतिया) के स्वागताध्यक्ष सेठ राधाकृष्णजी के भाषण के आधार पर।

राजेन्द्रप्रसाद सिंह

आप संभवतः सारन-जिला-निवासी और उक्त जिले के ही 'पटेढ़ी' नामक स्थान के साहित्यिक रईस बाबू नगनारायणसिंह के दरबारी कवि थे।[1] हिन्दी के अतिरिक्त आप उर्दू और फारसी के भी विद्वान् थे। हिन्दी में आपकी कोई पुस्तकाकार काव्य-रचना नहीं मिलती, केवल कुछ स्फुट रचनाएँ ही उपलब्ध हैं।

उदाहरण

(१)

गोर बदन अभरन-जड़ित घूँघट-पट बर झीन।
बिनु नभ घन छाया सलिल, देख परत छल-हीन॥
चलत गैल चितवति पलटि, बाँकी नैनन कोर।
रसिकन मन को बाँधती, निज लट छूटे छोर॥
गोरी नाइन पातरी, लचकि लंक गति भौन।
नैनन चित को चोरती, उरज उचकि भजि मौन॥
अधर लाल कुंचित अलक, दीरघ चख बर बाम।
दसन दाबि हँसि सैन करि, चली जात निज धाम॥[2]

(२)

तेरे दृग देखे हरि अवतरे है मीन-रूप
भृकुटी के देखे हर चाप को सँवारे है।
पंकज-से बदन लखि बिधि को अवतार भयो
बेनी को पेखि सेस धरनी को धारे हैं।
नासा बिलोकि सुक लीन्हो बैराग-पथ
अधरन को देखि अधर कृष्ण भौन वारे है।
बिहसनि ते इन्दु 'राजेन्द्र' कहे चितवन ते
चौदह भुवन मुक्ति चार पद वारे हैं॥[3]

---

१. 'दुर्गाप्रेमतरङ्गिणी' (वही) के आधार पर। बाबू नगनारायण सिंह का परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र द्रष्टव्य। उनका स्थिति-काल सन् १९१८ से ७६ ई० तक है। अतः, इसी अवधि के अन्तर्गत आपका स्थिति-काल भी जान पड़ता है।

२. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित पुस्तक 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' से।

३. वही।

(३)

कोकिला कलापी कीर खंजन कपोत लाल
नीलग्रीव चातक नभ बोलत है ए दई।
वैसे ही चमेली चीन चम्पा श्रीखंड चारु
हिमकर समीर मार विरह-ताप ते तई।
जब ही लिखि मूरत सम्भु केतु काग पन्नग की
वाही छन आवन मन-भावन की खबर भई।
भस्मासुर विष्णु राम कृष्ण रूप बाल थापि
हर्षित राजेन्द्र मंजु मंगल सज कर लई ॥[1]

(४)

कनक-सिंहासन पर राजे सियाराम लाल
गौर-स्याम मंजु रूप वैसहूँ नवीना है।
क्रीट मुकुट चन्द्रिका विराजे मनि-भूषन पट
लाजे रति-काम देख सर-धनुप भुज लीना है।
अरजी की मरजी मन मुदित विहँग देत
दोउ प्रभा के विलोकि भानु इन्दू हूँ मलीना है।
जोरे राजेन्द्र हाथ रानी सुर विहँसि कहे
सिया सोने की अँगूठी राम साँवरो नगीना है ॥[2]

(५)

जनक-नृप-मंडप में दुलह-दुलहिया सजे
राम घनस्याम सिया दामिनी नमूना है।
महामनिन मौर लसे जरकसी के बागा पट
भूपन जड़ाव मनिगुन हूँ से ऊना है।
वदन विलोकि दुति भानु इन्दु मन्द लागे
भोर भई उमरे जग मोद वढ़ा दूना है।
कहे नरनारी सुररानी ओ राजेन्द्र
सिया सोने की अँगूठी राम साँवरो नगीना है ॥[3]

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रन्थ-अनुसन्धान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित पुस्तक 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' से।
२. वही।
३. वही।

रामधनराम

आप चम्पारन-जिले के निवासी[1] और सीतलरामजी[2] के शिष्य थे। पूरनराम और मिसरीदास आपके भी गुरु-भाई थे। आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ भोजपुरी में मिलती हैं।

उदाहरण

जागहु हो मोर सुरति-सोहागिन राम-नाम-रस पागहु हो।
जगइत जागे सबद उर लागे देखइत जम्ह उठि भागहु हो।
जीवन जन्म सुफल कै लेहू सतगुरु सत चरन चित देहु हो।
सुरनर मुनि सब भाषी कहतु है ये राम नाम कै लेहु हो।
श्रीभीनकराम प्रभु श्रीसीतल जी रामधन नाम चरन चित राखहु हो।[3]

※

रामनेवाजमिश्र

आप चम्पारन-जिले के माधोपुर-ग्राम के निवासी एक सरभंगी संत थे। आपके पिता का नाम था भीखामिश्र।[4] आप अपने पिता के एकमात्र पुत्र थे। आपकी स्फुट रचनाएँ भोजपुरी मे कही-कही मिलती हैं।

उदाहरण

गुरुजी से करब अरजिया हो राम घुमरि-घुमरि।
मन दरियाव पाहुन एक अइले पाँच पचिस सँग सधिया॥
पाँच पंचिस मिलिके बिंजन बनाइले जेंवे बइठे मन-रसिया।
रामनेवाज दया कैलीं सतगुरु सहजे छुटल कुल जतिया॥[5]

※

---

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४०-४१।
२. ये सरभंगी-संत भीनकराम के बाद हुए थे। भीनकराम का परिचय 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (पृ० १४५) में देखिए।
३. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४१।
४. संतमत के सरभंग-सम्प्रदाय में ये ही 'भीखमराम' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके विस्तृत परिचय के लिए—देखिए 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १४६-४७।
५. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४१।

रामस्वरूपराम

आप झखरा-मठ (चम्पारन) के निवासी और अधिकारी थे।[१] आपके बहुत-से हिन्दी-पदों में भोजपुरी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'भजनरत्नमाला' नाम से आपने एक पुस्तिका भी प्रकाशित की थी। उसमें अनेक सरभंगी संत-कवियों की रचनाएँ हैं। आपकी रचना सरभंगी सन्तों की अटपटी वाणी से मिलती-जुलती है, जिसपर भोजपुरी भाषा की छाप स्पष्ट है।

उदाहरण

अरध-उरध में रहना संतो, अरध-उरध में रहना।
सोहंग शब्द बिचारि के ओहं में मन लाई।
त्रिकुटी-महल में बैठ के गगन-महल में जाई।
गगन-महल में अमृत टपके पीकर हंसा अघाई।
श्रीटेकमनराम[२] दया सतगुरु के टहलराम कहाई।
जन स्वरूप यह अरज करतु है संतन लेहु बिचार।[३]

*

रामेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

आप मकसूदपुर-राज्य (गया) के राजवंश के 'महाराज बहादुर' थे। अँगरेजों की ओर से आपको 'सर' की उपाधि भी प्राप्त थी। कविता में आप अपना नाम 'केशव' रखते थे।

आपका जन्म गया-जिले के उक्त मकसूदपुर नामक ग्राम में ही हुआ था।[४] आप श्रीगजाधरप्रसादनारायण सिंह के प्रथम पुत्र थे। ग्राम-गीतों के प्रति आपका असीम अनुराग था। आपने ऐसे गीतों का एक संग्रह भी प्रकाशित कराया था। आपने जिन पदो की रचना की थी, उनमें भी ग्राम-गीतो के तत्त्व ही मुख्य रूप से पाये जाते थे। गायक-समुदाय में आपके पदों का बहुत अच्छा प्रचार था। कहते हैं, आपके दरबार में विजया-दशमी, होली आदि महोत्सवों के अवसर पर जो भी संगीतज्ञ आते थे, वे प्रायः आपके बनाये हुए पद ही गाते थे। तत्कालीन नर्त्तकी-समाज में भी आपके पदों का बहुत प्रचार था। ग्रामीण नर्त्तकियो मे आज भी आपके पद बहुत प्रचलित हैं; पर उदाहरण मिले नहीं।

*

---

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४६।
२. इनका परिचय इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में द्रष्टव्य।—देखिए, वही, पृ० १२१।
३. वही।
४. 'गया के लेखक और कवि' (वही), पृ० १४०।

लहवरदास

आप चम्पारन-निवासी एक सरभंगी संत थे।[१] आपके गुरु थे भिनकरामजी।[२] आपकी जो स्फुट रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनमें भोजपुरी का पुट अधिक है।

उदाहरण

दखिन जगिरहा, उत्तर पुरनहिया
बीच में लहवरदास के कुटी।
श्रीभीनकराम दया सतगुरु जी के
हरिदम निरखो गगन त्रिकुटी।[३]

❊

वासुदेवदास

आप छपरा (सारन) के निवासी थे। डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह के लेखानुसार आप सन् १८६२ ई० में वर्त्तमान थे।[४] हिन्दी में आपकी एक पुस्तक 'रसिक-प्रकाश' (भक्तमाल की सुबोधिनी टीका) मिलती है। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

शत्रुघ्न मिश्र

आप चम्पारन-जिले के 'बसघटिया' (सुगौली) नामक स्थान के निवासी थे।[५] हिन्दी में आपने 'मन्त्रदीपिका' नामक पुस्तक रची थी, जिसमें वेद-मंत्रों की व्याख्या के साथ कुछ तांत्रिक प्रयोग भी हैं। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

❊

---

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४२।
२. इनका परिचय इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में द्रष्टव्य।—देखिए, वही, पृ० १४५।
३. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४२।
४. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ५४४।
५. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० २२।

शम्भुदत्त झा

आप दरभंगा जिले के उजान-ग्राम के निवासी थे।[1] आपने मैथिली में स्फुट पदों की रचना की थी।

उदाहरण

जय-जय आदि-शक्ति शुभ-दायिनि ! महिधर-शायिनि देवी।
सुर-नर-मुनिगन सकल सुखित मन, केवल तुअ पद-सेवी॥
हमहु शरण धए चरण अराधल, तोहि करुणामय जानी।
तइओ रहल दुख सपनहुँ नहि सुख, तकर परम होऊ हानी॥
हम सन अधम जगत नहि दोसर, जप-तप-गति नहि जानी।
अब हम मगन भेलहुँ भवसागर, गति एक तोहिँ भवानी॥
जन अपराध कएल भरि जीवन, कहि न सकिअ तत माता।
सुत शरणागत सेवक पामर, सभक जननि तों त्राता॥
दुहु कर जोड़ि अरज अवनत भए, 'शम्भुदत्त' कवि भाने।
त्रिभुवन-तारिणि अधम-उधारिणि, देहु अभय वरदाने॥[2]

※

शिवकविराय

आप शाहाबाद के निवासी और जगदीशपुर (शाहाबाद) के इतिहास-प्रसिद्ध विद्रोही वीर बाबू कुँवरसिंह के अनुज बाबू अमरसिंह के दरबारी कवि थे।[3] देश की शान पर तन-मन-धन निछावर करनेवाले शूरों के प्रशंसक कवियों में आपका नाम भी उल्लेखनीय है। पुस्तकाकार आपकी कोई रचना नहीं मिलती, स्फुट रचनाएँ भी बहुत कम मिलती हैं।

---

१. 'मैथिली-गीत-रत्नावली' (वही), पृ० १२६।
२. वही, पृ० ३४।
३. 'आज' (साप्ताहिक विशेषांक, ९ फरवरी, सन् १९५८ ई०) 'के सन् १८५७ ई० के समवर्त्ती कवि और उनका काव्य' शीर्षक लेख में। बाबू कुँवरसिंह के दरबार में रहते समय आप चालीस वर्ष से अधिक ही अवस्था के होंगे। अतः, आपका जन्म सन् ईसवी की उन्नीसवीं शती की प्रथम दशाब्दी के लगभग हुआ होगा।—सं०

उदाहरण

कसिकै तुरंग तंग चढ्यौ जब जंग पर
अंग-अंग आनँद उमंग-रंग भरिगौ।
सनमुख समर विलोकि रनधीर वीर
फौज फिरंगानी की समेटी सो कतरिगौ।
कहै 'शिव' कवि डाँटि-डाँटि कप्तानन कूँ
काटि-काटि काँकड़ा कुम्हेड़ौ-सौं निकरिगौ।
हाथ मीचि हाकिम कहत साह लन्दन सौं
हाय-हाय आफत अमरसिंह करिगौ॥[1]

※

शिवेन्द्र शाही

आपका उपनाम 'लाल साहब' था।

आप सारन-जिले के प्रसिद्ध माँझा-राज के राजकुमार और वहीं के निवासी थे।[2] मिश्रबन्धुओं ने आपको पं० जगन्नाथ दीक्षित का वंशज और महाराज बेतिया का जमातृ बतलाया है।[3] आपने हिन्दी में स्फुट-पदों की रचना की थी। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

※

शीतल उपाध्याय

आपका उपनाम था 'शीतल द्विज'।

आप सारन-जिले के शीतलपुर-बरेजा नामक ग्राम के निवासी थे। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

※

१. श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (दलीपपुर, शाहाबाद) के सौजन्य से प्राप्त।
२. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० १३२।
३. वही।

शीतलराम

आप चम्पारन-जिले के निवासी सरभंगी संत थे।[1] आपका आविर्भाव 'भिनकराम'[2] के बाद हुआ था। आपके शिष्यों में प्रमुख थे—पूरनराम, रामधन और मिसरीदास। अन्य सरभंगी संतों की तरह आपने भी कुछ पदों की रचना की थी। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

❋

श्रीधर शाही

आपका जन्म सारन-जिले के प्रसिद्ध 'माँझा'-राजवंश में हुआ था।[3] हिन्दी में आपने कुछ समस्यापूर्त्तियों की रचना की थी, जो आज नहीं मिलती।[4]

❋

सनाथराम[5]

आप चम्पारन-निवासी एक सरभंगी संत थे।[6] आपकी स्फुट रचनाएँ भोजपुरी में मिलती हैं।

उदाहरण

कहाँ गइली सहदनिया राम महरनिया देवी।
त्रिकुटी-संगम मेला-अस्नान हरदम धरीले संतन के ध्यान॥
हकनी-डकनी भूतनी-पिचसनी लिहले सँगवा साथ।
अपने जाके देवी बैठलू सिंगासन हमरो के तेजलू बगहा मठिया॥
श्री टेकमनराम[7] का मिलनी भिषम स्वामी।
सनाथा राम के देहलू बचनियाँ वरदान॥[8]

❋

१. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४०।

२. इनका परिचय इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में द्रष्टव्य।—देखिए, वही, पृ० १४५।

३. बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तृतीय वार्षिक अधिवेशन (सीतामढ़ी) के सभापति श्रीशिवनन्दन सहाय के भाषण से।

४. समस्यापूर्त्ति-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं की दुर्लभता के कारण अनेक कवियों का पता नहीं लगता।

५. इसी नाम (सनाथ) के एक और कवि की रचना मैथिली में मिलती है। उनका स्थिति-काल भी उन्नीसवीं शती, पूर्वार्द्ध ही अनुमित है :—सं०

६. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४८।

७. इनका परिचय इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में द्रष्टव्य। —देखिए, वही, पृ० १२६। भीषमराम इनके शिष्य थे।—सं०

८. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४८।

सबलराम

आप चम्पारन-जिले के निवासी एक सरभंगी संत थे। आपकी स्फुट रचनाएँ भोजपुरी में मिलती हैं।

उदाहरण

जय बरनो देवी दुर्गा भवानी देत बचन बरदानी।
असुरन मारेलू भक्त उबारेलू संतन के आगे धावेलू।
हरिजन भक्त सहज में उबारेलू, आपु तपँ महरानी।
भारत में जाके करिके लड़ाई, पाँचो पाण्डो बचावेलू।
दुरयोधन के मरदन करेलू, श्री अदेया नाम धरावेलू।
सहस्र बदन सहस्र भुजा तूरेलू सहस्रो देवी कहावेलू।
रामचन्द्र के मूर्च्छा छोड़ावेलू श्री जानकी नाम धरावेलू।
राम भिषमराम दया कैलीं सतगुरु श्री टेकमनराम[1] कहाईले।
जन 'सबल' चरन में मिलि रहि पावेले भक्ति अचल बरदानी॥[2]

❋

हरिनाथ मिश्र

आप 'कवीश्वर' के नाम से प्रसिद्ध थे।

आपका निवास-स्थान मुजफ्फरपुर-जिले के सीतामढ़ी थाने का 'शहबाजपुर' नामक ग्राम था।[3] आपकी नवी पीढ़ी के वंशधर वर्त्तमान हैं। आपका सम्बन्ध परसौनी-राज (सीतामढ़ी) तथा मकौलिया-दरबार

---

१. इनका परिचय इसी पुस्तक के प्रथम खण्ड में द्रष्टव्य।—देखिए, वही पृ० १२६। भीषमराम इन्हीं के शिष्य थे।—सं०

२. 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (वही), पृ० ४८।

३. श्रीजगदीश मिश्र काव्यतीर्थ (सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर) द्वारा दिनांक २७-११-५६ को प्रेषित एक पत्र के आधार पर।

(सीतामढ़ी) से था। हिन्दी मे 'वैद्यनाथ-निवास'[1] नामक आपकी एक हस्तलिखित पुस्तक तथा व्रजभाषा और मैथिली मे स्फुट कविताएँ उपलब्ध हैं। किन्तु, उदाहरण-योग्य आपकी कोई रचना नही मिली।

❋

हीरासाहब

आप सारन-जिले के 'माँझा' राजघराने के थे। आप स्वय तो हिन्दी के कवि थे ही[2] आपके पुत्र माधवेश्वरेन्द्र प्रताप शाही[3] भी कवि थे। आपके दरबार मे कवियो, कलावन्तों और गुणियों का बड़ा आदर था। आपकी रचनाएँ नही मिली।

१. यह पुस्तक लगभग ६० पृष्ठों की है। इसमें तीन भाषाओं—सस्कृत, व्रजभाषा और मैथिली—का प्रयोग हुआ है। इसकी कुछ पक्तियों की बानगी देखिए। रावण जब कैलास से लका ले जाने के लिए शिवजी को उठा ले चला, तब देवताओं ने भगवान शकर से कहा (महेशवाणी में)—

> "शिव-शिव कतय चललहुं।
> सग निशिचर देव-जन-हितकारि।
> ककर करितहुं जपन-पूजा के देइत फल चारि।
> काहि कामरि लै चढवितहुं आनि सुरसुरि वारि॥—शिव-शिव०॥

२. एकादश सारन-जिला हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (हथुआ, सन् १९५३ ई०) के स्वागताध्यक्ष श्रीकुमार नकुलेश्वरेन्द्र शाही के भाषण से।

३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

परिशिष्ट-१

[वे साहित्यकार, जिनकी रचनाओं के केवल उदाहरण प्राप्त हैं ।]

अग्रदास[1]

उदाहरण

धाय गोबिन्द गजेन्द्र उबारो ।
खैंचत ग्राह-ग्रहीत अपन कैं, गज डूबत हरिनाम उचारो ।
मुख नासिका डूबय लागल, चरन-कमल देखत ललचायो ।
फहर-फहर फहराय पीत पट, कमल नयन तें गरुड़ बिसारो ।
काटल फंद प्रभु चक्रधार सौं, अघमोचन प्रभुनाम तिहारो ।
'अग्रदास' पद-पंकज परसय, इन्द्र-दमन बैकुण्ठ सिधारो ॥[2]

※

---

१. (क) इस नाम के एक कवि १६वीं शती के उत्तरार्द्ध में, राजस्थान में भी हुए थे। रामभक्ति के रसिक-सम्प्रदाय में वे 'अग्रअली' के नाम से विख्यात थे। हिन्दी में उनकी दो रचनाएँ मिलती हैं— 'ध्यानमंजरी' (रामध्यानमजरी) और 'कुडलिया' (हितोपदेश, उपखाणा बावनी, कुडलिया बावनी या कुंडलिया रामायण)। इनके अतिरिक्त 'शृंगार रस-सागर' या 'अग्रसागर' नामक एक विशाल रसिक-ग्रथ भी उनके द्वारा रचित बतलाया जाता है।— देखिए, 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ३७९-८२ तथा 'सम्मेलन-पत्रिका' (मासिक, भाग ३४, स० ४-६ माघ-चैत्र, सं० २००३ वि० तथा भाग ३४,स० ७-६ वैशाख-आषाढ,स० २००४वि०), क्रमश: पृ० १००-१०४ तथा १८०-८६ ।

(ख) गया के मन्नूलाल पुस्तकालय (विहार) के हस्तलिखित ग्रन्थ-विभाग में एक हस्तलिखित स्फुट-काव्य-सग्रह (कुडलिया, काव्य १७) सुरक्षित है। उसके रचयिता भी 'अग्रदास' नामक व्यक्ति बतलाये गये हैं।—सं०

२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही), पृ० २६-२७ ।

अभिनव

उदाहरण

माइ गे अचरज देखिअ मण्डप बिच, एक गोट नयन ललाट बिच।
माइ गे सहस नयन केरि एक जन, छओ मुख देखिअ दुइ जन॥
माइ गे तीन चरन भुज छलो गोट, तीन नयन केर एक गोट।
माइ गे पसु-पक्षी चढ़ि अयलाह, भूत-प्रेत सँग लयलाह॥
माइ गे तीनू नाम एके कह, गोत्र-प्रबर ऋषि सेहो कह।
माइ गे 'अभिनव' कवि भन अजगूत, ईश्वर नहीं ककरो पूत॥[1]

※

आनन

उदाहरण

(१)

बसहा चढ़ल शिव सिर सोहय मौरी, चलल बिआहय दिवि घर गौरी।
देखइत गौरि हिआ उपजल लाजे, पसरल प्रेम उसरि गेल काजे॥
दुहुँक मिलल तनु अपरूब भाँति, राजत गिरि जनि दामिनि पाँति।
'आनन' कवि सेवक परमेशे, माधवेश समुचित गिरिजेशे॥[2]

(२)

मुगुधि मनाइनि देखि नगन वर, गाइनि रहलि लजाए।
धिक धिक सभ कह केओने कहलक, निर्दय घटकक ज्ञान।
माए बाप नहि, उर फणिपति अहि, सहजहिँ थिक समसान।
घर सम्पति सुन, एकओ ने वर गुन, कोन सुख करति भवानी।
'आनन कवि' कह, किए ने जननि सह, बिनति सुनिअ महरानी।
तीन लोक गति, गौरि उचितपति, माधवेश महरानी॥[3]

※

१. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) से प्राप्त। विवाह में गोत्राध्याय-काल का गीत।
२. उन्हीं से प्राप्त।
३. वही।

आद्याशरण[1]

उदाहरण

(१)

नूतन तमाल पट गमन मराल बाल
सुभग नवीन चम्प बदन गोराई है।
जानु जुग केदली मुकुन्द की कली-सी नख
अधर जपा-सी पद-कमल सोहाई है।
चरित मयूर पग नूपुर विहंग-ध्वनि
पिक वच देव मना मधुप लोभाई है।
त्रिविध समीर-लीला लखि जन 'आद्या' कहे
छवि-बन-अम्ब में वसन्त-रितु आई है।[2]

(२)

मातु पितु मोद ते उमा कर दीन्हो बिदा
आवत ही मन्दिर फुलाई वृषयान की।
याकी फैलो सोर चहुँओर तिहुँ लोकन में
चली सुर नारिन घन छाई बिमान की।
कौतुक निहारि करि मन में बिचार करि
जग में प्रचारि ऐसी नारी पंचवान की।
देखें चलो जाई ऐसी दूसरी न आई माई
जैसी एक आई जाई गिरि हिमवान की।[3]

※

---

१. आप पटेढी (सारन) के साहित्यिक रईस श्रीनगनारायण सिंह के दरबारी कवि थे। सम्भव है, आप स्वय भी वहीं के निवासी हों। श्रीनगनारायण जी का परिचय इसी में अन्यत्र देखिए।

२. श्रीनगनारायण सिंह रचित 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' नामक हस्तलिखित पुस्तक से, जो परिषद्-संग्रहालय में सुरक्षित है।

३. वही।

आशादास

उदाहरण

चैत चिन्ता कियो है ग्वालिनि, कृष्ण राधा साथ री।
लेहु दान प्रभु अधिक गोरस, करहु जमुना पार री॥
वैशाख राधा गेलि मधुपुर, हरि सौं कहल बुझाय री।
ज्ञान तोहरा लाज ककरा, संकट प्राण गँवाय री॥
जेठ प्रभुजी सौं भेंट भय गेल, ओहि कदम जुड़ि छाँह री।
छीनि लियो प्रभु चीर चोली, ग्वालिनि करत कलोल री॥
आषाढ़ राधा रास ठानल, कृष्ण राधा साथ री।
'दास आशा' इहो पद गाओल, राधाकृष्ण विलापरी॥[1]

*

ईश्वरपति

उदाहरण

सखि हे शिव के कहु न बुझाय। ध्रु०।
चलइक बेरि बिहुँसि हँसि ताकब, हमरहु नयन जुड़ाय॥
एक बेरि आबि एतए भए रहितथि, दुलहिन दास कहाय॥
हमर गौरि कें ओरि जोग बिहथि, खरची देब पठाय॥१॥
बड़ रे मनोरथ कयल प्रथम बर, धिआ देल अंक लगाय।
तकर निगाह हृदय बिच रखिहथि, हमरो भेलाह जमाय॥२॥
सासु मनाइनि गाइनि सभ मिलि, बिनति करथि कर जोड़ि॥
एक बेरि आँखिक बीझ मेटबिहथि, हमर आँगन बिच आबि॥३॥
सारि सरहोजि मिलि रभसि करै छनि, सुनु शिव बयन हमार।
'ईश्वरपति' इहो पद गाओल, शिव कैलास सिधार॥४॥[2]

*

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, चतुर्थ भाग), पृष्ठ २७-२८

२. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।

कलानाथ

उदाहरण

(१)

बइसल झाँखथि माइ मनाइनि, झाँखथि मन अनुमान।
मनक मनोरथ करब प्रथम बर, निक बर करब बिचारि॥
कथा सुनल घटकक मुह जइ जखन, बइसलौ निज मन मारि।
पहिने सुनिऐन्हि तिन गुन सुन्दर, भँगीआ बूढ़ भिखारि॥
भागिन माय-बाप हारि बइसल, बइसल सोदर भाय।
धिआक कर्म मे जोगिआ लिखल छल नहि अछि एकर उपाय॥
'कलानाथ' कबि पूर्बी लीखल, लिखल मेटल नहि जाय।
सुभ-सुभ कय गौरी बिआहिअ, सखि सब मंगल गाय॥[1]

*

(२)

नयन कोर भरि झाँखथि मनाइनि, देखि देखि अपन दुलारिए।
हमर कर्म धर्मवर बाउर, कोन तप चुकलि भवानि॥
केओ जनु करह पसाहनि नागरि, भूषण धरह उतारि।
हिन तह कओन बिधें हम निबहव, गौरी मोरि राजदुलारि॥
निर्धन बूढ़ द्विती बर जनिका, नहि छनि कुल नहि मूल।
तनिको एहन मनोरथ सुन्दरि गौरि मोरि रहति कुमारि॥
"कलानाथ कवि" इहो गाओल, हर कपिलेश दिनेश।
शुभ-शुभ-शुभ कए गौरि बिआहिअ, मेटत गौरिक कलेस॥[2]

*

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) से प्राप्त।

२. उन्हीं से प्राप्त।

कान्हरदास

उदाहरण

जय गंगाजी जय जग जननी, जय सन्तन-सुखदाई।
चरन-कमल-अनुराग भाग सौं, लय ब्रह्मा उर लाई।
चारि पदारथ अछि जगजीवन, वेद बिमल जस गाई।
भक्त भगीरथ उनके कारन, प्रगटि अवनि महँ आई।
तेज प्रताप कहाँ धरि वरनब, शंकर सीस चढ़ाई।
हेम-सिखर पर ललित मनोहर, उर जयमाल सोहाई।
ताकर नाम लेत जम किंकर, करुना करि फिरि जाई।
राम-नाम गंगा कलि केवल, दास और ने उपाई।
'कान्हरदास' आस रघुबर के, हरखि निरखि गुन गाई ॥[१]

❊

कुँवर

उदाहरण

चलु सखि चलु सखि माँड़व ठाम, कुस लए कें बइसल छथि राम।
तिल जल कुस लय करता दान, अपनहि जनक सुनल अछि कान।
गौरी-पूजा कयलहुँ बेस, तें अति भेला श्री अवधेस।
उठ-उठ आज करै छह लाज, बुझइत छह जे बनले काज।
लज्जित सीता उठलि लजाय, माँड़व-दिसि सभ पहुँचलि जाय।
राम दहिन भए बइसलि जाय, सभ सखि मंगल सुभ-सुभ गाय।
जनकक नयन हरख जल भेल, तिल-कुस लए कन्या दए देल।
सभ जनि गावह गीत उछाह, जय-जय सीता सीतानाह।
कुमर भनय दुहु जग पितु माय, सभ छन सभ पर रहथु सहाय ॥[२]

❊

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृष्ठ २७-२८।
२. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।

खड्गपाणि

उदाहरण

आज चतुर्थी करु हर भेल भिनसर ।
विधिकरि सेज उठाए निपाओल कोबर ।
कामिनि सिन्दुर भरल थार देलैन्हि धार ।
आँगुरि लागलि सुकुमारि चलत हर बाहर ।
पालब जुगुति बैसाओल नहाओल हे ।
कर धए लेल शुलपाणि चलल हर कोबर ।
कोवर जाए हर होम कएल घोघट देल ।
कङ्कण खोलि खिर रान्हि कि जुगुति सेराओल हे ।
गौरिक फुजल पसाहनि हँसु सुलपाणी ।
गाविअ मंगलराग जते छलि गाइनि ।
"खड्गपाणि" हरिदास इहो वर आस लेल ।
शिव सँग गौरि विवाह इहो वर माँगल ॥[1]

※

गुणनाथ

उदाहरण

किछु नहि थिर होअ' कोन विधि कि करव,
हृदय कुसुमसर - जरजर कि कहव,
केवल अवगुन आसपास लागि थरथर रे की ॥
सहजहि उपजल नेह परम प्रिय
वेकत परसपर सुख उर भए हिअ,
परवस दुर्लभ मिलन धीर नहि उर धर रे की ॥
तुअ पद अनुपम छारि लुबुधि मन
रसिक रहत केहि वनि सँ कहुखन
असमञ्जस अभिलाप लाख कत विधि रे की ॥

---

1. प्रो० रमानाथ झा (वही) स प्राप्त ।

गहि कर हेरि मुख अङ्कम भरि-भरि
चुमि मुख नयन कपोल कोर करि
निधुबन केलि बिनोद मोदमय लागि गर रे की ॥
सब गुनखानि बिवेक-बिहित अधि-
लोचन-कोर चोर चित निरवधि
करु 'गुणनाथ' कृतारथ अनुचर कबिबर रे की ॥[१]

*

चन्द्रनाथ

उदाहरण

(१)

कौतुक चललि भवन केलि-गृह, सजनी गे, संग दस चहुदिसि नारि।
बिच-बिच सुन्दरि सोभित, सजनी गे, जनि घर मिलत मुरारि ॥
कहिं षोडस कहि अभरन, सजनी गे, पहिरत अपरुप चीर।
देखि सकल रस उपजय, सजनी गे, मुनिहुँक मन नहि थीर ॥
दसन नाम दाड़िम बिच, सजनी गे, सिर लेल घोघट सम्हारि।
लघु-लघु चलै पगु दै, सजनी गे, हेरल बसन उधारि ॥
सखि सभ लैकर भवन में देलन्हि, सजनी गे, घुरि आएल सभ नारि।
कर धय पास बइसाओल, सजनी गे, हेरल बसन उघारि ॥
चन्द्रनाथ भन मन दय, सजनी गे, ई सभ बड़ विपरीति।
बयस युक्त समुचित थिक, सजनी गे, ते नहि मानिय भीति ॥[२]

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।

२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, प्रथम भाग), पृ० १४-१५।

(२)

माधव सब बिधि थिक मोर दोषे ।
बयस अलप थिक तनु अति कोमल, तें नहि दरस परोसे ॥
तुअ अभिरोष रोस हम चललहुँ, जाय सहब दुख देहे ।
सखि सब हेरि घेरि कै राखल, एखन एहेन सिनेहे ॥
काँच कली जो हरि तोड़ब, तों पुनि होएत उदासे ।
होयत कली पुनि रंग सुरंगति, दिन-दिन होयत प्रकासे ॥
निकलि सुबास आस तोहि पूरत, बइसि पिबह रस पासे ।
कछु दिन और धीर धरु मधुकर, जखन होयत सुविकासे ॥
चन्द्रनाथ भन अरज करु कामिनि, न करिय एहेन गेआने ।
दिन-दिन तोह प्रेम हम लाएब, पुरत सकल विधि कामे ॥[१]

*

चन्द्रमणि

उदाहरण

ऋतुराज समय वसन्त माधव, पहु रहल परदेश ओ ।
मदन छीन मलीन मानस, विरह वाढ़ कलेस ओ ॥
ललित लाल कपोल नासा, भ्रमर गुञ्जित केश ओ ।
हहरि हारि निहारि चउदिसि, भेल योगिनि भेस ओ ॥
आरे, परदेशी पहु परवश, पिअ विनु विसरल सव रस ।
जेठ मास कठोर वालमु, नहि रमण-सुख पावहीं ॥
सखी गाए हिंड़ोलना एक, ताहि सखि पहु भूलही ॥

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, प्रथम भाग), पृ० १७ ।

झुलए से सब झुलए रसमय, बसि कएल एहु कामिनी।
वीर नारि बिचारि मनमह, काल भेल मोहि यामिनी॥
आरे, सुनि सब नेह लगाओल, तकर उचित फल पाओल॥
असाढ़ घन घहराए चउदिसि, बरसि घन हन बून्द ओ,
पबन जोर झकोर झिंगुर, कन्त बिनु घर सून ओ।
कठिन हृदय कठोर बालमु, कठिन नेह न जान ओ,
सुमरि नेह अनङ्ग जागल, अब न बाँचत प्रान ओ॥
आरे, घुरि-घुरि जँ पहु अओताह, जिबइत नहि जिव पओताह॥
साओन सगुन बिचारि मनमहँ, वायस मधुरस बोल ओ,
नयन अञ्जनि नागिनो पर, करकि आँचर डोल ओ।
जखन घर मोहि कन्त औता, करब रास-विलास ओ,
'चन्द्रमणि' भन सुनिअ सुन्दरि, पुरल मन केरि आस ओ॥
आरे आस, पुरल मोर सब दिन, ककरहु हो नहि दुरदिन॥[1]

*

चिरंजीव

उदाहरण

(१)

मन! धरु चित लाय, गिरिजा-ईस-चरन सुखदाय।
धुम्र जटिल पीवर सुभ काय, चारि बाहु सुन्दर छबि छाय॥
सूच सिखर-हिमगिरि भल थान, गौरीशंकर करु अवस्थान।
दया दृष्टि सँ भक्तक मान, राखथि सदा करि अभय-प्रदान॥
नन्दी कार्तिक निगम बखान, गनपति अगनित करु गुनगान।
मिहिर छपाकर सेष सुजान, भैरब घरथि अनुक्षन ध्यान॥
स्रम सौ नारद बीन बजाय, 'चिरंजीव' चलु निरखू धाय॥[2]

१. प्रो० ईशनाथ झा (वहीं) से प्राप्त।
२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, द्वितीय भाग), पृ० ३५।

(२)

जय काली जय तारा भुवना, षोडशी मन भावै।
धूमावति भजु बगला छिन्ना, भैरवी सुख पावै॥
मातंगी भजु कमला माता, लक्ष्मीरूप कहावै।
दुर्गा दुर्गति-नाशिनि गिरिजा, चण्डी रूप जनावै॥
चामुण्डा भजु कौशिकी दयानी, महामोह मेटि जावै।
कामाख्या भजु विन्ध्य-निवासिनी, ज्वालामुखि जग गावै॥
गुह्य कालि मीनाक्षी विमला, मंगल गौरि देखावै।
राजेश्वरी सिद्धेश्वरि सीता, गंगा गंडकि रावै।
कौशिकि कमला वाग्वति भजि ले, 'चिरंजीव' द्विज गावै॥[1]

※

जयदेवस्वामी

उदाहरण

की सुनि कान्ह गमन कियो मदन दहत तन जोर।
चंचल नयन विलम्बित पथ चितवहु पिय तोर॥

पंथ विषाद हे सखि, श्याम गेल परदेस यो।
सून्य सेज निकन्त देखल कासे भेजव सन्देस यो॥
दादुर वन घनहि रोवं भृंग झिंगुर वाज यो।
नव नेह अंकम हृदय सालै प्रथम मास अषाढ़ यो॥

सावन सर्व सोहावन कानन बोले मोर।
तापर दक्षिन पवन वहै कठिन हृदय पिया तोर॥

---

१. 'मिथिला-गीत संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० २८।

कठिन और कठोर बालम दर्द किछु नहि जान यो।
बह पड़ायल विरह-दुख सँ काम देल अनेक यो॥
काम देल अनेक हहरत प्रान अतिसय मोर यो।
बिरह-प्रीति-समुद्र-जल में दुखित रैनि गमाव यो॥
भादव-रैनि भयावनि कारि रैनि अन्हियारि।
चित्र-बिचित्र हिंडोला झूलैं सोहागिनि नारि॥
गावि-गावि झुलावै सखी सब अधर भरि भरि पान यो।
हीन छीन मलीन पिय बिनु कड़कै पाँचो बान यो॥
दसय चाहत कारि नागिनि प्रान पाथर मोर यो।
विकलि कामिनि पहु दरस बिनु नयन झहरत नीर यो॥
शरद समय जल आसिन पन्थुक संचर मन डोल।
सूतलि धनि उठि बइसलि काग कदम पर बोल॥
बोलु कागा कदम क्योला पास कब हरि आव यो।
उर्ध्व बाहु निवास सखि सब करहिं मंगल गान यो॥
राधिका-मुख-कमल विकसित सेष सुरमुनि गाव यो।
जयदेव-स्वामी चरन बन्दहिं सरन राखु गोविन्द यो॥[1]

*

जयानाथ

उदाहरण

नवयौवन नवनागरि, सजनी गे, नव तन नव अनुराग।
पहु देखि मोर मन बाढ़ल, सजनी गे, जेहन गोपी चन्द्राव॥
बाढ़ल बिरह-पयोनिधि, सजनी गे, कैलन्हि जीवक आदि।
कत दिन हेरब हुनक पथ, सजनी गे, आब बइसलहुँ जिय हारि॥

---

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० २१-२२।

हम पड़लहुँ दुख-सागर, सजनी गे, नागर हमर कठोर।
जानि नहि पड़ल एहन सन, सजनी गे, दग्ध करत जिय मोर॥
धर्म 'जयानाथ' गाम्रोल, सजनी गे, क्यो जनु करै कुरीति।
धैरज धरहु कलावति, सजनी गे, आज करत पहु रीति॥[1]

※

जलधर

उदाहरण

सजन अरज कत द्वन्द रे, तहँ अवसर ने करिय मन्द रे।
इहो थिक सजनक रीति रे, हठहु ने तेजय पिरीति रे॥
नारिक जो थिक दोष रे, नागर के हँस लोक रे।
छमिय हमर अपराध रे, बचन कहत नहि आध रे॥
सत खण्डित कुसिआर रे, निकसल रसल पेआर रे।
से जलधर कवि गाव रे, जलधर जलनिधि पाब रे॥[2]

※

जलपादत्त

उदाहरण

जननि! अब जनु होइअ भोरि।
पूजा ध्यान एकओ नहि जानिअ, तोहर चरण गति मोरि॥
सुत अपराध कोटि जँ करइछ, माता होए न कठोर।
जओ मोर दोष लिखल वसुधा भरि, उदधि करिअ मसिघोरि॥
सब विधि आस राखल देवि तोहर, सुनु सुनु हेमंत-किसोरि।
जलपादत्त विनति करु भगवति, तोहे देवी अधम उधोरि॥[3]

※

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, प्रथम भाग), पृ० ३-४।
२. वही, पृ० ३२-३३।
३. प्रो० रंगनाथ झा (वही) से प्राप्त। तीसरी और चौथी पंक्ति में प्राचीन स्तोत्रों का भावांश है—'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' और 'असितगिरिसम स्यात्कज्जल सिन्धुपात्रे सुरतरुवर-शाखा लेखनी पत्रमुर्वी.........।'

जानकीशरण

उदाहरण

(१)

झाँकी भाँति-भाँति की बनी है महि-मंडल में,
बाला बलराम बिष्णु बगला बनवारी की।
राम की रमा की भारती की त्रिपुर-सुन्दरी की,
भुवना भैरवी की और तारा त्रिपुरारी की।
'जानकी' बखाने बहु भाँति की निहारी वारी,
राधिका रसीली छवि और सिय प्यारी की।
छकित सुरेस सेस अकथ अनूप रूप,
देखि-देखि झाँकी साँकी सैल की कुमारी की॥[1]

(२)

कोसल-किसोर चितचोर अवधेस जू के,
आये रंगभूमि छवि दूइ को दुति दीना है।
लखन-लला के साथ धनुष अरु बान हाथ,
क्रीट-मुकुट धरे माथ नवरस रस भीना है।
'जानकी' सहेट हेरी मान की दसा चहेट,
मन में बिचारो यह उपमा नवीना है।
स्याम-गौर जोड़ि दोउ निरखि मन भूलो,
सिया सोने की अँगूठी राम साँवरो नगीना है।[2]

---

१. परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथ 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' से। इसी आधार पर आप श्रीनगनारायण सिंह (पटेढ़ी, सारन) के समकालीन माने गये हैं।

२. वही।

(३)

स्याम सखी सँग राधा सोहाग सिँगार सवै सुकुमारी सँवारी।
मोतिन माँग भरी सजनी अरु भूलन को चुनि बार बगारी।
सारी पेन्हायो लगी जरतारी सो कृष्णहुँ छाड़ि निमेष निहारी।
काहि न भावत ऐसो समय ठकुराइनियाँ हरि यारी तिहारी ॥[1]

※

दत्त[2]

उदाहरण

गिरिजापति सुनु विनती मोर, सभ सुर तेजि सरन धएल तोर।
दीनबन्धु सभ देवक देव, सभक पुरल मन जे तुअ सेव ॥
अधम अन्ध हम दुर्मति मूढ, मोर कृति-कर्मक न करिअ ढूढ।
'दत्त'भनय शिव सुनु मन लाय, मोर मिथिलेसक रहिअ सहाय ॥

※

दत्तगणक

उदाहरण

नगर नारि विचारि एहि विधि वारि लेलन्हि कर दीप हे।
चलह देखय गौरि दुल्लह परिछि लेव समीप हे ॥
निरखि सकल समीप सौ हर-रूप शंकर साँच हे।
वाघछाल उघारि ताकल उगल वर-मुख पाँच हे ॥
जखन हर एक आँखि तकलँन्हि आगि धधकल ताहि हे।
नाग ऊपर जागु अचरज सभहि पड़ाइलि नारि हे ॥

१. परिषद् के हस्तलिखित ग्रन्थ-अनुसन्धान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' से। इसी आधार पर आप श्रीनगनारायण सिंह (पटेढ़ी, सारन) के समकालीन माने गये हैं।

२. दरभंगा-जिले के हाटा-ग्राम-निवासी १८वीं शती के वेणीदत्त झा भी इसी नाम से मैथिली में पद-रचना करते थे। — देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १६५-६६ ई०।

३. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।

तखन जनि-जनि आँखि ताकल झाँकि बइसलि ताहि हे।
*चन्द्रकला सौं चुइत अमीरस तैं जिउत मृगराज हे॥
एहेन बर के नग्न आनल जनिक बाघ समाज हे।
ठाम आब इहो गाम उजरत रहत ऋषि केर राज हे॥
देखय चललि लजाए शंकित केहेन उमत जमाय हे।
*बसन तन सँ बिबसन भय गेल हँसथि हर मुसकाय हे॥
फेंकल दीप समीप से हर सबहि पड़ाइल झाड़ि हे।
गंग उमड़ि तरंग फेंकल मानु बर्षा-घन फाड़ि हे॥
'दत्तगणक' इहो गाओल हर लाएल एहि ठाम हे।
शुभ-शुभ कहि कय गौरि-विवाह पुरत सभक मनकाम हे॥[1]

※

दास

उदाहरण

जन के पीर हरे, सुरसरि हे।
देश-देश केर यात्री आएल, दर्दर-क्षेत्र भरे॥
सरयू आवि मिललि संगम भय, त्रिकुटी स्थान धरे॥
ब्रह्म-कमण्डलु जटाशंकरी, विष्णुक चरण परे॥
सेवा कय भागीरथ लायल, पतित अनेक तरे॥
धर्म्मक देनी पापक छेनी, सन्तक चरण परे॥
सकल पतित कें तारल गंगा, 'दास' कियक ने तरे॥[2]

※

---

१. 'मिथिला-गीत-सग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० ४-५।
*भस्मान्धोरगफूत्कृतिस्फुटभवद्भालस्थवैश्वानरज्वालास्विन्नसुधांशुमण्डलगलत्पीयूषधारारसैः।
सञ्जीवद्द्विपचर्मगर्जितभयभ्राम्यद्वृषाकर्षणव्यासक्तः सहसाद्रिजोपहसितो नग्नो हरः पातु वः॥
(सुभाषितरत्नभाण्डागारे)

२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० ३०।

दिनकर

उदाहरण

हरिअर तरु वन, कुसुमित उपवन, पहुमन परसन, अनुछन रे की।
सब खन दुरजन, सनमन परिजन, कुबचन दह तन, छन-छन रे की॥
अनिल सरस वह, चित नहि थिर रह, मदन दहन दह, शिव कह रे की।
सब जन शशि कह, मोर मन हुतवह, लहरत लहलह, तन दह रे की॥
धकधक हिअ कर, तन दह हिमकर, कुसुम सुमाल उर, विषधर रे की।
उर दह कर पर, जनि थिक विपचुड, हरि-हरि जाएब, सुर-पुर रे की॥
हिम कमलिनि वन, सकल दहन सन, जत करपुर गन, छन-छन रे की।
'दिनकर'कवि भन, तिरहुति-पति मन, रमहु सतत छन, गुणि जन रे की॥[1]

*

दीनानाथ

उदाहरण

आजु सुदिन दिन पाओल रे, प्रसन भेल ब्रजराजे।
सुदिन दीन नयन मोर रे, फड़कँ पहुक समादे॥
सानन्द हृदय पुलक भरु रे, दीन-दुख दुरि गेल।
कतेक दिवस हरि पाहुन रे, जन्म कृतारथ भेल॥
लँ फुल-सेज आछाओल रे, वासल करपूर तमोले।
भाव भरम किछु राखब रे, वाजब वचन अमोले॥
प्रेम-हार लँ वान्हब रे, कौशल करत उपाए।
पल भरि लगो ने छाड़ब रे, राखब हृदय लगाए॥
नागरि सभ गुन आगरि रे, पहु विनु करिए समधाने।
'दीनानाथ' मोहि पाहुन रे, सभ विधि भेलहुँ सनाथे॥[2]

*

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।
२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० २२-२३।

दुखहरन

उदाहरण

सखि रे तेजल कुञ्जविहारी ॥
आएल अषाढ़ बिरह-मद मातल, नहि देखिय गिरिधारी ॥
आब केहि सँग झुलब हिंडोल, साओन तजल मुरारी ॥
भादव-यामिनि यम सम बीतल, दिवस लागय अन्हियारी ॥
आसिन बिनति करय कबि 'दुखरन', गोपिअहि भेटल मुरारी ॥[1]

※

दुरमिल

उदाहरण

दशम राशि धो जँ उपगत भेल। पाय एकादश परदेश गेल ॥
बाहर चारि जेहन जल मीन। ताहि समान हमर तन खीन ॥
आठम राशिक वेदन मूल। छठहि पाय तेसरहि समतूल ॥
नब समान हम पिय बान। आठम रहि सकुलिए नब मान ॥
मधुपुर नागरि अतिगुण जान। दोसर मति पहु पहिल समान ॥
'दुरमिल' सुकवि गणक इहो भान। राशि विचार पण्डित गुणवान ॥[2]

धनपति

उदाहरण

जखन चलल हरि मधुपुर रे, ब्रज भेल अनाथे।
विन यदुपति नहि जीउब रे, कर धूनब माथे ॥
दृग चित बदन मलिन भेल रे, सिर फूजल केसे।
नागरि नयन बरसि गेल रे, जनि जल असरेसे ॥

---

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, द्वितीय भाग), पृ० १०।
२. वही (प्रथम भाग), पृ० २१-२२।

प्रेम-परसमनि छुटि गेल रे, अचम्हित गेल चोरी।
आब जिवन नहि जीउब रे, विष पीउब घोरी॥
धनपति भन धैरज धरु रे, तोहि भेटत सोहागे।
माधव मधुपुर आओत रे, पुनि जागत भागे॥[1]

*

धनुषधारी सिंह

उदाहरण

सजन सराहें बल बपु मे सुनि है नग,
कान ते सुनो है वैसे छमा में धरा-से है।
गुनिन गुनाहें नाहे ना है भूँ माहे क्षम,
ऐगुन गुनाहै बुद्धि भाजन भऐ-से है।
देसहूँ महँ फैले खासे धर्म की ध्वजा-से नित,
अम्ब मन वासे अैसे नर अमरा-से है।
चन्द्र की प्रभा-से यश दिनकर प्रकासे तेज,
तापन तम नासे गुन ज्ञानहू के रासे हैं॥[2]

*

धर्मदास

उदाहरण

आब कि करैछि बनि, वैसू श्रवण सुनि अमृत नाम अमोल,
से घोरि-घोरि पीविअ रे की॥
एक तँ अन्हार राति, दोसर न सङ्गसाथि, यम सँ पड़ल अरारि,
कओन विधि बाँचव रे की॥

---

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, द्वितीय भाग), पृ० २३-२४।

२. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' नामक हस्तलिखित ग्रंथ से। इस कवित्त की रचना कवि ने बाबू जगनारायण सिंह की मृत्यु के शोक में की थी। ये इन्हीं के समकालीन और आश्रित भी थे। इनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र है।—सं०

अन्तर ध्यान धरु, गुरु पर सुरति राखु, ज्ञान कोठलिया दृढ़ करु,
यम सँ बाँचब रे की ॥
'धर्मदास' ई आरजि करति छथि, गुरुक चरण गहि रहबे",
यम सँ बाँचब रे की ॥[1]

※

धर्मेश्वर

उदाहरण

भादव परम भयाओन, भेल सोहाओन रे। ललना।
उपगत त्रिभुवननाथ, परम सुख पाओल रे॥
अरजही उरजल गाओल, वसन ओढ़ाओल रे। ललना।
जलधर पुष्पक वृष्टि, कर घन उर चानन - रे॥
परिजन सबहु सुमति करु, चलहु नन्द-गृह रे। ललना।
लैय सुधारस देवकी, देव बदलि लिग्र रे॥
जनमल यदुकुल-नन्दन, कंस-निकंदन रे। ललना।
यशोमति हरषि हृदय गहि, कण्ठ लगाओल रे॥
कह 'धर्मेश्वर' बालक, अति सुख पाओल रे। ललना।
गोकुल सकल छकित भेल, अरि-उर-सालक रे॥[2]

※

धैरजपति

उदाहरण

आसलता हम लगाओल सजनि गे, नैनक नीर पटाय।
से फल अब तरुनत भेल सजनि गे, आँचर तर ने समाय॥
काँच साँच पिया तेजि गेल सजनि गे, तसु मन अछै से भान।
दिन-दिन फल तरुनत भेल सजनि गे, पिया मन करि ने ग्यान॥

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।
२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० १७-१८।

सभक पिया परदेश वसु सजनि गे, आएल सुमरि सनेह।
हमर कन्त निरदय भेल सजनि गे, मन नहि वाढ़य विवेक॥
'धैरजपति' कहु धैरज धरु सजनि गे, मन नहि करिय उदास।
ऋतुपति आय मिलत तोहि सजनि गे, पुरत सकल मन आस॥[1]

※

नन्दलाल

उदाहरण

हेरि यदुनाथ यशोमति अंकम लाओल रे।
ललना, जनि पथ पड़ल परशमणि, निरधन धन पाओल रे॥
निरधन धन पावि मगन मन आनन्द उर ने समाय यो।
कहथि हरषि गंधर्व अवतरु थिकाह यदुवर राय-यो॥
पहिलहि तुरित यशोमति तनय नहाओल रे।
ललना, सुनि नन्द दगरिनि सहित धाय गृहि आएल रे॥
धाय गृहि मह आय दगरिनि, आनन्द भेल सुत मोर यो।
यदुवंश क्षीर-समुद्र सम जनि प्रगट दोसर चन्द्र यो॥
नार छेदाओन मोहर दगरिनि पाओल रे।
ललना, कंस-निकृन्तन-हेतु नन्द - गृह आयल रे॥
'नन्दलाल' कवि कैल नेहाल, गोकुल भेल सनाथ यो।
धन्य यशोदा भाग तोहर, प्रगट श्रीयदुनाथ यो॥[2]

※

---

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, प्रथम भाग), पृ० १२-१३। इसी आशय का एक पद विद्यापति का मिलता है। इस पद की कुछ पंक्तियाँ भी उससे मिलती हैं।—सं०

२. वही (द्वितीय भाग), पृ० ३८-३९।

नरसिंह दत्त

उदाहरण

दुर्गा लेखा दय दय तोर।
तीनि तीनि कय दय दय दुर्गा, लेखा दय दय तोर॥
नन्द तेरो तात यशोदा, गुरुजन तेरो भ्राता।
एक सराहिय तेरो भगवति, कर्त्ता धर्त्ता भ्रात्ता॥
और पद छाड़ि तुअ पद सेविय, तापर ऊपर मोती।
अङ्ग-अङ्ग जे ज्योति विराजय, सोती मोती मोती॥
कुण्डल डोलय वेसरि लोलय, कटि किंकिणिआँ वोलय।
दत्त नरसिंह भवानी तेरो, डोलय लोलय बोलय॥[1]

※

नाथ[2]

उदाहरण

सरस सुधाकर देखि मनोहर रे, जनि जगमग चानन राती।
उमगि उठल आनन्द हरि सौ रे, जानि गई मदन मदमाती॥
बट-वंसी-तट जाय यंत्र भूषण रे, जहँ मोहन मुरली बजाई।
सुर-नर-मुनि सभ कान शोश धुनि रे, जनि सबहु रहलि मुरछाई॥
घर गुरुजन पुर परिजन तेजल रे, लाज तेजल ब्रजवाला।
साजि चललि जहँ चन्द्रमुखी सब रे, रास करै नन्दलाला॥
कंकण-किंकिणि-नूपुर के धुनि रे, सुनि मन डोलै।
मलिन करै दुति-दामिनि रे, छवि बचन सुधाकर बोलै॥
कनक-जड़ित तन रतन-भूषण रे, विमुख बसन बर सोहे।
एकसँ एक विचित्र बने हैं रे, त्रिभुवन की छवि मोहे॥
भनहि 'नाथ' सनाथ भयो है रे, देखि-देखि मुरारी।
कुंज-कुंज हरि रोकि लियो है रे, एक पुरुष हुइ नारी॥[3]

※

१. 'मिथिला-गीत संग्रह' (वही, चतुर्थ भाग), पद्य-सं० २।
२. इस नाम से अठारहवीं शती के मैथिल कवि 'छत्रनाथ' की रचनाएँ भी मिलती हैं।—देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १२०।
३. मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, चतुर्थ भाग), पद्य-सं० १७।

परसमनि

उदाहरण

पहिरन पाट पटम्बर, कनक-लता सन देह।
चम्पक-दलि वनि झांपलि, दामिनि अनुपम गेह॥
कर पर कें लेल ढाकन, ताहि भरिअ लेल मासु।
ननदि गहिअ लेल कर धय, जतन सिखाओल सासु॥
ससुर भैंसुर गुरु भागिन, दिआ सहोदर भाय।
सभ कें सब विधि परसल, भल विधि रहल जमाय॥
पाँती फिरथि सोहागिनि, धयल ननदि कर सएह।
कवि 'परसमनि' मंगल गाओल, युग-युग ई रहु नेह॥[1]

※

प्रेमलाल

उदाहरण

अवध-नगर लागु रतन-पालना, झूलय राम-लछन सँग मे॥
चैत-चकोर समान सखि हे, मातलि आस लेल कर मे॥
निज-निज सुरति निरखि रघुवर के, पलको ने लागै मोर नयन में॥
आएल वैसाख सकल पुर-परिजन, वाल-युवा-तरुणी-तन मे॥
चानन अतर-गुलाव वासि कै, सीचय प्रभुजीक गातन में॥
जेठ मास भरि कनक-कटोरी, लय मिसरी पकवानन में॥
रुचि-रुचि भोजन करु रघुनन्दन, विजुली छिटकि रहु दाँतन मे॥
आयल अषाढ़ घेरि घन-बादरि, पवन वहै पुरिवाहन में॥
दान देहु रनवास रजा मिलि, 'प्रेमलाल' हरषै मन मे॥[2]

※

---

१. प्रो० [illegible] (वहीं) के पास।
२. '[illegible]' (वहीं, [illegible] भाग), पृ० [illegible]।

बदरीविष्णु

उदाहरण

साजि सकल सिँगार-माला, गौरि पूजय चललि बाला,
प्रिय सखी सब सङ्ग मिलि कत, रङ्ग करइत रे ॥
साजि चानन-फूल-डाला, ताहि उपर सिन्दूर माला,
अगरु-गुग्गुल-धूप दय कत, दीप चौमुख रे ॥
दछिन-चिर लय मण्डप झारल, ताहि उपर कलस राखल,
लागल बन्दनवार पाँती, भाँति-भाँतिक रे ॥
कतहुँ वीणा-वेणु बाजय, कतहुँ झालि-मृदङ्ग बाजय,
कतहुँ किन्नर गीत गाबय, भाव लावय रे ॥
'बदरिविष्णु' बिचारि गाओल, गौरि-पशुपति पूजि पाओल,
जेहन मन छल तेहन पाओल, दुःख मेटल रे ॥[1]

❋

भैअनि देवी

उदाहरण

(१)

सुन्दर स्याम सिर सोभय मौरी, कर जोड़ि जानकि पूजल गौरी।
चानन फूल अछत लेल हाथ, गौरी पुज चलली पहुक समाज।
नाना बिधि नैवेद्य बनाय, सभ सखिगन मिलि मंगल गाय।
दस-पाँच सखि मिलि बइसलि घेरि, धूप-दीप लय आरति फेरि।
'भैअनि देवि' यशोगुण गाइ, देहु अभय वर दशरथ-सुत राइ ॥[2]

(२)

जय जय दुर्गे अनुपम-रूपे, नाम उदित जगदम्बे।
तुअ पदपङ्कज सेबि चरण मन, दोसर नहि अवलम्बे।
तुअ गुणवाद करय के पाबय, लिखि नहि सकथि महेशे।
निर्गुण भए सगुण करु धारण, बिहरथि भगन अकाशे।
'भैअनि देवी' गहल चरण युग हरु न हमर दुख भारे ॥[3]

❋

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।
२. उन्हीं से प्राप्त।
३. वही।

मंगलाप्रसादसिंह

उदाहरण

दानी तू दयानी सम्भुरानी करुना को खानि,
बेदहू न जानीं और देव बरने को है।
सुर मुनि ग्यानी नित जोरे जुग पानी,
तोहि सीस को नवाय ठाढ़े भूमि पग एको है।
जो तू महरानी करु कृपा-दृष्टि मो पै आजु,
ध्यावत जो तोहि दुख टरत अनेको है।
मंगला भवानी नाम जपत कृपा-निधानि,
और कौन त्रास आस चरन हमे को है ॥[1]

*

मतिलाल

उदाहरण

आज गोकुल एक अचम्भित सुनिय आनन्दित ए।
ललना, नगर जतेक छल शोक सभक भेल खण्डित रे ॥
गृह-गृह नारि उताहुलि कखन देखब हरि ए।
ललना, परस हैत एक बेरि सुफल कय' लेखब रे ॥
तेल-उबटन लय हाथहि चललि सभ नागरि ए।
ललना, पहिरन अनुपम चीर सकल गुन-आगरि ए ॥
जाय सबहि नृप-आँगन पुछल जसुमति सौं ए।
ललना, अघ-मोचन जाहि नाम ताहि दिअ देखन ए ॥
आनि यशोमति मोहन कोर कय देलन्हि ए।
ललना, कबि 'मतिलाल' बिचारि चरण गहि धयलन्हि ए ॥[2]

*

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित आप ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित-ग्रंथ 'दुर्गा-प्रेमतरंगिणी' से। इसी आधार पर श्रीजगनारायण सिंह (पटेढ़ी, सारन) के समकालीन माने गये हैं। उनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र द्रष्टव्य।

२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० १६।

मधुकर

उदाहरण

पलटि ने आयल गोपाल माई ।।ध्रु०।।
हरि मधुपुर गेल कुबरिक बस भेल, दै गेल बिरह-जँजाल ।।
बिधि बिपरित भेल हरि मोहि तेजि गेल, दिन-दिन फिरत बेहाल ।।
चहुँ दिसि हेरि-हेरि मुरुछि-मुरुछि खसु, कौन पथ गेलाह नँदलाल ।।
'मधुकर' जौं हरि देख नयन भरि, बँसिया शब्द हिया साल ।।[1]

※

मुक्तिराम

उदाहरण

मधुकर जाय रहल हरि ओतही, फिरिनेआयल हरि ब्रज-नागरी ।।ध्रु०।।
जेठमास अरिआय सखी री, घुरुमि-घुरुमि घन घेरी लई री ।
बिकल राधिका हेरथि श्याम-पथ, कब हरि आओत मोरि ओरी री ।।
अषाढ़ मास अरिआय सखी री, चहुँदिसि दादुर शब्द करी री ।
हरि बिनु झूठ जीवन मेरो सखिया, रात-दिना पछतात रही री ।।
सावन अधिक सोहावन सखी री, उमकि-झुमकि सब झुलन चढ़ी री ।
अब के आस लगाओत हरि बिनु, मुरुछि नयन सौं नीर बही री ।।
भादव भवन भरम तेजु सखी री, सभ मिलि चलहु बैराग करी री ।
भसम लगाय खसम के हेरियु, बिछड़ि गेल हरि कौन नगरी री ।।
आसिन अवधि बितल दिन थोड़े, अब हरि आओत कौन घड़ी री ।
सब सखियन मिलि गौर कियो है, चलु जमुना-जल धसिके मरी री ।।
कातिक कंत दुरंत सौं आयल, सभ मिलि मंगल गाय रही री ।
'मुक्तिराम' धामपद देखल, ब्रज के सखी सब साथ खड़ी री ।।[2]

※

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, चतुर्थ भाग), पद-सं० ४३ ।
२. वही, (चतुर्थ भाग), पद सं० ३१ ।

मोदनाथ

उदाहरण

उतरि साओन चढ़ु भादव चहुँदिसि कादव रे।
ललना, दामिनि दमक सुनावय दादुर हर्षित रे॥
पहिल पहर जब बीतल पहरू सूतल रे।
ललना, सूतल नगरक लोक क्यौ नहिं जागल रे॥
दोसर पहर केर बिततहिँ पहरू जागल रे।
ललना, देवकी वेदने व्याकुलि की दगरिनि आनिय रे॥
एतय कत दगरिनि पाविअ बिधि सौ मनाविअ रे।
ललना, पुरबिल जनम तप चुकलहुँ तेँ दुख पाओल रे॥
जब जनमल यदुनन्दन बंधन छूटल रे।
ललना, जनमल त्रिभुवननाथ अनाथक पालक रे॥
बालक हाथ हम देखल शंख-चक्र-गदा-पंकज रे।
ललना, गर बैजन्ती-माल कान सोभै कुण्डल रे॥
जखन कृष्ण भेल गोविन्द वसुदेव लय सिधारल रे।
ललना, यमुना-नीर अथाह थाह नहि पाविअ रे॥
तखन कृष्ण भेल कोपित यमुना डराइलि रे।
ललना, छमिअ मोर अपराध पार निकँ जाह रे॥
'मोदनाथ' कवि गाओल गावि सुनाओल रे।
ललना, धनि देवकि तोर भाग प्रभु पाओल रे॥[1]

*

1. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० १८-१९।

यदुनाथ

उदाहरण

तोहरे दरस मुख छूटल सजनि गे, जखन जायब हम गामे।
तखन मदन जिव लहरत सजनि गे, की देखि करब गेयाने॥
बिसरि देव नहिं बिसरत सजनि गे, तुअ मुख पंकज पाने।
बिरह-विकल मन तलफत सजनि गे, दिन-दिन झूर झमाने॥
जों हम जनितहुँ एहन सजनि गे, हैत आन सों आने।
कथी लै नेह लगाओल सजनि गे, आब नहिं बाँचत पराने॥
भन 'यदुनाथ' सुनहु सखि सजनि गे, गुजरि हुनकर नामे।
हमर कहल बुझि राखब सजनि गे, बिधि पुराओत कामे॥[1]

*

यदुवरदास

उदाहरण

भागवत गोविन्द-पद को याद करना चाहिए।
धुन्धकारी-से अधम तर गये बैकुण्ठ-धाम॥
और बहुत ऐसे तर गये संशय न करना चाहिए।
तर गये खट्वाङ्गना पलक में एक बेरि।
कथा प्रेम से सुनकर पन्थ-जग में तरना चाहिए॥
ए राजा परीक्षित अपने मन में सोच छोड़ दे।
अब है तेरो सात-दिन हरगिज न डरना चाहिए॥
सुन के राजा परीक्षित बहुत कृतार्थ हो गये।
दास यदुवर मुक्ति पावो ध्यान धरना चाहिए॥[2]

*

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, प्रथम भाग), पृ० ३।
२. वही (चतुर्थ भाग), पद्य सं० ६८।

रंकमणि

उदाहरण

केलि-भवन नहि जायब सजनि गे, आतुर छथि मोर कन्त।
हम नागरि अति नाजुक सजनि गे, होएत जीवक अन्त।
तिल भरि पल नहिं लागय सजनि गे, सपथ करिय हम तोरे।
काच कली मोर तोड़ल सजनि गे, तौ राखय मन रोषे।
नागरि-प्रीति नहि मानय सजनि गे, पुरुषक इयेह बड़ दोषे।
'रंकमणि' भन गाओल सजनि गे, इ सुनि रहि मन गोइ।
हरि सौ नेह लगाओल सजनि गे, दिन-दिन अति सुख होइ ॥[1]

*

रघुवीरनारायणसिंह

उदाहरण

(१)

झाँकी बनी बहु भाँतिन की बर देव की देवी की संभु उमा की।
मा की विदेह-सुता की बनी ब्रजराज की औ वृषभानु-सुता की।
ताकी गिरा जब वा छबि-माधुरी मौन भई मति जानिके बाँकी।
बाँकी बनी दुर्गा की छटा 'रघुबीर' कहूँ अस झाँकी न झाँकी ॥[2]

(२)

रसना रसीली षट्रस ही लोभानी रही,
नाम के रटै बिनु होइयहीं तोहि जस ना।
केतिक सिखाय हार्यो थाक्यो बहु भाँतिन सो,
बृथा ही बके तु रहे कभूँ मेरे बस ना।
मानु-मानु अजौ 'रघुबीर' कहे बार-बार,
काहे के सहत तू सब लोगन के हँसना।
पावन जो होन चहे मानि ले सिखाव यह,
दुर्गे रटु दुर्गे रटु दुर्गे रटु कस ना ॥[3]

---

१. 'मिथिला-गीत-सग्रह' (वही, प्रथम भाग), पृ० १३-१४।
२. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित-ग्रंथ 'दुर्गा-प्रेमतरंगिणी' से।
३. इसी आधार पर आप श्रीजगन्नारायण सिंह (पटेढ़ी, सारन) के समकालीन माने गये हैं। उनका परिचय अन्यत्र देखिए।

रत्नलाल

उदाहरण

कखन कहब इहो बतिया हे ऊधो।
सगरो रइनि हम बइसि बेतीत कयल, फटय लागल मोर छतिया।
परसर देखि मनहि में वेतित कयल, नयन पड़ल कुलफतिया॥
ककरा सँ हम करब मनोरथ, जानि न पड़ल विदेसिया।
कतेक नेह छल एहि निसि-बासर, परगट भेल सिनेहिया॥
मास अखाढ़ समय ई आयल, रसहिँ भिजल मोर सरिआ।
दरस न भेल परम दुख पाओल, 'रतनलाल' कुलफतिया॥[1]

※

रुद्रनाथ

उदाहरण

पुरबिल प्रीति अयलहुँ हम हेरि, हमरा अवइत बइसल मुख फेरि।
दहिनहिं बइसलि धनि उतरो न देल, नयन-कटाक्ष जीव हरि लेल।
कमल-बदन छल मन दुइ ठाम, कोन अवगति मोर रहल ज्ञान।
आस धरिय नहिं करिय निरास, होहु प्रसन्न पुरावहु आस।
अरुन-उदय निसि रहय थोर, आब बुझल धनि स्वारथ तोर।
'रुद्रनाथ' कबि मन दय भान, तँइओ ने करि पुरुषक मान॥[2]

※

लोकनाथ

उदाहरण

लिखि-लिखि पतिया विप्रहि दीजै तुरन्त द्वारिका जाहु यो।
देवहु हे ब्राह्मन अन धन लक्ष्मी और सहस्र धेनु गाय यो॥

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।
२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, प्रथम भाग) पृ० ३३-३४।

देवहु हे ब्राह्मन पैरक नूपुर गाराक मुक्ताहार यो।
एक दिवस विप्र अनतहि रहिहह दोसरे सागर-पार यो॥
कृष्ण लेवाय तुरंत तो अविहह जब होयब दास तोहार यो।

× × × ×

दै पतिया सब बात जनाओल ब्राह्मन ठाढ दुआरि यो॥
खन बाँचथि खन हृदय लगावथि खन पूछथि निज बात यो।
पाछा सँ बलभद्रहि आयल भगवन कयल गोहारि यो॥

× × × ×

चललि खसी सब गौरि पुजावय रुक्मिनि मन पड़ि आव यो।
हमरा लै कृष्ण कत अओताह हम धनि परम अभाग यो॥[1]

*

वंशीधर

उदाहरण

जखन चलल गोपीपति रे, गोकुल भेल सूने।
बिलपति नारि बधू-ब्रज रे, कयलन्हि हरि खूने॥
घुरुमि-घुरुमि घन घहरय रे, हहरय मोर छाती।
चमकत चपल चहूँदिसि रे, कत लीखब पाँती॥
चानन हृदय दगध करु रे, आओर बनमाला।
उछलि-उछलि मन्मथ मोहि रे, मारय उर भाला॥
अनल अनिल अन्तक जनि रे, जिव करय अभिघाते।
कोकिल कुहुकि-कुहुकि कत रे, मारय मिठ बाते॥
कर सौं ससरि-ससरि खसु रे, बालावलि भूमी।
हरि-हरि कहथि खसथि महि रे, बाला घुमि-घूमी॥
भन 'वंशीधर' बिरह तजु रे, बिरहिनि ब्रजनारी।
मन जनु करिय बेयाकुल रे, तोहि भेंटत मुरारी॥[2]

*

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।
२. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, द्वितीय भाग), पृ० २४-२५।

विप्र

उदाहरण

हे मनाइनि देखह जमाय। नगर-निकट हर पहुँचल आय ॥
नगर-निकट हर-बरिआत साजल, चलल हेमत-द्वार ओ।
भूत-प्रेत-पिसाच हुलसित, डिमिक-डामरु बाज ओ।
आगे माई, डामरु लेल कर लाय। त्रिसुल खट्वांग लेल सँग लाय ॥
जोगिनि-गन्न कत ज्ञान बकत, मिलत हेमत-समाज ओ।
कड़ताल-झालि-मृदंग झमकत, उठत अनहद तान ओ।
आगे माई, सिर गहु सुरसरि-धार। बिभुति बसन बरनय के पार ॥
हेमत बर जेहि उन्मत्त लाओल, भूत-प्रेतक साथ ओ।
हरखि सखि सभ बेदि धावय, देखत हरक बिबाह ओ।
आगे माई, बसहा भिरल पलान। सखि सभ, देखि-देखि मनहि मलान ॥
हरक कर धय लेल कन्या, चलल कोबर नार ओ।
'विप्र' कवि इहो भिखम गाओल, भेल हरक बिवाह ओ ॥[1]

*

विन्देश्वरनाथ

उदाहरण

सुद्ध समय सकल निरायल, रहि गेल दिन दुइ चारि।
आकुल अधिक मनाइनि झाँखथि, अब धिया रहलि कुमारि ॥
ओहि अवसर-बर आनल हेमँत ऋषि, सुन्दर अति सुलपानि।
नगर-नारि सभ देखि मगन भेलि, बड़ तप पाओलि भवानि ॥
भालरि सिर दय नारि नमाओल, काछुक पिठ लेसु दीप हे।
ठकबक देखि हर अकबक भय रहु, हसल सकल बरिआति हे ॥
गौरि धरय हर चलल कोबर घर, पगु पर सिन्दुर-धार हे।
पाट-बसन लय सखि सभ झाँपल, बैसलि राज-दुलारि हे ॥

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।

सारि-सरहोजि-सार सभ अयलन्हि, छेकल कोबर-दोआरि हे।
गौरि-कर टारि सारि-कर धयलन्हि, हँसल-सकल पुरनारि हे॥
माँडब आबि बैसल हर हरखित, भय गेल कन्या-दान हे।
गौरि उचित बर पाओल सदाशिव, भनहि बिन्देस्वरनाथ हे॥[1]

❋

वृन्दावनविहारीलालशरण सिंह

उदाहरण

सखि री लखु अद्भुत चरित, सिय राघो की आज।
कर सोहे सर-धनु रुचिर बन्दित सुरन समाज।
बन्दित सुरन समाज मध्य बपु है तारा की।
नारद सेष महेश थक्यो कहि-कहि जस जाकी।
कहे बृँदावन कहत बनै नहिं आवै लखि री।
लोचन जुगल चकोर चन्द्र-मुख तजै न सखि री॥[2]

❋

शम्भुदास

उदाहरण

हे रघुनाथ विस्वम्भर स्वामी, कारन कोन फिरय बन में।
साओन सत्य कैल राजा दसरथ, हरष भेल केकयी-मन में।
बिकल भेल नर-नारि अवध केर, रोदन करे जननी घर में।
भादव मास ठाढ़ तरुवर तर, बुंद-प्रहार लागय तन में।
निसि अन्हियारि कठिन अति यामिनि, दामिनि दमसि रहै घन में।

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।
२. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रन्थ अनुसंधान-विभाग में संगृहीत हस्तलिखित पोथी 'दुर्गाप्रेमतरंगिणी' से। इसी आधार पर श्रीनगनारायण सिंह (पटेढ़ी, सारन) के समकालीन माने गये हैं। उनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र द्रष्टव्य—सं०।

आसिन धाय चढ़ल मृग मारिय, सीता सहित लछुमन सँग में।
मूर्छित खसु मृग राम-सर-पीड़ित, सब्द सुनल सीता कानन में।
कातिक कठिन भूप अति रावन, सीता हरल ओहि अवसर में।
'शंभुदास' कहना करु सजनी, भरत जपै पुर-परिजन में ॥[1]

※

शिवदत्त

उदाहरण

हम ने करब वर बूढ़ हे राजा।
तीनि भुवन फिरि वर जोहि आनल जाहि दोसन सभ गूढ़ ॥
एहि तह उचित मन मोर सुन्दर कतेक सहब मन पीर।
राजकुमारि भिखारि बिआहत सुमरि नैन ढर नीर ॥
देखि नगन वर नगर सगर हँस की देब उत्तर ताहि।
हिअ मोर साल गौरि मुख देखि देखि अब हम होएब बताहि ॥[2]

※

श्याम[3]

उदाहरण

हे मनाइनि देखु जमाय, शिव-शंकर बर पहुँचल आय।
साजि लेल बरिआत शंकर, भयंकर राज ओ।
भैरवगन के संग लेलन्हि, हेमत-द्वारा लाग ओ।
आगे माई, सखि सभ पहुँचल आय, हर-मुख देखि सभ रहलि लजाए।
आबि नारद सभ बुझाओल, सुनिअ सभ मिलि बात ओ।
ई दिगम्बर के ने जानय, तीन लोकक नाथ ओ।

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० १०।
२. 'मैथिली-साहित्यक इतिहास' (वही), पृ० १६२-६३।
३. सहरसा जिले के परसरमा-ग्राम-निवासी सोलहवीं शती के सोन कवि के वंश में भी इस नाम के एक कवि हो गये हैं। —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ७०।

आगे माई, सखि सभ पहुँचल आय, के करिहें माइ एहन जमाय।
नगर-नारि हँकारि आयल, साजि लेल दिप बारि ओ।
हरखि कें सभ चलँलि कामिनि, जनु परसमनि पाब ओ।
बसहा पर हर भस्म घोरि-घोरि, बिभुति हेम सिर राज ओ।
भुजग डोरी डाँर सोभित, डिमिक-डमरू बाज ओ।
आगे माइ, नील बघम्बर लेल, हरखित भय शिव घोघट देल।
'श्याम कवि' इहो गाबि मन दय, सुनिअ सब मिलि बात ओ।
ई दिगम्बर के ने जानथि, तीन लोकक नाथ ओ ॥[1]

※

श्रवणसिंह

उदाहरण

जय कमलनयनी कमल कुच युग, कमल चँवरनि शोभिता।
कमलपत्र सुचरण-राजित, दैत्य-दल-मद-गञ्जिता ॥
अष्ट भुजबल महिष-मर्दिनि, सिहवाहिनि चण्डिका।
दाँत खटखट जीभ लहलह, श्रवण-कुण्डल-शोभिता ॥
शूल कर अरघङ्ग शङ्करि, नाम आदि-कुमारिका।
'श्रवणसिंह' प्रसाद माँगथि, उचित दिअ बर देविका ॥[2]

※

सनाथ

उदाहरण

अवधि-मास छल माधव सजनि गे, निज कर गेलाह बुझाय।
से दिन अब निअरायल सजनि गे, धैरज धइलो ने जाय ॥
अति आकुलि भेलि पहु विन सजनि गे, सुन्दरि अति सुकुमारि।
उकथि हिया पथ हेरय सजनि गे, अजहुँ न आयल मुरारि ॥

१. प्रो० बैद्यनाथ झा (वही) से प्राप्त।
२. इन्हीं से प्राप्त।

खन-खन मन दहो दिसि सजनि गे, बिरह उठय तन जागि।
से दुख काहि बुझायब सजनि गे, बइसब कँकरा लग जाय॥
हरि-गुन सुमरि बिकल भेल सजनि गे, कोन बुझथ दुख मोर।
जों 'सनाथ' कवि गाओल सजनि गे, आओत नन्दकिसोर॥[1]

*

सहस्त्रराम

उदाहरण

जखन सुधाकर बिहुँसल सजनि गे, हिया दगध करु मोर।
सरद-निसाकर ऊगल सजनि गे, बाढ़ल बिरह तन जोर॥
राजिब केसब भूषन सजनि गे, आयल पहुक समाज।
कपट सुतल पहु पाओल सजनि गे, 'तेजल सकल मन लाज॥
मधुर बचन हँसी पुछलन्हि सजनि गे, किय पहु रहलहुँ रूसि।
तखन पिआ हँसि बाजल सजनि गे, दीप बराओल फूँकि॥
'सहस्त्रराम' भन मन दय सजनि गे, पुरल सकल मन काम।
पहु सँग सुन्दरि मुद भरि सजनि गे, सोभित चारू याम॥[2]

*

सुकवि

उदाहरण

(१)

उखम-बिखम गेल, जलद समय भेल, पहु न मिलन देल ननदी,
नहि ओहि देश पावस रे की॥
उमड़ि-घुमड़ि घन, हरिअर तरुवन, झूरः हमर मन, ननदी,
अबला जनम अकारथ रे की॥
काजर सम मेह, ताहि तड़ित रेह, सुमरि-सुमरि गेह, ननदी,
धरमहीन पहु तूलहु रे की॥

---

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, प्रथम भाग), पृ० ५।
२. वही, पृ० ६।

उमड़ल यौवन, सघन कदम-बन, खन-खन पिक भन, ननदी,
श्रवण-नयन दिअ दाने रे की ॥
सरस कदलि पह, दुसह पवन बह, ई कह निरबह, ननदी,
आब हम यमघर-पाहुन रे की ॥
भ्रमर भमय रह, कुलिस कुसुम सह, 'सुकवि' केओ कह, ननदी,
दुसह बिरह जिब मारय रे की ॥[1]

(२)

भजिअ दिगम्बर शङ्कर बुढवा, तजिअ अपन दुरमति मन मुढवा।
जनि डर सुभट सुभट-जम, सुनि-सुनि हॅटकय रे-रे की ॥
तीन नयन मुख पाँच बयनमा, स्वेत बरन बघछाल सयनमा।
गरल भरल अछि घट-घट, सुधि-बुधि अँटकय रे की ॥
भसम-घटित अति कोमल अङ्गा, सिर सोभित अघहरिनि गङ्गा।
बिकट भुजङ्गम छहछह, जहँ-तहँ लटकय रे की ॥
रुचिर रतन ससि भाल बिराजय, रुण्डमाल तिरपुण्ड सुछाजय।
रटय 'सुकवि' जन झट-झट, चित नहि खटकय रे की ॥[2]

❋

सुकविदास

उदाहरण

(१)

स्याम निकट नै जायब हे ऊधो ॥
बरषा-बादरि-बुँद चुअतु है, जमुनहि जाय नहायब ॥
तीसिक तेल-फुलेल बनतुहै, से नहि अंग लगायब ॥
मधुपुर जायब कलम मँगायब, तरुअरि पत्र लिखायब ॥
हरि मधुपुर गेल कुबरिक बस भेल, हम सखि भसम लगायब ॥
'सुकविदास' प्रभु तोहर दरस के, हरिक चरन चित लायब हे ऊधो ॥[3]

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।

२. वही। संकलयिता प्रो० झा के लेखानुसार उक्त दोनों पदों में यद्यपि 'सुकवि' के नाम हैं, तथापि ये कोइलख (दरभंगा)-निवासी पं० जीरखन झा (निधि कवि) की बहन के बनाये हुए हैं। —सं०

३. 'मिथिला गीत-संग्रह' (वही, द्वितीय भाग), पृ० ७।

(२)

सून्य भवन भेल मोर स्याम बिनु ॥ध्रु०॥
के मोहि अश्रोताह चारु दिसा सौ, लपकि-झपकि लेबो कोर।
मधुर बचन मोहि के सुनाग्रोत, किनक चुमब दुनू ठोर॥
के मोर लग्रोता पर घर-घर सौ, दधि-माखन घृत घोर।
ब्रजक सखी सब धूम मचावै, किनका कहब हम चोर॥
सुसना संग सखा सब खेलत, करै आँगन में सोर।
कृष्ण-कृष्ण कहि काहि' पुकारब, कखन होयत अब भोर॥
'सुकविदास' प्रभु जसुमति बुझावथि, जौं सुत हयताह तोर।
कंस मारि पलटि गृह आग्रोत, श्री-मुख-चन्द-चकोर॥[1]

*

सुजन

उदाहरण

तोहँ प्रभु अति मतिमान रे। हम अतिशय अज्ञान रे॥
होएत बहुत अपमान रे। करिअ न हृदय मलान रे॥
तुअ गुन कि कह बखान रे। अवगुन धरिअ न कान रे॥
बहुत 'सुजन' कवि भान रे। हमहु चाहिअ सुखदान रे॥[2]

*

सुवंशलाल

उदाहरण

चलह गौरिवर परिछि आनह गीत-नृत्य करैत हे।
आगु कलस चोआ-चानन धूप-दीप बरैत हे॥
जनिक जे मन जाहि भावय गौरि होइतिहि तृप्ति हे।
उठत गंग-तरंग सिर पर रंग-रभस करैत हे॥
बसहा पऊपर चौदिसि डोलथि रुद्रमाल जपैत हे।
अंग-अंग बिभूति राजित भंग लय सिव फँकैत हे॥

---

१. प्रो० ईशानाथ झा (वहा) से प्राप्त।
२. वही।

बाघ-सिंह-सिआर गुजरत भूत-प्रेत नचैत हे।
मारु कटकहिं पाग उजरु एहेन बूढ लयलैक हे॥
छल मनोरथ गौरि बिआहब बीधि के करतैक हे।
'सुबंसलाल' इहो पद गाओल पुरत सभक मन-काम हे॥[1]

*

सेवकजन

उदाहरण

हम ने जिउब बिनु राम, जननि। हम ने।
राम-लखन-सिय बन कँ गमन कैल, नृपति तेजल निज धाम।
होइतहि प्रात हमहुँ बन जायब, जहाँ भेंटत सीताराम॥
कपटी कुटिल बसु जाहि नगर में, आगि लागओ ओहि ठाम।
माता-पिता हम एको ने सेवल केवल सीताराम॥
हे माता तोहि बेरि-बेरि बरजल, भेल बिधाता बाम।
सुर-नर-मुनि सब अजस देल तोही, भेल घटी तोर काम॥
हे माता तों साँपिन भेलह, के लेतहु तोर नाम।
'सेवकजन' भन राम-दरस बिनु, आब जिवन कोन काम॥[2]

*

हरिदत्तसिंह

उदाहरण

जोगिया एक देखल गे माइ, अनहद रूप कहल नहि जाइ।
सिर बह गंगा तिलक सोभ चन्दा, देखि सरूप भेटल दुख-धन्दा।
ओहि जोगिया लय बरती भवानी, हेमत आनल बर कोन गुन जानी।
पाँच बदन तीन नयन विसाला, बसन-बिहीन ओढ़थि मृगछाला।
'हरिदत्त सिंह' कयल उपचारा, गौरीशंकर उचित सिगारा॥[3]

*

---

१. 'मिथिला-गीत-संग्रह' (वही, तृतीय भाग), पृ० ५।
२. वही पृ० २६।
३. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।

हरीश्वर

उदाहरण

सखि ओएह यती, जनिका घर छन्हि घरनि सती।
दक्ष-सुता तन-त्याग कयल जब, तब हर भेलाह उदास मती।
तेसर नयन क्रोध कय हेरल, ताहि भसम भेल रतिक पती।
बसहा चढ़ल हर पटत दिगम्बर, भाँग-झोरा हर थिकाह यती।
उर-गृम-हार साँप फुफुकारय, देखि पड़ाइलि सभ युवती।
भूत-बेताल संग बरिआतिअ, ओढन बसन नहि एकओ रती।
हुनका माय-बाप नहि परिजन, कतय रहति गए पारबती।
से सुनि मनाइनि मनहि बिकल भेलि, किए देल ओहे बिधि सोच अती।
नारद-बचन उमा तप कयलैन्हि, तनिक होयत गए कओन गती।
गौरि कयल जत ब्रत तत भेल परिणत, फिरथि मसान के निछती।
तीनि भुवनपति इहो बर सुन्दर, चरन 'हरीश्वर' कर बिनती ॥[1]

❋

हेमकर

उदाहरण

आस लगाय गौरि हम पोसल, दस सोआ दूध पिआय हे।
हेमत उमत भेल सेहो रे बेकत भेल, से सुनि किछु ने सोहाय हे।
कयलनि रबि-ब्रत आओर एकादसि, की भेल माघ नहाय हे।
ई सभ गुनि-धुनि हम न करब माइ, हमरा नहि निरबाह हे।
कथि लय कन्त-ब्रत आओर कठिन ब्रत, हुनका बाउर नाह हे।
ई सभ जप-तप बिहि बिरहाओन, बुढ़ बर आयल तुलाय हे।
सम्पति मध एक बूढ़ बरद छैन्हि, दुइ छैन्हि भसमक झोरि हे।
भूत-प्रेत संग किलकिल करइन्ह, किय रे जायत गौरा खाय हे।
भन 'हेमकर' कवि सुनिअ मनाइनि, दृढ़ करु अपन गेआन हे।
ई बर थिकथि त्रिभुवन-ईस्वर करु गए मंगल गान हे ॥[2]

❋

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (वही) से प्राप्त।
२. उन्हीं से प्राप्त।

परिशिष्ट-२

[अन्यप्रान्तीय साहित्यकार, जिनका कार्यक्षेत्र बिहार रहा है।]

दामोदर शास्त्री सप्रे

आपका जन्म सं० १९०५ वि० (सन् १८४८ ई०) में, पूना-नगर (महाराष्ट्र) मे हुआ था।[१] आपके जीवन के अनेक वर्ष बिहार में बीते थे। बिहार आपकी साहित्य-सेवा का क्षेत्र रहा और आपकी कई रचनाएँ पटना के खड्गविलास प्रेस से ही निकली थीं।

आप बचपन मे बड़े नटखट थे। पढ़ने-लिखने में आपका मन नही लगता था। जब आपने किसी प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर ली, तब आपके पिता ने आपको ऋग्वेद-संहिता पढ़ाना चाहा; किन्तु उससे आपकी अरुचि देखकर उन्होंने आपको 'पद्महस्ती गुरु' के सुपुर्द कर दिया। उनके निकट रहकर कुल सवा वर्ष में ही आपने रूपावली, समासचक्र, कोश और काव्य की अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली। उसके पश्चात् व्यक्तिगत रूप से आपने कुछ अँगरेजी का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। लगभग १७ वर्ष की अवस्था में आप विद्योपार्जन के लिए काशी चले आये। काशी मे आकर आपने सर्वश्री राजाराम शास्त्री कार्लेकर, राजाराम शास्त्री बोडस तथा रामशास्त्री खरे के यहाँ संस्कृत-साहित्य के विभिन्न विषयों का अध्ययन किया। वस्तुतः, काशी मे आने पर ही आप अध्ययन की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त हुए। वहाँ आपने एक नाटक-मंडली की भी स्थापना सन् १८७६ ई० में की थी और उसी माध्यम से अनेक हिन्दी-नाटक खेले थे।[२] काशी में श्रीढुंढिराज शास्त्री के माध्यम से आपका परिचय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से हुआ, जिसके परिणामस्वरूप आप उनके सरस्वती-भवन के कुछ दिनों तक प्रबन्धकर्त्ता भी रहे। इसके पश्चात् ही आप बिहार-शरीफ (बिहार) के एक हाइस्कूल में हेडपंडित होकर चले आये। बिहार मे आने पर ही आपका परिचय साप्ताहिक 'बिहार-बन्धु' के जन्मदाता पं० मदनमोहन भट्ट से हुआ। उन्ही के अनुरोध पर आप सन् १८७६ ई० में उक्त स्कूल का काम छोड़कर बाँकीपुर-स्थित 'बिहार-बन्धु' प्रेस[३] को सुशोभित करने लगे। आपके सम्पादन-कौशल से साप्ताहिक 'बिहार-

---

१. 'स्व० बाबू साहिबप्रसादसिंह की जीवनी' (वही), पृ० १६।

२. बिहार में रहते समय भी आपने एक नाटक-मण्डली स्थापित की थी, जिसमें आपके अतिरिक्त पंडित केशवराम भट्ट, पंडित साधोराम भट्ट, बाबू शिवशरण लाल (डुमराँव-राज्य के मैनेजर), आरा के वकील, बाबू श्यामनन्दन सहाय (बाबू व्रजनन्दन सहाय 'व्रजवल्लभ' के पितृव्य) आदि का भी पूर्ण सहयोग था।—देखिए 'श्रीराजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रंथ' (आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा, सं० २००६ वि०), पृ० ४४६।

३. यह प्रेस सन् १८७४ ई० में, बाँकीपुर (पटना) में खुला था।—सं०

बन्धु' की मर्यादा बहुत बढ़ी। उक्त पत्र का कुछ दिनो तक सम्पादन करने के पश्चात् आप उदयपुर (राजस्थान) चले गये और नाथद्वारा (उदयपुर) से सस्कृत मे प्रकाशित एक मासिक पत्र 'विद्यार्थी' का सम्पादन करने लगे। उदयपुर से आपका पत्राचार बाबू रामदीन सिंहजी से बराबर होता रहा। जबतक आप उनके खड्गविलास प्रेस मे थे, वे आपका बड़ा आदर करते थे। उन्होने आपसे 'राजतरंगिणी' का हिन्दी-अनुवाद कराया था, जिसकी अप्रकाशित पाण्डुलिपि खड्गविलास प्रेस में पड़ी रह गई।[१] आपने स्वय अपना वृत्तान्त कई यात्राओं में सविस्तर लिखा है। आपकी दो शादियाँ हुई थी, जिनमे प्रथम से आपके एक पुत्र भी था, जो असमय काल-कवलित हो गया। आप श्रीनृसिह देव के उपासक थे तथा सितार भी बहुत अच्छा बजाते थे।

आप एक काव्य-मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपने स्वयं लिखा है—'कितने उस समय के मेरे प्रथम-प्रथम के विषय 'कवि-वचन-सुधा', 'हरिश्चन्द्र-मैगजिन' तथा 'बाला-बोधिनी' में निकलेंगे।[२]

मिश्रबन्धुओं ने नाटककार के रूप में आपका स्मरण किया है।[३] आपके लिखे सस्कृत-हिन्दी के अनेक ग्रन्थ खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित हुए थे। उनमें प्रमुख के नाम इस प्रकार हैं—(१) नियुद्ध शिक्षा (उपयोगी-कला)[४], (२) मेरी पूर्व-दिग्यात्रा (देश-दर्शन)[५], (३) मेरी दक्षिण-दिग्यात्रा (देश-दर्शन)[६], (४) रामायण-समय-विचार (विभाषा-साहित्य का अध्ययन)[७], (५) मेरी जन्मभूमि-यात्रा (देश-दर्शन)[८], (६) बालखेल या ध्रुवचरित्र (नाटक)[९], (७) चित्तौरगढ़ का इतिहास (इतिहास)[१०], (८) लखनऊ का इतिहास (इतिहास)।[११], इनके अतिरिक्त आपके कुछ और ग्रंथों के भी नामोल्लेख मिलते हैं—(१) रामलीला, (२) मृच्छकटिक, (३) राधामाधव, (४) मै वही हूँ, (५) संक्षेप रामायण[१२], (६) भाषादर्श बाल-व्याकरण, (७) नारायणवली[१३]।

---

१. 'हरिऔध अभिनन्दन-ग्रंथ' (वही), पृ० ५२०।
२. 'मैं वही हूँ' (दामोदर शास्त्री सप्रे, प्रथम सं०, सन् १८८३ ई०), पृ० ५०।
३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, भाग ३), क्रम-सं० २२५५, पृ० १२३०।
४. प्रकाशन-काल सन् १८८२ ई०।
५. ,, ,, १८८५ ई०।
६. ,, ,, १८८६ ई०।
७. ,, ,, १८८८ ई०।
८. ,, ,, १८८८ ई०।
९. ,, ,, १८८९ ई०।
१०. ,, ,, १८९१ ई०।
११. ,, ,, १८९७ ई०।—देखिए, 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ४७६।
१२. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही), पृ० १२३०।
१३. 'मैं वही हूँ' (वही), पृ० ५०। इन ग्रंथों के अतिरिक्त आपने 'स्मृत्यर्थदीपिका' (दो खण्डों में), 'देववाणी' (दो खण्डों में) तथा 'विष्णुपदी' नामक ग्रंथ भी लिखे थे; किन्तु वे पूरे न हो सके। —सं०

उदाहरण

गद्य

काशी विश्वेश्वर की दया और श्रीगङ्गामाता की प्रीति से अन्ततः हम सब, प्रयाग से पाँचवें दिन प्रभात में ही श्रीविश्वनाथ नगरी में आये, और उसकी विलक्षण रचना देख चकित हुए। अहाहा, काशी का वर्णन कौन करेगा ! इतना काशी खण्ड बड़ा भारी ग्रंथ करके भी केवल वहाँ के लिङ्गस्थान का भी पूरा वर्णन नही हुआ। फिर हम तुच्छों की कौन गिनती। इसके लिये इतना ही कहना बहुत है कि नव-खण्ड पृथ्वी और दसवां खण्ड काशी यह बहुत ठीक कहावत है। यहाँ चोज नही ऐसी कोई है ही नही। प्रत्यक्ष मुक्ति, जिसके लिये अनेक योगिं विरागी अनेक कष्ट साधन करते है अनेक जन्म बिताते है वह भी मारी मारी फिरती है। सर्वत्र दुर्मिल जो अन्न उसके लिये स्वतः श्रीमती अन्नपूर्णा हाथ में करछूर लिये परोसने को सिद्ध ही है। स्नान पान के लिये गङ्गा जननी बराबर काशी को गोद में लिये बैठी ही है। शयन आसन के लिये स्वर्गपुरी सम बड़े-बड़े गगनचूंबी मकान मंदिर वा बाग बगीचे सर्वत्र पड़े ही है। धन्य है काशी। काशी ही है काशी की उपमा अन्य किसी को नही।[1]

❋

प्रेमदास[2]

आप मूलतः तो गोरखपुर-जिले के 'वड़ागॉव' नामक स्थान के निवासी थे। किन्तु, मुजफ्फरपुर जिले के हाजीपुर-निवासी श्रीधरणीधर पंडित के यहॉ आप बराबर रहा करते थे।

---

१. 'मैं वही हूँ' (वही), पृ० २४-२५। यह पुस्तक काशी के प्रसिद्ध साहित्यसेवी और भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के दौहित्र श्रीव्रजरत्नदासजी, वकील की कृपा मे प्राप्त हुई थी।—सं०

२. इस नाम के तीन प्राचीन साहित्यकारों के उल्लेख मिलते हैं। इनमें एक प्रेमदास अजयगढ़ के निवासी अग्रवाल थे, जिन्होंने 'प्रेमसागर', 'नास्केत की कथा', 'पंचरग', 'गेन्दलीला', श्रीकृष्णलीला आदि ग्रन्थों की रचना की थी। इनका स्थिति-काल सं० १८२७ वि० के लगभग बतलाया गया है। दूसरे प्रेमदास हितहरिवंशजी के शिष्य थे। इन्होंने हितहरिवंश-चौरासी की टीका लिखी थी। ये सं० १७९१ वि० के लगभग वर्त्तमान थे। तीसरे प्रेमदास स्वामी रामानुज के अनुयायी थे। इन्होंने 'जैमिनिपुराण' का हिन्दी में अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने और भी ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमें 'प्रेम-परिचय','विसातिनलीला', 'भागवत-विहार-लीला' आदि प्रमुख हैं। अनुमान है कि प्रस्तुत प्रेमदास यही हैं।—देखिए, 'प्राचीन हिन्दी-पोथियों का विवरण' (वही, तीसरा खण्ड), पृ० ८।

एक प्रकार से साहित्य-रचना की प्रेरणा भी आपको उन्ही से मिली। कहते हैं, उनसे ही कथा सुनकर आपने 'हिन्दी-महाभारत' नामक ६५ अध्यायों का एक महाग्रन्थ तैयार किया था।[1] इसमें मुख्य रूप से पाण्डवों के अश्वमेध-सम्बन्धी उद्योगो का वर्णन है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नही मिला।

※

बालराम स्वामी

आप काशी-निवासी नानकशाही-सम्प्रदाय के एक उदासीन महात्मा थे। आप बरसो अपने शिष्य आत्मस्वरूपजी के साथ खड्गविलास प्रेस (पटना) में रहे। उक्त प्रेस के मालिक बाबू रामदीन सिंह[1] ने बड़े आदर-भाव के साथ आपको अपने पास रखा था। उन्होंने आपसे 'पातञ्जल-योगदर्शन' का हिन्दी-अनुवाद—अन्वय-पूर्वक पदार्थ-निरूपण श्रीवाचस्पति मिश्र-प्रणीत तत्त्ववैशारदी नामक व्याख्या के अनुसार—कराकर 'पातञ्जल-दर्शन-प्रकाश' नाम से प्रकाशित किया था।[2] इस ग्रन्थ के अप्राप्य होने से आपकी रचना का कोई उदाहरण नही मिला।

※

बिहारीलाल चौबे

आपका जन्म जौनपुर जिले के मथुरापुर नामक गाँव में, जो काशी से दस कोस दूर है, सं० १९०५ वि० (सन् १८४८ ई०) में, हुआ था।[3] आप जाति के सरयूपारीण ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम रत्नपाल चौबे था। उन्होंने ही आपको व्याकरण और काव्य पढ़ाया था। गरीबी के कारण आपकी शिक्षा बचपन से किसी पाठशाला में नही हो सकी। अपने गाँव के आसपास के पंडितों से आपने संस्कृत का अध्ययन किया। आपकी बुद्धि बड़ी ही तीव्र थी। एक दिन किसी कारणवश अपने चाचा द्वारा अधिक पीटे जाने से आपको दुःख हुआ और भागकर काशी में अपने मामा के घर चले आये तथा वही रहकर विद्याध्ययन करने लगे। यही गवर्नमेंट-संस्कृत-कॉलेज में आपने अँगरेजी की वर्णमाला सीखी तथा संस्कृत का कुछ और अभ्यास किया। एक ही साल की पढ़ाई के बाद परीक्षा में आपने सफलता भी प्राप्त की। कॉलेज से आपको चार रुपये की मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी। दूसरे वर्ष मे भी परीक्षोत्तीर्ण होने पर आपको पुरस्कार के साथ आठ रुपये मासिक की छात्रवृत्ति मिली थी।

---

१. इनका जन्म-काल १९वीं शती उत्तरार्द्ध के प्रथम दशक में पड़ता है। इनसे उम्र में बड़े होने के कारण आपका जन्म-काल १९वीं शती पूर्वार्द्ध के अन्तिम वर्षों में अनुमित होता है। —सं०

२. 'हरिऔध-अभिनन्दन-ग्रंथ' (वही), पृ० ५३१।

३. 'सरस्वती' (हीरक-जयन्ती-विशेषांक, सन् १९००-५९ ई०), पृ० ५३८।

बचपन से ही आपके मन में हिन्दी के प्रति बड़ा अनुराग था। संस्कृत और अँगरेजी में भी आपकी योग्यता बहुत अच्छी थी। विद्यार्थी-जीवन में ही 'सदादर्श', 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका',[१] कविवचन-सुधा आदि पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती थी। बनारस-कॉलेज में दस रुपये मासिक वेतन पर अनुवादक का कार्य करते समय ही आपने अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर के नाटकों की कहानियों (लैम्ब्स टेल्स) और संस्कृत के महाकवि दण्डी के 'दशकुमारचरित' का हिन्दी में भाषान्तर कर डाला था। आपने 'बिब्लियोथिका इंडिका' के लिए तुलसीदास (सं० १२८) की सतसई का सम्पादन किया था।[२] रसायन-विषयक एक अँगरेजी-पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद[३] करके आपने लाहौर (पंजाब) के गवर्नमेण्ट कॉलेज को भेजा था, जिसपर आपकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। बिहार के स्कूलों के इन्स्पेक्टर डॉक्टर फौलन ने बनारस जाकर आपसे अपने अँगरेजी-हिन्दी-कोष का संशोधन-कार्य कराया था और आपकी योग्यता से सन्तुष्ट होकर आपकी सहायता भी की थी। मथुरा के तत्कालीन जिलाधीश ग्रूज साहब ने भी तुलसीकृत रामायण का अँगरेजी-अनुवाद करने में, उसका अर्थ समझने के लिए, आपसे पत्राचार करके बहुत सहायता ली थी। आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय के संस्कृताध्यापक डॉक्टर मॉनियर विलियम्स इंगलैंड में, पूर्वीय भाषाओं की शिक्षा के लिए, एक पाठशाला खोलना चाहते थे और जब वे युवराज (सप्तम एडवर्ड) के साथ भारत आये, तब काशी आने पर उन्होंने आपको वहाँ ले जाने का बड़ा आग्रह किया था, पर आप वहाँ गये ही नहीं, तब भी आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्होंने आपको एक प्रशंसा-पत्र दिया और सदा आपसे पत्र-व्यवहार करते रहे।

आप सन् १८७६ ई० के अगस्त मास से राँची के नार्मल स्कूल में पचास रुपये मासिक वेतन पर द्वितीय अध्यापक का काम करने लगे। राँची-प्रवास के पाँच वर्षों में आपने कई ग्रन्थ लिखे और उन्हे प्रकाशित भी कराया। राँची से आप पटना कॉलेजियट स्कूल में चले आये, जहाँ सोलह वर्ष तक रहे। यहाँ आपको एक सौ रुपये का मासिक वेतन मिलने लगा। उक्त अवधि में आपने सवा सौ रुपये मासिक पर पटना के नार्मल स्कूल और सिटी-स्कूल में भी अध्यापन-कार्य[४] किया था। सिटी-स्कूल से ही आप सरकारी सेवा से अवसर-ग्रहण कर स्थायी रूप से काशी में रहने लगे। वही फाल्गुनी महाशिवरात्रि को सन् १९१५ ई० में आप कैलासवासी हुए। आपके एक सुयोग्य पुत्र बिहार के शिक्षा-विभाग में अध्यापक थे।

---

१. इसके सम्पादक (भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र) के आप घनिष्ठ मित्रों में थे तथा इसमें वे आपको अपना सहकारी लिखते थे। —देखिए, 'सरस्वती' (वही), पृ० ५३६।

२. 'डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० ३०२।

३. इस अनुवाद का कुछ अंश अलीगढ की भाषावर्द्धिनी सभा के पत्र में छपा था। —देखिए, 'सरस्वती' (वही), पृ० ५३६।

४. मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि आप पटना-कॉलेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। —देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० १३१२-१३ तथा 'डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० ३०२।

आपके कार्य से बिहार के बड़े-बडे अफसर—जज, कलेक्टर, कमिश्नर आदि सभी—सदा प्रसन्न रहा करते थे और इनमें से कइयों से आपको प्रशंसा-पत्र भी मिले थे। हथुआ, दरभंगा और रीवाँ के राजा-महाराजा भी आपका सम्मान करते थे। इन नरेशो से आपको कई पुस्तकों के प्रकाशन मे अच्छी सहायता मिली थी। आप बिहार की पाठ्य-पुस्तक-निर्धारिणी-समिति के सदस्य भी थे।

आपने अधिकांश पुस्तकें स्कूलो मे पढ़ाये जाने के लिए ही लिखी थी। उनके नाम ये हैं—१. भाषाबोध, २. पत्रबोध, ३. बिहारी-तुलसी-भूषण,[1] ४. वर्णनाबोध, ५. पदवाक्यबोध, ६. प्रबोध, ७. बालोपहार, ८. चालचलनबोध, ९. दशावतार, १०. 'तुलसी-सतसई' की टीका, ११. वंगभाषा की 'सीता' का अनुवाद, १२. 'लैम्ब्स टेल्स' का अनुवाद, १३. दशकुमारचरित का अनुवाद, १४ शिक्षा-प्रणाली, १५. वेंकट-बिहारि-तुलसि-भूषणबोध।

आपकी रचनाएँ बड़ी सुबोध और मनोहारिणी होती थी। आप व्रजभाषा में भी अच्छी कविता करते थे।

उदाहरण

(१)

राधा जो बाधा हरे जग की हरि हेरि न कुंज के बीच ठगी सी।
पग आगे परे नहि पीछे परे पुनि स्वासे चले जनु शोक लसी सी।
सोचति शोक विमोचनि शोक विमोचन कौ जनु बाधा ग्रसी सी।
अवलोकति एकहिं ओर खड़ी सुमृगी इव जाल विशाल फसी सी॥[2]

(२)

अत्यन्त सुन्दर श्याम रूप कण्ठ में जनेऊ और कानों में कुन्डलधारी कुशदण्ड लिए अक्षमाला पहने अति मधुरभाषी ब्रह्मचारी के भेष में भगवान बलि यज्ञशाला के द्वार पर जा खड़े हुए।[3]

*

१. यह पुस्तक और अन्तिम, पन्द्रहवीं पुस्तक भी अलकार-शास्त्र विषयक है। अलंकारों के लक्षण आपने स्वयं बनाये हैं और उदाहरण तुलसी, बिहारी आदि प्राचीन हिन्दी-कवियों के ग्रन्थ से दिये हैं। —'सरस्वती' (वही), पृ० ५४०।

२. 'बिहारि-तुलसि-भूषण' से उद्धृत। —देखिए, 'सरस्वती' (वही), पृ० ५४०।

३. 'ईश्वर के दशावतार' से उद्धृत। —देखिए, वही।

भूदेव मुखोपाध्याय[1]

आपका जन्म हरीतकी बागान लेन (कलकत्ता) मे, सन् १८२५ ई० की १२वी फरवरी (फाल्गुन-कृष्ण ३) को हुआ था। आपके पूर्वज बंगाल के हुगली जिले के अन्तर्गत नतीबपुर नामक गाँव में रहते थे। आपके पितामह का नाम श्रीहरिनारायण सार्वभौम[2] तथा पिता का नाम विश्वनाथ तर्कभूषण[3] था। आपकी माता ब्रह्ममयी बड़ी ही पति-परायणा और धर्मनिष्ठ महिला थी।[4] आठ वर्षों तक घर में ही शिक्षा प्राप्तकर आप संस्कृत-कॉलेज (कलकत्ता) में भरती हुए। हिन्दू-कॉलेज में भी, आप अपने वर्ग के विशिष्ट छात्र थे। उक्त कॉलेज में आपके सहपाठी मौलवी अब्दुल लतीफ और माइकेल मधुसूदन दत्त थे, जो आगे चलकर क्रमशः भोपाल-रियासत (मध्यप्रदेश) के दीवान और अपूर्व बँगला काव्य 'मेघनाद-वध' के सुप्रसिद्ध रचयिता हुए।

सन् १८४६ ई० मे आपने लिखना-पढ़ना समाप्त कर अध्यापक का पद ग्रहण किया। बाद, पदोन्नति द्वारा आप प्रधानाध्यापक भी हुए। सन् १८६२ ई० के जुलाई मास मे आप स्थायी रूप से स्कूलों के असिस्टेंट इन्सपेक्टर नियुक्त हो गये। सन् १८७७ ई० मे बंगाल, बिहार और उड़ीसा के इक्कीस जिलो की शिक्षा का प्रबन्ध आपको सौंपा गया। इसके बाद सरकार ने आपको सी० आइ० ई० की उपाधि से भी सम्मानित किया। सन् १८८२ ई० मे आप बंगाल की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य बनाये गये। उस समय आप शिक्षा-आयोग के भी सदस्य थे। सन् १८८३ ई० (जुलाई) मे आपने पेन्शन ले ली। इसके बाद काशी में जाकर वेदान्त-शास्त्र पढ़ा। ऐसा था आपका विद्यानुराग। परमहंस श्री १०८ भास्करा-नन्द सरस्वती आपको यहाँतक मानते थे कि आपको 'पिता' कहकर पुकारते थे। स्वामीजी की समाधि में मूर्त्ति के नीचे जो संस्कृत के श्लोक खुदे है, वे आपके ही बनाये हुए हैं। काशी से लौटकर जब आप चूँचुड़ा में रहने लगे, तब वहाँ आपने संस्कृत-प्रचार के उद्देश्य से सन् १८८६ ई० (अप्रैल) में अपने पिता के नाम से एक पाठशाला स्थापित की और सन् १८९४ ई० (जनवरी) में पिता के नाम से ही 'विश्वनाथ फण्ड' स्थापित किया। जिसमे आपने अपनी कमाई के एक लाख साठ हजार रुपया जमा कर दिया। इस फण्ड से आपकी माता 'ब्रह्ममयी' के नाम से खैराती दवाखाना आज भी चलता है और संस्कृत के शिक्षकों तथा छात्रों को वृत्तियाँ दी जाती हैं।

---

१. आपका यह जीवन-परिचय 'सरस्वती' में प्रकाशित पं० रूपनारायण पाण्डेय-लिखित विस्तृत जीवनी के आधार पर लिखा गया है।—देखिए, 'सरस्वती' (वही, भाग १३, संख्या ८, अगस्त, सन् १९१२ ई०), पृ० ४१८।

२. ये अपने तीन भाइयों में सबसे छोटे थे। पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे में झगड़ा खड़ा होने पर ये अपना हिस्सा और घर छोड़कर कलकत्ता चले गये और वहीं रहने लगे।—वही।

३. ये एक असाधारण पण्डित थे। इनका आचरण प्राचीन ऋषियों की तरह था। इनको सरकार द्वारा उपाधि आदि सम्मान मिला था। ये बाँकुड़ा (बंगाल) में जज-पण्डित थे। किसी राजा के यहाँ से इनको पचास रुपया मासिक घर बैठे मिलता था। जब यह राजाज्ञा हुई कि वृत्ति पानेवाले पण्डित हर महीने आकर वृत्ति ले जाया करें, तब ये उसे लेने कभी नहीं गये।— वही।

४. ये नित्य अपने पति का चरणोदक लिये बिना जलपान भी नहीं करती थीं। एक दिन भूदेव बाबू ने अपने पिता के जूते पहन लिये, तो इन्होंने आपसे अपने पति को बार-बार प्रणाम कराया और जूते को आपके सिर पर रखकर प्रायश्चित्त करा डाला।—वही।

बिहार की अदालतों में फारसी-लिपि की जगह नागरी-लिपि[1] का प्रचलन आपके ही प्रयास से हुआ। आपने ही कैथी-लिपि का प्रचलन बन्द कराके देवनागरी को लोकप्रिय बनाया। इस कार्य से बिहार के लोग आपसे बहुत प्रसन्न हुए। उस युग में बिहार में हिन्दी-प्रचार[2] का श्रेय आपको ही है। आप शिक्षा-विभाग के एक प्रभावशाली अधिकारी थे, अतः बाबू रामदीन सिंह के सहयोग से आपको हिन्दी-प्रचार में विशेष बल मिला। आप दोनों मित्रों के सदुद्योग[3] से ही पाठ्य-पुस्तकें नागराक्षर में छपने लगी और विविध विषयों की पाठ्य-पुस्तकें[4] हिन्दी में बनने भी लग गईं। आपकी प्रशंसा में कई गीत भी बनाये गये, जिनमे पं० अम्बिकादत्त व्यास ने भी दो गीत लिखे थे।

---

१. "कुछ दकियानूसी लोगों के विरोध करने पर आपने स्पष्ट कहा—'बिहारी हिन्दू बालक अपनी मातृभाषा हिन्दी, धर्म की भाषा संस्कृत और राजा की भाषा अँगरेजी सीखें और मुसलमान के लड़के प्रचलित भाषा हिन्दी, धर्म की भाषा अरबी और राजा की भाषा अँगरेजी सीखें। यही उचित होगा।'—देखिए, 'जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ' (वही), पृ० २५६।

२. "अपनी एक पुस्तक में आपने साफ-साफ लिखा है—"भारत में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी ही सबसे प्रधान भाषा है। वह पहले के मुसलमान-बादशाहों और कवियों की कृपा से एक प्रकार देश भर में व्याप्त हो रही है। इसलिए अनुमान किया जा सकता है कि उसीके सहारे किसी समय सारे भारत की भाषा एक हो जायगी। भारत में अधिकांश लोग हिन्दी में बातचीत कर सकते हैं। इसलिए भारतवासियों की बैठक में अँगरेजी, फारसी का व्यवहार न होकर हिन्दी में बातचीत होनी चाहिए। साधारण पत्र-व्यवहार भी हिन्दी ही में होना चाहिए। हमारे पड़ोसी या इष्ट मित्र—चाहे वे मुसलमान कृस्तान, बौद्ध आदि कोई भी हों—सब सहज में हिन्दी समझ सकते हैं।"—देखिए, 'जयन्ती-स्मारक, ग्रन्थ' (वही), पृ० २५६।

३. "सरकार की ओर से जब पहले-पहल बिहार में शिक्षा प्रसार की व्यवस्था हुई तब शिक्षा-विभाग के प्रधान संचालक हुए पण्डित भूदेव मुखोपाध्याय, जिन्होंने स्वयं हिन्दी में कई पाठ्य-पुस्तकें लिखीं जो उन्हीं के द्वारा स्थापित बोधोदय प्रेस में कैथी-लिपि में छपी। भूदेव बाबू के चौमुखी प्रयत्न से हिन्दी का बहुत उपकार हुआ। उक्त बोधोदय प्रेस जब खड्गविलास प्रेस का नाम धारण करके बाबू रामदीन सिंह के अधिकार में (सन् १८८० ई० में) आया, तब कैथी-लिपि नामशेष हुई और नागरी-लिपि में हिन्दी-प्रचार बड़े वेग से होने लगा।"—देखिए, 'राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ' (वही), पृ० ४४७-४८।

४. उस समय की पाठ्य-पुस्तकों से असन्तुष्ट होकर आपने शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर के पास रिपोर्ट की कि पाठ्य-पुस्तकों में पूर्ण सुधार होना चाहिए। उत्तर में कहा गया कि अच्छी पुस्तकें कहाँ से आवेंगी। इस पर आपने लिखा कि "हिन्दी एक जीवित भाषा है—इसकी मृत्यु कभी हो ही नहीं सकती—इसका भार हम पर छोड़ दिया जाय—हम हिन्दी के प्रचार का पूरा प्रबन्ध कर देंगे और प्राञ्जल भाषा में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करा लेंगे।"—देखिए, 'जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ' (वही), पृ० २५६।

५. दो गीतों में एक यह है—

हुकुम भइल सरकारी रे नर सीखो नागरिया।
यावनि जी से देहु दुहराई पढ़ि गुनि काज करो नरहरिया॥
लै पोथी नित पाठ करहु अब यावनि-ग्रन्थ देहु पैसरिया॥
जब ले नागरी आवत नाहीं कैथी अच्छर लिखों कचहरिया।
धन्य मन्त्री प्रजाहितकारी अम्बिका मनावत राज विकटोरिया॥

—डॉ० ग्रियर्सन की बनाई बिहारी व्याकरण-माला 'के भोजपुरी-खण्ड से उद्धृत'।—देखिए, 'सरस्वती' (वही), पृ० ४२३-२४।

आपका मत था कि भारत में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी ही सबसे प्रधान है, अतः उसी के सहारे किसी समय सारे भारत की भाषा एक हो जायगी। आप धार्मिक शिक्षा के बड़े पक्षपाती थे।

आपकी मृत्यु सन् १८६४ ई० की १६वी मई (वैशाख-शुक्ल ११) को, सत्तर वर्ष की आयु में, गंगा-तटस्थ चूँचुड़ा नामक स्थान में हुई।

*

मारकण्डेय लाल

आपका उपनाम 'चिरजीवी' था।[१] आपकी काव्य-रचनाओ मे आपका यही नाम मिलता है।

आप 'कोपागंज'[२], आजमगढ़ (उत्तरप्रदेश) के निवासी[३] जाति के कायस्थ थे।[४] आप क्रमश. मिथिला के महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह (सन् १८६२-६६ ई०)[५] और सूर्यपुरा (शाहाबाद) के राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह (सन् १८६५-१६०३ ई०)के दरबार में बहुत दिनों तक रहे।[६]

आपकी गणना अपने समय के प्रमुख हिन्दी-कवियो मे होती थी। आप आरम्भ मे झूला, ठुमरी, कजली आदि की रचना करते थे। पीछे कवित्त आदि भी रचने लगे। बाबू शिवनन्दन सहाय के कथनानुसार पटना के हरमंदिर के बाबा सुमेरसिंह से आपको काव्याध्ययन में बड़ी सहायता मिली थी।[७] दरभंगा-नरेश लक्ष्मीश्वर सिंहजी आपका बड़ा सम्मान करते थे। उन्ही के नाम पर आपने 'लक्ष्मीश्वर-विनोद' नामक काव्य-ग्रंथ की रचना

---

१. सन् १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया की जुबली के अवसर पर बनारस 'कवि-समाज' ने 'चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी' की समस्यापूर्ति करवाई थी। आपकी पूर्तियो से ही प्रसन्न होकर उक्त 'कवि-समाज' ने आपको 'चिरजीवी' की उपाधि दे दी। —देखिए, 'सम्मेलन-पत्रिका', (त्रैमासिक, भाग ४५, संख्या १, पौष-फाल्गुन, शक स० १८८० वि०), पृ० ६०।

२. 'समस्यापूर्ति' में यह स्थान बिहार के दरभंगा-जिले में बतलाया गया है।—देखिए, 'समस्यापूर्ति', (मासिक, मार्च, सन् १८६७ ई०), पृ० १-२।

३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० १२६७।

४. "आपको मोची जाति का कहा जाता है, किन्तु अपने 'लक्ष्मीश्वर-विनोद' नामक काव्य-ग्रन्थ में आपने अपने को चित्रगुप्त-वंश का बतलाया है—'चित्रगुप्त के वंश में मैं प्रसिद्ध जन सेय'। मन्ननजी का कहना है कि हिन्दुओं में सिन्दूरहारे, हिंगहारे और मोची जातियाँ होती हैं, जो अपने को कायस्थ कहते हैं। किन्तु इनके रीति-रिवाज कायस्थों से नहीं मिलते हैं। मालूम होता है मारकण्डेय लाल 'चिरजीवी' ऐसी ही जाति में से थे।'—देखिए, 'सम्मेलन-पत्रिका' (वही), पृ० ६०।

५. बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तृतीयाधिवेशन (सीतामढी) के सभापति बाबू शिवनन्दन सहाय के भाषण के अनुसार।—सं०

६. बा० शिवनन्दन सहाय द्वारा लिखित 'गत पश्चात वर्षों में हिन्दी की दशा' नामक पुस्तक के अनुसार।

७. बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तृतीयाधिवेशन (सीतामढी) के सभापति बाबू शिवनन्दन सहाय के भाषण के अनुसार।—सं०

की थी। इसके अतिरिक्त आपने छत्रपति शिवाजी के सम्बन्ध में वीररसात्मक छन्दों की भी रचना की थी, जो वगवासी प्रेस (कलकत्ता) से प्रकाशित 'भूषण-ग्रथावली' के अंत में जुडे हुए हैं।[1]

आपका देहावसान स० १९५३ वि० (सन् १८९६ ई०) के लगभग हुआ था।[2]

उदाहरण

(१)

दीखत दीखत आई इतै मनभाई करी न डरानी जवाल सों।
'कैसे रहे, न मिले कबहुँ' यह प्रेम-कथा कहिकै नँदलाल सो ॥
भाई करी मन के अपने 'चिरजीवी' कहैं सिगरे ब्रजबाल सो।
कैसी है ढीठये गोप-लली मुख चूमि गई लगि लाल के गाल सों ॥[3]

(२)

पायकै अकेली नन्दनक बृषभानुजा को
पहुँचि तहाई धूम कीन्ही बलिहारी की।
'बहुत दिनान पै हमारी साध पूजी आज'
यौ कहि बिगारै चह्यो सारी जरतारी की ॥
आवत अन्हाये देखि कबि 'चिरजीव' भाषै
पिचुकी जो मारयौ कंचुकी में प्रानप्यारी की।
रहिगो कचोट सब दिल को दिलै ही जब
ओट करि रोक लीन्हो चोट पिचुकारी की ॥[4]

(३)

जिनके गुन को हरि नाम समान सदा उर अंतर मैं बकती है।
जिनके हम देखि कै निन्दक को बिनु आग ही हीतल में पकती है ॥
ढिग बैठिबे को 'चिरजीवी' कहै जिनकी हम बाट सदा तकती है।
हमरे उर माँह बसै उनही जिनके हम नाम ना लै सकती है ॥[5]

---

१. 'सम्मेलन-पत्रिका' (वही), पृ० ६० ।

२. वही। अनुमान है कि आपका देहान्त वृद्धावस्था में हुआ होगा। आश्रयदाताओं के दरबार में रहते समय आपकी अवस्था कम-से-कम ४० वर्ष की रही होगी। इन कारणों से आपका जन्म सन् १८२५-३० ई० के आसपास होना सम्भव जान पडता है।—स०।

३-४. श्रीरामनारायण शास्त्री (वि० रा० भा० परिषद्) से प्राप्त।

५. 'समस्यापूर्ति' (वही, अप्रैल, सन् १८९७ ई०), पृ० २।

(४)

छूटि जैहें धाम ग्राम अपर अराम सारी
बैन यह हमारी उर-अंतर में डारी लै।
रहि जैहै ह्याँईं हाथी घोड़ो औ खजानो सबै
एकौ नहि जैहै संग भलै तूं बिचारि लै॥
मानुष-सरीर पाय राम सों लगाय नेह
'चिरजीव' याहि बिधि जीवन सुधारि लै।
सोना ऐसी देह यह माटी होय जैहै
प्यारे कह्यो जौ न मानै तौ तू नैनन निहारि लै॥[1]

(५)

छाड़ि कै सकल सुख साज औ लिहाज जी कौ
आपने उरन्तर को वेंवत विचारि लै।
कल ते वा बल ते वा छल ते हमारी वीर
जीवन को सारी फल निज उर धारि लै॥
तजि कुल-कानि को सुकबि 'चरजीव' भावै
अंचल सम्हारि नेकु घूंघट को टारि लै॥
जाकी रही रोज तुम सुनत कहानी आज
सोई नन्दनन्द प्यारी नैनन निहारि लै॥[2]

(६)

अंग-अंग मैं ओप अजीब चढ्यौ अँखियाँ रसिकान की घाती भईं।
कटि खीन औ पीन नितम्ब लखे सवतैं बिनु तेल की बाती भईं॥
कछु चोर सों आनि बस्यौ जिय मैं 'चरजीव' छटा रंग-राती भईं।
लगीं जीतै लजाधुर को महिमा जब बाल की छाती में थाती भईं॥[3]

१. 'समस्यापूर्त्ति' (वही), पृ० २।
२. वही।
३. 'समस्यापूर्त्ति' (वही, अगस्त, १८९७ ई०), पृ० ४।

(७)

झाँकै झूकै चितवै चहुँधा अँचरा ते उरोज को ओप दुरावैं।
आहट पाय लला को ललो नहिं लौटि के आपने भौन में जावैं॥
केलि के द्वार तिया की दसा है भई जो तिन्है 'चिरजीव' बतावैं।
काम ते प्यारी धँसै गृह मैं अरु लाज ते भाज कँ बाहर आवैं॥[1]

(८)

बीरन के नामन पैं चन्दन चढाय सारे
कादर के नामन को स्याही सों भरत हैं।
स्यारन को सौरज को पॉय ते कुचलि दिव्य
आपनी दिलेरी सिंह सीस पैं करत है॥
जौलौं रहै प्रान घट मॉह 'चिरजीव' भाषै
तौलो निज पँज ते न कैसहू टरत है।
आवै जमदूत ह्वै जो काहू बैरी पूत
तौहू साँचे रजपूत पॉव पाछे ना धरत है॥[2]

(९)

हिंडोरे झूलत नन्दकिशोर।
श्रीनन्दनन्दन-प्रिया अलबेली, श्रीराधा-चितचोर॥
सूर्य कोटि, प्रति 'प्रभा विराजत, दामिनि लक्ष करोर।
हुलसि 'मारकण्डे' गुन गावत, लखि लखि प्रभु की ओर॥[3]

(१०)

कानन क्वैलिया कूकै लगी सुनि हूकै लगी हमरे उर अंत में।
पौन की गौन सुगन्धमई भई प्रीति परस्पर कामिनी कंत में।
जोरि के हाथ कहै 'चिरजीवी' बिसारिए न परि काज अनन्त में।
लोग बसंत में आवैं घरे तुम आइके जात हो कंत बसंत में॥[4]

---

१. 'समस्यापूर्त्ति' (वही, अक्टूबर-नवम्बर, सन् १८९७ ई०), पृ० ४।
२. वही।
३-४. 'सम्मेलन-पत्रिका' (वही), पृ० ९०।

मुरलीमनोहर

आप मूलतः काशी के निवासी थे, किन्तु पटना-सिटी के 'गायघाट' मुहल्ले में आकर बस गये थे।[१] अनुमानतः आपका जन्म-काल सं० १९८८ वि० (सन् १८३१ ई०) के आसपास होगा।

आपकी गणना ज्यौतिष के अपूर्व ज्ञाता के रूप में होती थी। संगीत के भी आप एक सफल साधक थे। थे तो आप एक वैष्णव कृष्ण-भक्त, किन्तु राम-साहित्य का भी आपका अध्ययन बहुत अच्छा था।[२] गायघाट के चैतन्य-मंदिर में जो कृष्ण-कीर्त्तन-समाज था, उसके आप प्रधान आचार्य थे। आपने कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी अनेक पदों की रचना की थी।

आपका देहान्त सं० १९७२ वि० (सन् १९१५ ई०) के लगभग अस्सी-नब्बे वर्ष की आयु में, हुआ था।[३]

उदाहरण

हरित हिंडोरना माई झूलत सुख की रास।
हरित डाँड़ी हरित पटली हरित साजे साज।
हरित पगिया हरित पटुका हरित झाँकी आज॥
हरित कुंडल हरित कंकण हरित सोहै माल।
हरित मणि के मुकुट राजत हरित चन्दन भाल॥
हरित भूमि हरित बृन्दावन हरित सखिगन साथ।
हरित पट फहरात सुन्दर निरखि मदन लजात॥
हरित कोकिल मोर बोलत हरित लता-वितान।
मुरली मनोहर बसो हिय में हरित छवि को ध्यान॥[४]

*

१. श्रीकृष्णकुमार गोस्वामी (चैतन्य पुस्तकालय, गायघाट, पटना-सिटी) से प्राप्त सूचना के आधार पर।
२. आपके द्वारा उपयोग में लाया हुआ तत्सम्बन्धी साहित्य पटना-सिटी के 'चैतन्य-पुस्तकालय' में आज भी सुरक्षित है।—सं०
३. सन् १९१५ ई० में आप ८०-९० वर्ष की आयु में दिवंगत हुए थे, अतः आपका जन्म-काल सन् १८३५-४५ ई० के अन्तर्गत होगा।—सं०
४. उक्त 'चैतन्य-पुस्तकालय' में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथ 'झूलन के पद' से।—देखिए, वही, पृ० ४१।

राधालाल माथुर[1]

आपका जन्म सन् १८४३ ई० में जोधपुर (मारवाड़) के नागौड़ नामक स्थान के एक कुलीन कायस्थ-परिवार में हुआ था।[2] आपके पिता श्रीकुंजलालजी एक अत्यन्त धार्मिक और कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति थे। आपकी दो शादियाँ हुई थी। पहली शादी जोधपुर मे हुई थी, जिससे आपके एक लड़की हुई। दूसरी शादी पटना-सिटी के दीवान-मुहल्ले में मुंशी व्रजमोहनलाल माथुर की लड़की से हुई थी, जिससे आपके चार लड़के और चार लड़कियाँ हुई। वय क्रम से लड़कों के नाम इस प्रकार है—विष्णुलाल[3], कन्हैयालाल[4], नारायणलाल और भगवतीलाल।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा नागौड़ (जोधपुर) की एक प्राइमरी पाठशाला में हुई। वहाँ आपने मारवाड़ी-भाषा के साथ-साथ उर्दू और फारसी भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त किया। नागौड़ से आपने कुछ दिनो के लिए अपने मामा सूरजमलजी के निकट आकर साँभर (राजस्थान) मे शिक्षा प्राप्त की। फिर, जब आपके पिता अजमेर चले आये, तब आप भी वही चले गये और वहाँ के सरकारी स्कूल में पढ़ने लगे।

आप एक बड़े ही प्रतिभाशाली छात्र थे। शिक्षा-काल मे बराबर छात्रवृत्ति प्राप्त करते रहे। सन् १८५९ ई० में आप अजमेर के एक स्कूल में शिक्षक नियुक्त हो गये। उस समय आपकी उम्र कुल सोलह वर्षों की थी। फिर, जब फैलन साहब बिहार के शिक्षा-विभाग मे इन्सपेक्टर होकर चले आये, तब उन्होंने आपको अजमेर से गया के नार्मल स्कूल मे बुला लिया। वहाँ भी आप हिन्दी-शिक्षक के रूप में कार्य करते रहे।

शिक्षक के रूप में नियुक्त होकर भी आपने अपनी शिक्षा का क्रम जारी रखा फैलन साहब की राय से आपने इंट्रेंस की परीक्षा पास कर ली। सन् १८७२ ई० मे आा। दरभंगा में स्कूलों के डिप्टी-इन्सपेक्टर नियुक्त हो गये। इसी सिलसिले मे आप बिहार के गया, शाहाबाद और चम्पारन जिलों मे रहे।

एक बार चम्पारन मे जब आप किसी स्कूल का निरीक्षण कर टमटम से लौट रहे थे, तब टमटम से गिर जाने के कारण आपका एक हाथ टूट गया और आप लूले हो गये। जिस समय आप दरभंगा मे थे, सन् १८९९ ई० में १५ जुलाई को, आपने सरकारी नौकरी से अवसर-ग्रहण किया। अवसर-ग्रहण-काल के बाद आपको एक सौ रुपये मासिक की पेंशन मिलती रही। सन् १९१३ ई० मे, १३ मार्च को, ७० वर्ष की आयु मे, आप परलोक सिधारे। आपके जीवन के अन्तिम दिन पटना में बीते।

---

१. आपक परिचय श्रीउमाशकर द्वारा लिखित जीवन के आधार पर तैयार किया गया है।—देखिए, 'नवराष्ट्र' (दैनिक, १३ मार्च, सन् १९६१ ई०), पृ० १८-२४।

२. 'नवराष्ट्र' (वही), पृ० ४।

३. ये बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे। घर का सारा काम-काज आपकी ही देख-रेख में हुआ करता था।—स०

४. ये बहुत ही होनहार थे इसी कारण उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इङ्गलैण्ड भेजे गये थे। किन्तु, सन् १९१२ ई० में प्लेग से तीन दिनों के अन्दर जब इनकी माता, बहन तथा अग्रज परलोक सिधार गये, तब विवश होकर इनको स्वदेश वापस चला आना पड़ा।—स०

हिन्दी में जिन लोगों ने उन दिनो पहले-पहल पाठय-पुस्तके[१] तैयार की थी, उनमें आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपके द्वारा तैयारकी गई हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों मे प्रमुख हैं—'हिन्दी किताव'[२] (४भाग, साहित्यका इतिहास), 'भाषाबोधिनी'[३], 'रोमन-हिन्दी-रीडर', 'खेतनाप-विद्या' और 'वस्तु-विचार'।

हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के अतिरिक्त आपने जो एक और महत्त्वपूर्ण कार्य कियाथा, वहथा हिन्दी-शब्द-कोष[४] का निर्माण। आपने यह कार्य प्रसिद्ध कोशकार फैलन साहब के आदेशानुसार पूरा किया। आपने बिहार की लोक-भाषाओं (मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि) के क्षेत्रों में भी उत्साहवर्द्धक कार्य किया था। उक्त क्षेत्रों में प्रचलित अनेक लोक-गीतों, लोक-कथाओ, लोकोक्तियों आदि का जो संकलन आपने किया था, उसका उपयोग करने को डॉ० ग्रियर्सन भी एक वार वाध्य हुए थे।[५] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से भी आपकी वड़ी घनिष्ठ मैत्री थी और उनसे आपका पत्राचार भी होता रहता था। अंत समय मे आपने उनकी सहायता भी की थी।[६]

आपकी रचनाओ के उदाहरण नही मिले।

---

१. बिहार में पहले पाठ्य-पुस्तकें कैथी-अक्षरों में छपती थीं। लेकिन तत्कालीन स्कूल-इन्सपेक्टर भूदेव मुखोपाध्याय के उद्योग से स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली पोथियाँ नागरी-अक्षरों में छपने लगीं। अपनी पुस्तको द्वारा आपने इस कार्य को और भी आगे वढ़ाया।—देखिए, 'जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ'-(वही), पृ० २६०।

२. यह पुस्तक सन् १८७२ ई० में प्रकाशित हुई थी। प्रकाशक स्वय आप ही थे। —'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ५७५।

३. यह पुस्तक चार भागों में गोपीनाथ पाठक द्वारा सन् १८७० ई० में बनारस से प्रकाशित हुई थी। सब पाठशालाओं में आरम्भ से मिडिल तक यही पुस्तक पढ़ाई जाती थी।—देखिए, क्रमशः 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), ५७५ तथा 'जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ' (वही), पृ० २६०।

४. इस कोष पर आपको बगाल-सरकार से दो हजार रुपये का पुरस्कार मिला था। इसका प्रथम संस्करण सन् १८७३ में काशी के लाइट ई० प्रेस से छपकर प्रकाशित हुआ था। इसका आकार काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के हिन्दी-शब्द-सागर-जैसा था और इसमें ५०७५ शब्द थे। इसके प्रकाशक भी स्वय आप ही थे। 'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य' (वही), पृ० ५७५। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के 'हिन्दी-शब्द-सागर' की भूमिका' (पृ० २) में लिखा है—"सन् १८७३ ई० में मु० राधेलालजी का शब्दकोश गया से प्रकाशित हुआ था, जिसके लिए उन्हें सरकार से यथेष्ट पुरस्कार भी मिला था।"

५. सन् १८८४ ई० में डॉ० ग्रियर्सन ने अपने भोजपुरी-व्याकरण के सिलसिले में, आपके द्वारा संगृहीत ६४ भोजपुरी लोकगीतों का उपयोग किया था।—स०

६. 'कलम-शिल्पी' (श्रीउमाशंकर, प्रथम सं०, सन् १९६१ ई०), पृ० २२।

रामचरित तिवारी

आपका उपनाम 'रसरंग' था।

आप आजमगढ़-जिले (उत्तरप्रदेश) के 'नगवाँ' नामक ग्राम के निवासी थे।[१] किन्तु, आपका अधिकांश जीवन डुमराँव-राजदरबार में ही बीता। आप वहाँ के राज-दरबार के एक बड़े ही जिन्दादिल कवि थे।[२] इतने बड़े हँसोड़ थे कि अपने चारों ओर हँसी का फव्वारा छोड़ते रहते थे। होली आते ही आप रसोन्मत्त हो जाते थे। आपकी जिन्दादिली और आपके हँसोड़पन के ही कारण डुमराँव-नरेश महाराज सर राधाप्रसाद सिंहजी आपको बराबर अपने साथ ही रखते थे। कहते हैं, एक बार उक्त महाराज से आज्ञा लिये बिना ही आप सूर्यपुरा के राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंहजी के दरबार में चले गये, इसी कारण वे आपसे उदासीन हो गये। तब स्वभावतः आप सूर्यपुरा-दरबार में रहने लगे।[३] आपकी स्फुट हिन्दी-कविताओं के दो संग्रह 'सावन-सिंगार' और 'रितुरसरास' उक्त डुमराँव-नरेश के व्यय से पुस्तकाकार प्रकाशित हुए थे, जो अब अप्राप्य हैं। आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ भोजपुरी में भी मिलती हैं।

उदाहरण

(१)

बृजनारिन नारि बनाई काँधा को।
भले फागुन नाच नचाई काँधा को।
रूई संग अंग अँगिया कसी, सुन्दर सारि पिन्हाई काँधा को।
बाजूबन्द बाँह कर चूरी हैकल कंठ लगाई काँधा को।
बेसर नाक नैन करि काजर कानन झुमका झुलाई काँधा को।
'रामचरित' इत-उत ते तापर सब रँग डारि छकाई काँधा को।[४]

---

१. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० ३६५।

२. श्रीजगदीश शुक्ल (प्रधान संस्कृताध्यापक, राजराजेश्वरी-उच्चांग्ल-विद्यालय, सूर्यपुरा, शाहाबाद) द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर। मुजफ्फरपुर के अयोध्याप्रसाद खत्री की पुस्तक (खड़ीबोली का पद्य) में आपकी सम्मति छपी है, जो २२ सितम्बर, सन् १८८७ ई० की है। अतः, अनुमान है कि आपका जन्म सन् १८४० ई० के लगभग हुआ होगा।—स०

३. 'आत्मचरित-चम्पू' (वही), पृ० १०।

४. श्रीजगदीश शुक्ल (वही) से प्राप्त।

(२)

ऐसो ढीठ छयल बृजराज आज रँग सों अँग बोरी रे।
मेरे नैनन सों निज नैन जोरि बरजोरि गगरि मोरि तोरि-फोरि,
झकझोरि मोरि बँहियाँ मरोरि अंचल-पट छोरी रे।
अब कैसि करो कछु कहि न जात सखि 'रामचरित' चित नहि लजात,
सँग लै बहु बालक आये प्रात मलिगो मुख रोरी रे।[1]

*

रामशरण[2]

आपका जन्म अवध के तिलोई-राज्य मे, तमसा के तट पर पंडितपुरवा नामक ग्राम में, सं० १८६४ वि० (सन् १८१७ ई०) में आषाढ़-शुक्ल द्वितीया को हुआ था। आपके पिता का नाम पं० रामस्वरूप था, जो ज्यौतिष-विद्या के भी जानकार थे। बचपन में मातृ-वियोग के कारण आपका पालन-पोषण आपकी दादी द्वारा हुआ। कुछ बड़े होने पर पं० रामदत्त नामक किसी विद्वान् से आपने थोड़ी-बहुत शिक्षा ग्रहण की। पढ़ने में विशेष मन न लगने के कारण, पिता द्वारा सभी सुविधाएँ मिलने पर भी, आप यथोचित शिक्षा से वंचित रहे। आपका मन संसार से धीरे-धीरे विरक्त होता गया और सोलह वर्ष की अवस्था में आप घर छोड़कर तीर्थाटन को निकल पड़े। आप प्रयाग होते हुए अयोध्या आये और वही सुग्रीव-टीला पर आपने महात्मा गरीबदास से मंत्र-दीक्षा ली। आप काशी, चित्रकूट, पंचवटी, श्रीरंगधाम, पन्ना, कन्याकुमारी, तिरुवति[3] आदि तीर्थों का पर्यटन करते हुए पुरी[4] पहुँचे। यहाँ से भृगु-आश्रम (जिला बलिया) और बक्सर[5] (शाहाबाद) होते हुए जनकपुर आये और यही स्थायी[6] रूप से रहने लगे।

---

१. श्रीजगदीश शुक्ल (वही) से प्राप्त।

२. आपका परिचय डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह-लिखित 'बिहार के रसिक-सन्त' नामक लेख के आधार पर तैयार किया गया है।—देखिए, 'परिषद्-पत्रिका' (त्रैमासिक, वर्ष १, अंक ३, अक्टूबर, सन् १९६१ ई०), पृ० ४३-४४।

३. यहाँ के अधिकारी ने आपको रोककर बड़े आदर से ठहराया। आप यहाँ कुछ दिनों तक वेंकटेश्वर भगवान् की सेवा में सलग्न रहे।—देखिए, 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४५९।

४. यहाँ कुछ समय रहने के बाद आपने श्रीसीतारामीय हरिहरप्रसाद नामक किसी महात्मा से सख्य-भाव की दीक्षा ली।—देखिए, (वही), पृ० ४६०।

५. इसके समीपवर्त्ती पचारी नामक गाँव में कुछ दिनों तक आपके ठहरने का पता लगता है। यहीं पर सुरसरि के बाबू रामउदार सिंह आपका दर्शन करने आये थे। बाबू साहब के बहुत अनुरोध पर भी आपने यहाँ पक्की कुटी बनाने की स्वीकृति न दी। तब सेवकों ने कच्ची कुटी के चारों ओर मन्दिर और कुटी के निर्माण के लिए नींव में धन गाड़ने की योजना बनाई। आपको जब यह ज्ञात हुआ, तब आप बड़े अप्रसन्न हुए और तत्काल ही वह स्थान छोड़कर जनकपुर चले गये।—देखिए, वही, पृ० ४६०।

६. बीच में आप अयोध्या के महात्मा जानकीवरशरण के विशेष स्नेह और आग्रह पर अयोध्या गये थे, किन्तु दो मास ठहरकर पुनः मिथिला लौट आये।—वही।

आपके रचित दो ग्रन्थ हैं—(१) 'रामतत्त्व-सिद्धान्त-संग्रह' और (२) 'मैथिली रहस्य-पदावली'। प्रथम सिद्धान्त-ग्रंथ है और दूसरा, समय-समय पर लिखे गये भावात्मक छन्दों का संग्रह। आपका अधिकांश जीवन विहार में ही व्यतीत हुआ था। इस कारण आपकी भाषा भोजपुरी और मगही से प्रभावित है। आपकी रचनाएँ प्रायः सोहर-छद में हैं, जिनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—जनक का हल-यज्ञ, जानकी-जन्म, फुलवारी-लीला आदि।

कहा जाता है कि बुढ़ापे में आपको लकवा-रोग हो गया था और अन्त मे यही रोग आपके लिए प्राणघातक भी सिद्ध हुआ। वैशाख कृष्ण-चतुर्दशी (संवत् अज्ञात) को आप साकेतवासी हुए।

उदाहरण

(१)

आये मिथिलेश के बगिया हो नृप युगल किशोर।
बाँधे वसन्ती के पगिया हो दिनकर छबि छोर।
मारे नजर के कोरवा हो सुधि हरि लीन्हीं मोर।
चितवन बढ़ी उर जोरवा हो हिया सालत मोर।
गरबिच मोतिन के हरवा हो बुलकन चितचोर।
लसत वसन्ती के जामा हो दामिनि दुति थोर।
रामसरन दोउ छैलवा हो सखि श्यामल गौर।
लखि तेहि मोहनि मूरति हो सुधि बुधि भई भोर।'[1]

(२)

ये दोनों रसिक झुलन पर आयो है।
दशरथ कुँवर श्री जनक कुमारी अङ्ग अङ्ग सुषमा अनंग लजायो है।
प्रीतम के संग प्यारो झुलतु है मजे मजे सिया पिया वीणा बजायो है।
विपिन सिरोमनि श्रीप्रमोदवन हरे हरे महि सावन दरसायो है।
रामसरन श्रीअवध निकाई लखि सरयू के तीरे तीरे मेरा मन भायो है।[2]

---

१. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४६१।
२. वही।

रामानन्द[१]

आपका जन्म रीवाँ (मध्यप्रदेश) में हुआ था। आप एक भ्रमणशील ब्राह्मण संन्यासी थे। लगभग पचीस-तीस वर्ष की अवस्था में आप गया (बिहार) आये और यहीं स्थायी रूप से रहने लगे।[२] आपकी मृत्यु प्रथम जर्मन-युद्ध (लगभग सन् १९१५-१६ ई०) के आस-पास गया में ही हुई। उस समय आपकी आयु लगभग अस्सी-पचासी वर्ष की रही होगी।[३] आपकी एक पुस्तकाकार रचना 'उर्दू-शतक'[४] का पता चला है।

उदाहरण

(१)

ऐसी कविताई हिन्दी-फारसी की आरसी-सी
खार-सी चुभी ही रहे बन्दिश मे बन्द है।
बाज रहा दिन में नमाज पंज-वख्ता छूटा
राज इजहार की कहानी गोया कन्द है।
गिरह गदाई पड़ी घूमनी खुदाई पड़ी
गाँजा गलेहार हुआ हाथ का सनद है।
छव रस विहाय चाख्यो चतुर चितेरे चुप
नौ रस विवेक का नमूना रामनन्द है।[५]

(२)

हफ्त समुन्दर सुन्दर है नहीं पीने के लायक आब है खारा।
नूर-जहान जहान में है पर तेरा-सा तू है तुही आशियारा।
पै रामानन्द सनन्द यही मसनन्द के पास पड़ा रहै प्यारा।
जिन्दगी खाक है चाक जिगर गर पास नही दिलदार हमारा॥[६]

*

---

१. यह परिचय कविवर पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी' द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर तैयार किया गया है।—सं०

२. श्रीवियोगीजी ने आपको अपनी आँखों देखा था। उन्हीं के यहाँ आप रहते भी थे।—सं०

३. श्रीवियोगीजी के कथनानुसार आपकी मृत्यु अस्सी-पचासी वर्ष की आयु में हुई थी। इसी आधार पर अनुमान किया जाता है कि आपका जन्म सन् १८३०-३५ ई० के आस-पास हुआ होगा।—सं०

४. यह पुस्तक लहरी प्रेस (बनारस) से प्रकाशित हुई थी।

५. श्रीवियोगीजी से प्राप्त।

६. उन्हीं से प्राप्त।

शीतल प्रसाद

आपका मूल निवास-स्थान तो काशी था, किन्तु आप श्रीनगर (पूर्णिया) के राजा कमलानन्द सिंह (सं० १६३३-६७ वि०) के दरबार में आश्रित थे।[1] आपने व्रजभाषा में स्फुट रचनाएँ की थीं, जिनमें से कुछ उपलब्ध होती हैं।

उदाहरण

गाहक जो गुन को निबाहक गुनीजन को
दाहक कुराही-गन-बन के बिलिन्द को।
पालक प्रजान को निहालक जो दीनन को
सालक हिये मे अनदेखिन के बृन्द को।
जाको देस-देस के नरेसहू सराह्यौ बेस
सीतल सुकवि रह्यौ ऐसे कुलचन्द को।
छोड़ि हम सबको सिधार्‌यौ कमलासन
कमलानँद महीप हाय लाल श्रीनन्द को ॥[2]

*

शीतलाप्रसाद त्रिपाठी

आप काशी-निवासी थे, पर पटना में बहुत दिन रहे थे। खड्गविलास प्रेस (पटना) मे आपने पुस्तक-लेखन-कार्य कई साल तक किया था।[3]

आपके पिता का नाम पण्डित ईश्वरीप्रसाद त्रिपाठी था। आप बनारस-कॉलेज में प्रधान साहित्याध्यापक थे। आपका 'जानकीमंगल नाटक' बहुत प्रसिद्ध है।[4] कहा

---

१. श्रीरूपलाल मण्डल, साहित्यरत्न (कला-भवन, पूर्णिया) के संग्रह के अनुसार।

२. इसकी रचना आपने अपने आश्रयदाता की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए की थी।—सं०

३. श्रीशिवनन्दन सहाय के कथनानुसार।

४ "संस्कृत-कॉलेज (पटना) के अध्यापक पण्डित छोटूराम त्रिपाठी ने लिखा है कि 'जानकी-मंगल' के अभिनय में लक्ष्मण का अभिनय करनेवाला बीमार पड़ गया, तो एक ही घण्टे में पुस्तक देखकर भारतेन्दु ने नाटक कण्ठस्थ कर लिया और सफल अभिनय किया। काशी-नरेश महाराजा ईश्वरी-प्रसादनारायण सिंह सुनकर चकित रह गये।"—श्रीशिवनन्दन सहाय।

जाता है कि हिन्दी में सबसे पहले वही नाटक अभिनीत हुआ था।[1] सं० १६२६ वि० में आपने 'सावित्री-चरित्र' नामक पद्यात्मक पुस्तक लिखी थी, जो वनपर्व (महाभारत) की सावित्री-कथा पर आश्रित थी।[2]

महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह बहुत धन व्यय करके आपसे हिन्दी-भाषा का एक बृहत् व्याकरण लिखवा रहे थे, जो आपके असमय स्वर्गवास से पूरा नहीं हुआ। बाबूसाहब का खयाल था कि त्रिपाठीजी के समान हिन्दी-व्याकरण का ज्ञाता उस समय कोई नहीं था।[3]

*

सुमेरसिंह साहबजादे[4]

आपकी रचनाओं में आपके नाम 'सुमेरेस' 'सुमरहरि' और 'सुमेरसिंह' मिलते हैं।

आपका जन्म आजमगढ़-जिले (उत्तरप्रदेश) के 'निजामाबाद' नामक कस्बे में, सं० १६०४ वि० (सन् १८४७ ई०) की भाद्र शुक्ल-तृतीया को हुआ था।[5] आप सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास के वंशज थे, इसलिए 'साहबजादे' कहे जाते थे। आप जाति के भल्ले खत्री थे। आपके पिता का नाम बाबा साधुसिंह था, जो बड़े भजनानुरागी, दीन-दुखियों के सहायक, रमता योगी, ईश्वरीय सत्ता में दृढविश्वासी और परम सिद्ध पुरुष थे। खालसा-पंथी लोग उनको गुरु गोविन्दसिंह का अवतार मानते थे। वे ऐसे आनन्दी जीव थे कि बालकों के संग बालक, युवकों में युवक और वृद्धों में वृद्ध बन जाते थे।

---

१. "भारतेन्दुजी, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी उद्योग करके अभिनय का प्रबन्ध किया करते थे और कभी-कभी स्वयं भी पार्ट लेते थे। पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी-कृत 'जानकीमंगल' नाटक का जो धूमधाम से अभिनय हुआ था, उसमें भारतेन्दुजी ने पार्ट लिया था। यह अभिनय देखने काशी-नरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह भी पधारे थे और इसका विवरण ८ मई, सन् १८६८ के 'इण्डियन मेल' (Indian Mail) में प्रकाशित हुआ था।"—देखिए 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (रामचन्द्र शुक्ल, संशोधित-प्रवर्द्धित संस्करण, सं० १६६७ वि०), पृ० ५४०।

२. यह पुस्तक सन् १८६१ ई० में खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित हुई थी। प्रेस के संचालक बाबू साहबप्रसाद सिंह ने इसकी भूमिका लिखी थी। स० १६२६ वि० में फाल्गुन कृष्ण १२, सोमवार को इसकी रचना समाप्त हुई थी। उक्त बाबूसाहब आपके परम मित्र थे।—श्री शिवनन्दन सहाय।

३. 'हरिऔध-अभिनन्दन-ग्रन्थ' (वही), पृ० ५२०।

४. आपका यह परिचय बाबू शिवनन्दन सहाय-रचित 'सिक्ख-गुरुओं की जीवनी' के आधार पर तैयार किया गया है, जो आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा की 'साहित्य-पत्रिका' में क्रमशः छपी थी।—देखिए, वही (खण्ड ६, संख्या ३, जून, सन् १६१४ ई०), पृ० २७। उसी के आधार पर गया-निवासी श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त ने गया में 'गृहस्थ'-पत्र में आपका परिचय लिखकर छपवाया था।—देखिए, 'गृहस्थ' (साप्ताहिक, भाग १५, अंक ४३, गुरुवार, १० दिसम्बर, सन् १६३१ ई०), पृ० ४।

५. वही।

लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में आप अपने पिता के साथ पटना आये और उन्ही से हरमन्दिर (पटना सिटी) में सिक्ख-धर्म की दीक्षा लेकर वही रह गये। आपके दीक्षा-गुरु तो आपके पिता ही थे, पर आपका शिक्षारम्भ पंजाब-निवासी विरक्त साधु भाई गरीबसिंह की देख-रेख में, सं० १६०७ वि० मे, हुआ था। सं० १६०६ वि० में आपने गुरुग्रन्थ साहब का पाठ समाप्त किया। आगे चलकर आपने भाई निहालसिंह से व्याकरण और न्याय पढ़ा। इन्ही से आपने तबला बजाना भी सीखा था। स० १६१५ वि० मे भाई सावण सिंह से 'रूपदीप' पिङ्गल पढकर कविता रचने लगे।

जब आप चौदह-पद्रह वर्ष के हुए, तब आप सफलतापूर्वक हिन्दी में काव्य-रचना करने लग गये। धीरे-धीरे आपकी गणना बिहार-प्रान्त के सुप्रसिद्ध हिन्दी-कवियो मे होने लगी।

आपने सन् १८६७ ई० में पटना में एक कवि-समाज की भी स्थापना की थी, जिसकी ओर से बाबू व्रजनन्दनसहाय 'व्रजवल्लभ' के सम्पादकत्व मे 'समस्यापूर्त्ति' मासिक पत्रिका निकलती थी। उस समय वे (व्रजवल्लभजी) बी० एन्० कॉलेज में एफ्० ए० के छात्र थे। उस पत्रिका में प्रांत के बाहर के कवि भी समस्यापूर्त्तियाँ भेजते थे। बहुत दिनों तक आप इस कवि-समाज के सभापति भी रहे। 'काशी-कवि-मंडल' और 'काशी-कवि-समाज' के भी सदस्य थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से आपकी बड़ी मैत्री थी।[1] हिन्दी के महाकवि 'हरिऔध' को भी आपसे विद्योपार्जन तथा काव्य और साहित्य-सर्जन में अनेक प्रकार की सहायता मिली थी।[2] चिरंजीव कवि[3] (मार्कण्डेयजी) भी आपको अपना काव्यगुरु मानते थे। आरा-निवासी पं० सकलनारायण शर्मा को भी आपने पिङ्गल पढ़ाया था।[4] कविवर रत्नाकरजी ने भी आपसे काव्यशास्त्र-सम्बन्धी बहुत-सी बाते पूछकर लिखी थी।[5]

आप गान-विद्या में भी बड़े निपुण थे। आपका स्थायी निवास सिक्खों के प्रसिद्ध गुरुद्वारा 'हरमंदिर' (पटना सिटी) मे था, जिसके आप महंत भी थे। सिक्ख-धर्मावलम्बी आपका नाम आज भी बड़े आदर से लेते हैं।

आप कुछ मोटे और नाटे थे। आपका रूप बड़ा भव्य और दर्शनीय था। आपका स्वर ऊँचा और प्रभावशाली था। कविता-पाठ बड़े आकर्षक और प्रभावशाली ढग से करते थे।[6]

---

१. "बनारस के मुहल्ले रेशम-कटरे की बड़ी संगत में आप प्राय: जाते थे। यहाँ भारतेन्दुजी से आपकी भेंट होती और दोनों सरस वार्त्तालाप में खो जाते थे।" —देखिए, 'हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास' (पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'), पृ० ५२२।

२. 'डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० ३०५।

३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

४-५-६. बाबू शिवनन्दन सहाय-लिखित आपकी जीवनी के अनुसार। —देखिए, 'साहित्य-पत्रिका', (वही), १६५४ ई०।

सन् १६०१ ई० (सं० १६५८ वि०) में जलोदर-रोग से पीडित होकर आप १२ नवम्बर को पटना से अमृतसर चले गये। उनके पटना छोड़ने की यही अंतिम तिथि है। सन् १६०२ ई० में ५ मार्च (गुरुवार) को ढाई बजे दिन में, लगभग पचपन वर्ष की आयु में, आप सद्गुरु की ज्योति में लीन हो गये। आपके निधन के बाद आपके भतीजा बाबा विचित्रसिंह हरमन्दिर के महंत हुए।

आप सिक्ख-धर्म को हिन्दू-धर्म का ही एक अंग मानते थे। सनातनधर्म-सभाओं में भी आप आमंत्रित होते और भाषण किया करते थे। एक बार आप काशी के सुप्रसिद्ध गोपाल-मन्दिर में भी दर्शनार्थ गये थे। रामचरितमानस का अर्थ कहते समय आपके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह होने लगता था। खड्गविलास प्रेस (पटना) से पंजाबी महात्मा संतसिंह की जो 'मानस' की 'भावप्रकाश-टीका' प्रकाशित हुई थी, उसका प्रूफ-संशोधन-कार्य आपने ही किया था। दीन-दुखियों और रोगियों की सेवा सहायता में आपकी खास दिलचस्पी थी। पटियाला-नरेश महाराजा महेन्द्र बहादुर, मिहिर रियासत के राजा रघुवीर सिंह, दरभंगा-नरेश महाराजा रामेश्वर सिंह, अयोध्या नरेश महाराजा प्रताप सिंह, सूर्यपुरा (शाहाबाद) के राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह, फरीदकोट-नरेश आदि से भी आपको सम्मान प्राप्त हुआ था। सन् १८६५ ई० में कलकत्ता जाने पर आपने तत्कालीन बड़े लाट और छोटे लाट तथा जंगी लाट से भी आदर-मान पाया था। नेपाल के प्रधान-मंत्री राणा रणवीर सिंह तो आपसे मिलने के लिए आपके निवास-स्थान पर भी आये थे। इस प्रकार समस्त देश के माननीय पुरुषों और सुप्रसिद्ध विद्वानों से आपको समादृत होने का गौरव प्राप्त हुआ था।

आप व्रजभाषा में बड़ी सरस कविता करते थे। इस भाषा में आपने एक विशाल प्रबन्धकाव्य लिखा था, जो लगभग नष्ट हो चुका है। केवल उसका दशम मंडल यत्र-तत्र पाया जाता है। इस ग्रन्थ का नाम था 'प्रेमप्रकाश'। गुरु गोविन्दसिंह द्वारा फारसी में रचित 'जफरनामा' का अनुवाद आपने 'विजय-पत्र' के नाम से किया था। आपने जितने ग्रन्थों की रचना की थी, उन सबमें हिन्दू-भावना स्पष्ट परिलक्षित होती थी। हिन्दी में आपने लगभग बीस पुस्तकों की रचना की है। गुरुमुखी-लिपि में होने के कारण हिन्दी के बहुत-से विद्वान् उनसे अपरिचित हैं। 'सुन्दरी-तिलक' इत्यादि ग्रन्थों में आपकी स्फुट रचनाएँ देखने को मिलती हैं।

आपकी प्रमुख पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—(१) सिक्ख-संप्रदाय के मुख्य-मुख्य घटनाओं का संवत्-बद्ध वर्णन, (२) गुरु-चरित्र-दर्पण, (३) अविचल नगर माहात्म्य (ब्रह्मपुराण में वर्णित 'पुण्योदय' तीर्थस्थल की कथा का दोहा-चौपाईबद्ध अनुवाद), (४) श्रीचक्रधर-चरित्र-चारु-चन्द्रिका (जाप की टीका), (५) जगत-जयकारी (जाप की टीका), (६) खालसा शतक-चिन्तामणि, (७) गुरुपदप्रेम-प्रकाश-पुराण[1], (८) वेदी-वंशोत्तम-सहस्रनाम, (९) वेदीवर-दोहावली (श्रीगुरुनानकजी की कथा), (१०) दर्दण्डन-

१. इसमें सोलह-सत्रह हजार भिन्न-भिन्न छन्द और कीर्तन के पद हैं। कहते हैं कि इसे आपने चार मास में ही रचा था। —'साहित्य-पत्रिका' (वही), पृ० ३२।

दोहावली (गुरु अंगदजी की कथा), (११) श्रवण भरण या सुमेर भूषण (अलंकार-ग्रंथ), (१२) गुरुविलास (श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी की कथा), (१३) दारिद-दुख-दंडन-दोहावली (११० दोहों मे दसवें गुरु का चरित्र), (१४) बिहारी-सतसई के कुछ दोहों पर कुंडलियाँ, (१५) नित्य कीर्त्तन-ग्रंथ, (१६) श्रीजपजी की टीका (छन्दोवद्ध) और (१७) गुरुमुख-सूत्र। उक्त पुस्तकों के अतिरिक्त कहते हैं, आपने एक नाटक की भी रचना की थी, किन्तु उसका पता नही चलता। आपने जो स्फुट काव्य-रचनाएँ की थी, वे निश्चय ही मिलती हैं।

उदाहरण

(१)

कैसे छपाइ साँची कहौ 'सुमरेस' की मानती बात नही।
सिगरी वृज को थकि बैठ रही अपने किये ते पछतात नही॥
अब आन उद्धो उहि पूनो को चन्द अमन्द प्रभा सो विधात नही।
रदनच्छद हार बिना गुण को छप्यो कौन सो चिन्ह दिखात नही॥[1]

(२)

कोऊ बिक्यो बिकै लाग्यो अरु कोऊ बिकावत साट लगी रहै।
जे गुण-गाहक चाहक तें रसिकेनन की तँह ठाठ लगी रहै॥
साँची कहै 'सुमरेस' को भा लला जो न गयो तिहि चाट लगी रहै।
जीवन-जीव जवाहर-जाहिर घाट पै रूप की हाट लगी रहै॥[2]

(३)

सदना कसाई कौन सुकृत कमाई नाथ
मालन के मनके सुफेरे गनिका ने कौन।
कौन तप साधना सों सेवरी ने तुष्ट कियो
सौचाचार कुबरी ने कियो कौन सुख भौन॥
त्यों हरि सुमेर जाप जप्यो कौन अजामेल
गज को उबारयो बार बार कवि भाख्यो तौन।
एते तुम तारे सुनो साहब हमारे राम
मेरी बार विरद बिचारे कौन गहि मौन॥[3]

---

१. 'गृहस्थ' (वही), पृ० ४।

२. वही।

३. 'हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास' (वही), पृ० ५२३।

(४)

मेरी भवबाधा हरहु राधा नागरि सोय,
जा तन की झाईं परत स्याम हरित दुति होय।
स्याम हरित दुति होय होय सभ कारज पूरो,
पुरषारथ सहि स्वारथ चार पदारथ रूरो।
सतगुरुशरण अनन्य छूटि भय भ्रम की फेरी,
मनमोहन मित सुमेरस गति मति मैं मेरी ॥[1]

*

१. 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' (वही, भाग ६, अंक ३, कार्तिक, सं० १६८५ वि०), पृ० ३४६।

परिशिष्ट-३

[इस पुस्तक के प्रथम खंड से सम्बद्ध नवीन सूचनाएँ, जो नई खोज के क्रम मे प्राप्त हुई है।]

आठवीं शती

भुसुकपा[1]

'पाटलिपुत्र' (साप्ताहिक, १९ दिसम्बर, सन् १९१४ ई०, पृ० २) में प्रकाशित 'सबसे पुरानी हिन्दी-कविता' शीर्षक लेख मे आपके विषय मे निम्नांकित नई सूचनाएँ मिली हैं—(१) आपके हुए कोई १२५० वर्ष हो गये, अर्थात् आप श्रीशंकराचार्य के समय में और कन्नौज के सम्राट् हर्षदेव के कुछ बाद हुए। (२) 'भइलि', 'लेलि' जैसे प्रयोगों से जान पड़ता है कि आप बनारस-गोरखपुर की ओर के थे।[2] (३) आप प्राचीन नालन्दा-विद्यापीठ में रहते थे। (४) आप पहले मगध के राजा की गवर्नमेण्ट में 'राउत' थे। राउत शायद किसी सेनापति-विशेष को कहते थे। (५) आपके एक ग्रंथ का अनुवाद तिब्बती भाषा में सन् ८२० ई० के लगभग किया गया। आपके लिखे संस्कृत-ग्रंथ 'शिक्षासमुच्चय' और 'बोधिचर्यावतार' योरप में छप चुके हैं। (६) आपकी हिन्दी-रचना के कुछ नमूने महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री को काठमाडू (नेपाल) में तीन तालपत्रों के अन्तर्गत प्राप्त हुए थे। उन तालपत्रों में संस्कृत की लिखावट के बीच पुरानी हिन्दी के वे नमूने उन्हें मिले थे। (७) आपकी कविता सबसे पुरानी-हिन्दी-कविता कही जायगी। आपके पहले की कोई कविता अबतक नहीं मिली है, जिसे हम हिन्दी कह सकें।[3]

※

---

१. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ३-४।

२. उक्त परिचय में आप नालन्दा के निकट किसी स्थान के निवासी बतलाये गये हैं।—स०।

३. प्रथम खण्ड में प्रकाशित परिचयों के आधार पर इस उक्ति की सार्थकता भी अब असिद्ध हो गई है।—स०

चौदहवीं शती

उमापति उपाध्याय[1]

'उमापति उपाध्याय और नव पारिजात-मंगल' नामक प्रकाश्यमान अनुसंधानात्मक पुस्तक में आपके जीवन एवं साहित्य पर अनेक नई सामग्री साहित्यानुसंधायकों के समक्ष प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक के लेखक श्रीबजरंग वर्मा का कहना है कि आपके नाम पर प्रचलित नाटक का वास्तविक नाम 'पारिजातहरण' न होकर 'नव पारिजात-मंगल' था। श्रीवर्मा ने अपनी पुस्तक के परिशिष्ट में आपके नाम पर प्रचलित कतिपय नये पदों का भी संकलन यत्र-तत्र से किया है, जिनमे दो इस प्रकार हैं—

उदाहरण

(१)

कमलिनि सङ्ग रङ्ग दिवस गमाओल, कुमुदिनि निशि बिसराम।
भमर ! पुछिअ तोहि, सरुप कहह मोहि, अधिक प्रीति कोन ठाम ॥
अशन कुसुमरज भमर ! सुरभि भज, दुहु बिरच एक साति।
एक दिन बाँधि निरोधि धरति तोहि, दोसर बाँधति पुनु राति ॥
सौरभ लोभ मुगुध मधुकर मन, जाए न केतकि-पास।
काँट बेधत अङ्ग रस नहि परसङ्ग, पाओब परम उपहास ॥
रस बुझ तें कुल रसिक सबहुँ फल, अधिक प्रेम गुणवान।
छत्रपति भूप रसिक रस-विन्दक, सुमति उमापति भान ॥[2]

(२)

जय सम्भु नटा जय सम्भु नटा, हँसि हर हेरथि गौरि निकटा ॥ध्रुव॥
भृङ्गी मधुर मृदङ्ग बजाबथि, नन्दी निपुण झालि झमटा ॥
ताल तमौर लए गुन गाबथि, सङ्गहि नारद मुनि बिपटा ॥
चान कला सँ चुइल अमिय रस, तेहि जीउल अजिन लपटा ॥
गौरि सिंह देखि दुरहि पड़ाइलि, लाज कओन सहजहि लपटा ॥
भमइत भानु जटा लए झाँपल, चमकि उठए जनि जलद घटा ॥
गङ्ग तरङ्ग भूमि भीजल अति, नयन चमक जनि बिजुलि छटा ॥
सासन भय बर दिअओ दिगम्बर, सुमति उमापति मिनति जोटा ॥[3]

*

१, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ३३-३५।
२. देखिए, वही। 'छत्रपति भूप' का उल्लेख होने से यह किसी अन्य उमापति की रचना ज्ञात होती है।—सं०
३. वही। मिथिला की प्रसिद्ध नचारियों में इस पद की गणना होती है।—सं०

जयदेव

डॉक्टर ग्रियर्सन ने आपको मैथिल कवि कहा है।[1] कहा जाता है कि आप 'गीतगोविन्द' के रचयिता सुप्रसिद्ध जयदेव से भिन्न व्यक्ति थे। आप सुगौना(दरभगा) के महाराज शिवसिंह के दरबारी कवि और विद्यापति के समकालीन बतलाये गये हैं।

उदाहरण

सुन्दरि करिअ तोरित अभिसारे।
अबहि उगत ससि तिमिर तेजत निसि, उसरत मदन पसारे ॥
बदन कामिनि हे बेकत न करिए, चौदिस होएत उजोरे ॥
चानक भरम अमिअ रस लालच, ऐठ कए जाएत चकोरे ॥
अमिअ बचन भरमहु जनु बाजह, सौरभ बूझत आने ॥
पङ्कज-लोभ भमर चल आओत, करत अधर-मधु पाने ॥
तोहें रस कामिनि मधु के जामिनि, गेल चाहिअ निज गेहे ॥
राजा सिबसङ्घ रूपनारायन, कवि अभिनव जयदेवे ॥[2]

*

पन्द्रहवीं शती

लालचदास[3]

'मिश्रबंधु-विनोद' (वही, प्रथम भाग, पृ० २५६) मे मिश्रबंधुओं ने आपकी चर्चा करते हुए आपका रचना-काल सं० १५८५ वि० (सन् १५२८ ई०) माना है।

त्रैमासिक 'हिन्दी-अनुशीलन' (भारतीय हिन्दी-परिषद्, प्रयाग, वर्ष १४, अंक ३, सन् १९६१ ई०) में आगरा-निवासी पण्डित मुरारीलाल शर्मा 'सुरस' ने अपने लेख 'अवधी मे कृष्णकाव्य के प्रणेता कवि लालचदास' मे सप्रमाण लिखा है कि (१) लालचदास हलवाई थे, ब्राह्मण नही। (२) डॉ० ग्रियर्सन के लेखानुसार आपका जन्म सं० १६५२ वि० (सन् १५९५ ई०) में हुआ था। (३) लालचदास और लालनदास एक ही व्यक्ति नही हो सकते; क्योंकि दोनों के समय में पर्याप्त अन्तर है। (४) आपने एक बार धोखे से विष खा लिया। इसके बाद आप भागकर संतों की शरण में गये, जिन्होंने 'राम' नाम का जप कराया। विष बहुत जल्दी ही उतर गया। आपको नाम-जप की महत्ता का ज्ञान हुआ और तभी से आप

१. 'डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० ७५।
२. —देखिए, 'Journal of Asiatic Society of Bengal' (वही, Vol. 53), P. 88. महाकवि विद्यापति का उपनाम भी 'अभिनव जयदेव' था। इसी कारण यह पद विद्यापति के पद-संग्रहों में भी पाया जाता है।—सं०
३. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १६४-६६।

हरिभक्त[1] हो गये। (५) आसानन्द ने आपकी मृत्यु का वर्णन करते हुए लिखा है कि जब आपको प्राणसंकट होने लगा, तब आप गंगातट पर लाये गये। आपने श्रीकृष्ण का स्मरण किया और विचार किया कि मैं 'हरिचरित्र' की पूरी कथा का वर्णन न कर सका, अतः आपने वहाँ उपस्थित भक्तों से अपनी अंतिम इच्छा प्रकट की, बाद आपका देहान्त हो गया। (६) आपका निर्वाण सं० १६०१ वि० के कई वर्ष पूर्व हो गया था। (७) 'हरिचरित्र' का प्रचार व्रज से विहार तक हो गया था। इस ग्रन्थ का फ्रांसीसी भाषा में भी अनुवाद हुआ। इससे भी इस ग्रन्थ की जनप्रियता एवं इसके प्रसार का पता चलता है। (८) 'हरिचरित्र' की रचना का श्रीगणेश आपने किया था, उसे आसानन्द ने पूरा किया। (९) डॉ० दीनदयालु गुप्त 'हरिचरित्र' का रचना-काल सं० १५०० वि० मानते हैं।

❋

सोलहवीं शती

बलवीर[2]

'हिन्दी हस्तलेखों की खोजवाली सन् १९१७-१८-१९ की दसवी रिपोर्ट' (पृ०२२) में लिखा है कि आपकी रचना 'डंगव-पर्व' मे महाभारत के युद्ध का वर्णन है।

❋

भूपति सिंह[3]

'सरस्वती' (वही, भाग १२, संख्या ८, पृ० ३९६-९७) में इसी नाम के एक और कवि की चर्चा है, जो इटावा (उत्तरप्रदेश) के निवासी 'उनाये जाति' के कायस्थ थे और जिन्होने सं० १७४४ वि० के द्वितीय सावन सुदी ११ बुधवार को भागवत (दशम स्कन्ध) का हिन्दी-अनुवाद दोहा-चौपाई में किया था।

❋

---

१. अनजानत हम ही विष खावा। भागि सन्त सरनागत आवा॥
सब सतन्ह मिलि कीन्ह उपाई। राम नाम मुष वरिषै पाई॥
सो विष उतरत वार न लागी। सत्य नाम जो देखी जागी॥
तब हरिभक्त भयउ मैं आई। त्राहि त्राहि जगदीस गोसाई॥
—'हिन्दी-अनुशीलन' (वही) से।

२. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ६३।

३. वही, पृ० ६४।

लक्ष्मीनारायण[1]

विहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सीतामढ़ी-अधिवेशन के सभापति-पद से भाषण करते हुए बाबू शिवनन्दन सहाय ने आपका स्थिति-काल सं० १५८० वि० के आसपास बतलाया है।[2]

'पुस्तक-भंडार रजत-जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ' (वही, पृ० ६२६) मे आपका स्थिति-काल सं० १६१० वि० से स० १६८८ वि० के बीच कहा गया है।

*

हेमकवि[3]

'शिवसिंह-सरोज' (वही, चतुर्थ सं०, सं० १९३४ वि०, पृ० ३३७) मे संभवतः आपका ही निम्नांकित छन्द संकलित है। उसीमें ४६५ पृष्ठ पर कवि का जो सांकेतिक परिचय है, उसमे कवि के निवास-स्थान आदि का उल्लेख नही है, केवल इतना ही अंकित है—'शृङ्गार मे सुन्दर कवित्त हैं।'

उदाहरण

करिकै शृंगार अली चली पियपास
तेरे रूप को दिमाग काम कैसे धीर धरिहै।
ए री मृगनयनी चाल चलत मरालन की
तेरी छवि देखे ते पिया न ध्यान टरिहै॥
ताते तू बैठि रूप आगरी सुमन्दिर में
तेरे रूप देखे ते अर्क-रथ अरिहै।
कहै कवि हेम हियो ढाँपि लेहु अंचल ते
पेटी ना दिखाउ कोऊ पेटमारि मरिहै॥

*

१. 'हिन्दी-साहित्य और विहार' (वही), पृ० ६८।
२. 'विहार की साहित्यिक प्रगति' (विहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पटना-३), पृ० ६२।
३. 'हिन्दी-साहित्य और विहार' (वही), पृ० ७२।

सत्रहवीं शती

अनन्तदास

आपका लोकप्रचलित उपनाम 'अनन्तानन्द'[1] था, पर आप स्वयं अपने को अनन्तदास ही कहते थे। आप मुजफ्फरपुर-जिले के निवासी कबीर-पंथानुयायी एक निर्गुणिया संत थे।[2] हिन्दी में आपकी दो काव्य-कृतियाँ उपलब्ध होती हैं—(१) अनन्त-परिचय और (२) अनन्त-सागर।[3]

उदाहरण

(१)

आपै साधै भक्ति अराधै, पकड़ै दृढ़ विश्वासा।
चरण धोय चरणोदक पीवै, गहै भक्ति की आशा॥
प्रेम प्रीति से साधु जिमावै, जूठ माँगि कर पावै।
ज्ञानप्रकाश होय जूठन ते, जो कछु भरम न आवै॥

---

१. परमपूज्य जन-वन्द्य भे, श्रीगुरु रामानन्द।
तिनके शिष्य सुजान अति, भये अनन्तानन्द॥
निर्गुण भक्ति-प्रचार में, गुरु कबीर का मार्ग।
गहा अनन्तानन्दजू, वेद-विदित सो मार्ग॥
—'अनन्त-परिचय और अनन्त-सागर' (श्रीस्वामी हनुमान दास, प्रथम सं०,सं० २००७ वि०), पृ० ५-६। रैदास के पूर्व के अनन्तदास के साथ मिश्रबंधुओं ने एक दूसरे अनन्तदास का उल्लेख करते हुए उनका स्थिति-काल सं० १६५७ वि०(सन् १६०० ई०) बतलाया है।—देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, प्रथम भाग), पृ० १९६।

२. 'अनन्त-परिचय' के आरम्भ की पाद-टिप्पणी में लिखा है—"सम्भव है कि स्वामी रामानन्दजी महाराज के शिष्य अनन्तदासजी से अन्य ही कोई अनन्तदासजी महात्मा हुए हों, जिनकी रचना रूप अनन्त-परिचय और अनन्तसागर है; क्योंकि इनकी रचना में स्वामी रामानन्दजी का नाम कहीं नहीं आया है। अनन्तदासजी के लेख से मालूम होता है कि ये भी कबीरसाहब के अनुसार शान्त रस के प्रेमी निर्गुण राम ब्रह्मनिष्ठ थे।"—वही, पृ० ६ तथा ७।

३. (क) ये दोनों पुस्तकें एक ही साथ मिलाकर प्रकाशित हैं। 'अनन्त-परिचय' ४० पृष्ठों का है और 'अनन्त-सागर' ४१ से २०७ पृष्ठों तक है। दोनों के टिप्पणीकार, सम्पादक और प्रकाशक स्वामी हनुमानदासजी हैं। सं २००७ वि० में अनन्तचतुर्दशी को इन दोनों का प्रकाशन हुआ था। मुजफ्फरपुर-जिले के चकना (मठ) के संत श्रीनन्दनदासजी से ये पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। श्रीनन्दनदासजी को पत्र लिखने पर भी कोई परिचयात्मक विवरण नहीं मिला।—सं०
(ख) अनन्तदास नामक एक कवि की 'पीपा-परिचय' नामक एक हिन्दी-पुस्तक मिलती है, जिसका निर्माण-काल सं० १६५७ वि० (सन् १६०० ई०) और लिपि-काल सं० १८२९ वि० है। इसमें पीपाभक्त का वर्णन किया गया है। कहा नहीं जा सकता कि यह पुस्तक किस अनन्तदास की है।—देखिए, 'हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त इतिहास' (वही), पृ० ८७।

अविनाशी कहँ भोग जु लागै, महाप्रसाद जु होई।
भक्त प्रसाद परस्पर कहिये, जानैगा जन कोई॥
राम भक्त अन्तर कछु नाही, एक भाव ते परसै।
सुनहु अनन्त सकल घट कर्त्ता, प्रगट भक्त मे दरसै॥[1]

(२)

यावत मन परिचय नही, तावत सिद्ध न होय।
अनन्त ध्यान योग तप, कोटि करै जो कोय॥
इन्द्रिय निग्रह योग तप, यह सब मन की वृत्ति।
अनन्त मन परिचय भया, सहजहि होय निवृत्ति॥
पवन शून्य के भीतरे, पकरि सकै नहि कोय।
अनन्त ऐसा मन अहै, धरै सु पूरा होय॥
अनन्त रमिता राम की, यावत रहम न होय।
तावत मन अस्थिर नही, कोटि करै जो कोय॥
मन लै राखे पवन में, जामें शब्द अमोल।
अनन्त वा से मिलि रहे, सो मन कबहि न डोल॥
देनहार करतार है, ता से करे न प्रीति।
माया को याँचत फिरे, जारौ जग की रीति॥
अनन्त जग बहिरा भया, मानत नाही सीख।
साईं से परतीति नहि, माँगत माया भीख॥
अनन्त यह मन एक है, मन का कर्म अपार।
कर्म सकल बेड़ी भई, बाँधा सब संसार॥
मन ते ब्रह्म अपार है, मन ते ब्रह्म अलेख।
अनन्त सब में मिलि रहा, तिल में तेल परेख॥
पाँचों भइया एक कै, गगन गुफा में वास।
मनुवाँ को साथी किया, पाया साहब साथ॥
अनन्त वा दीदार को, पाँचो संगी साथ।
मनुवाँ को आगे किया, दीपक लीये हाथ॥[2]

---

१. 'अनन्त-परिचय और अनन्त-सागर'(वही), पृ० ४।
२. वही, पृ० १८५-८८।

अनन्य कवि

आप विधाता सिंह[१] के समकालीन थे।[२] आपके निवास-स्थान का ठीक-ठीक पता नही चलता, लेकिन अनुमान किया जाता है कि आप बिहार के ही रहनेवाले होंगे।[३] आपकी गिनती उस समय के अच्छे कवियो में थी। आपकी रचनाओं के केवल तीन ही उदाहरण मिले हैं।

उदाहरण

(१)

करम की नदी जामे भमर के भौंर परैं
लहरैं मनोरथ की कोटिन गरत है।
काम सोक मद महा मोह सों मगर तामै
क्रोध सो फनिन्द जाको देवता डरत हैं॥
लोभ जलपूरन अखंडित अनन्य भनै
देखौं वार पार ऐसो धीर ना धरत है।
ज्ञान ब्रह्म सत जाके ज्ञान को जहाज साजि
ऐसे भव-सागर को विरले तरत है॥[४]

(२)

वैष्णव कहत विष्णु बसत बैकुण्ठ धाम
शैव कहत शिवजू कैलास सुख भरे है।
कहै राधाबल्लभी बिहारी बृन्दाबन ही में
रामानन्दी कहै राम अवध से न टरैं हैं॥

---

१. ये तारनपुर (पटना) के निवासी थे। इनका परिचय 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (प्रथम खण्ड, पृ० ९३) में प्रकाशित है। इनका जन्म सं० १७३८ वि० (सन् १६८१ ई०) में हुआ था। जिस समय ये अनन्य कवि से मिले होंगे, उस समय दोनों ही लगभग चालीस वर्ष के रहे होंगे। इस तरह अनुमान है कि आप १७वीं शती के उत्तरार्द्ध में रहे होंगे।—सं०

२. 'विहार-दर्पण' (वही), पृ० ६३।

३. वही, पृ० ६३। विधातासिंह ने घूम-घूमकर अपने समय के सभी अच्छे पंडितों और कवियों से भेंट की। इस सिलसिले में आपकी मुलाकात सर्वप्रथम अनन्य कवि से हुई। अक्सर ऐसा देखा गया है कि सबसे पहले लोग अपने आस-पास के प्रसिद्ध व्यक्तियों से ही मिलते हैं। विधाता सिंहजी का सर्वप्रथम अनन्य कवि से मिलना और तत्काल उनको रचनाओं को लिपिबद्ध करा लेना सिद्ध करता है कि आप संभवतः बिहार के ही निवासी होंगे।—सं०

४. 'विहार-दर्पण' (वही), पृ० ६३-६४।

एतो सब देव एक-देसिक अनन्य भनै
हम तुम सब आप ठौरन ज्यौ धरे है।
चेतन अखंड जामे कोटि ब्रह्माण्ड उडै
ऐसो परब्रह्म कहा पुरिन मे नरे है॥[1]

(३)

बिन भेदन भेद न जानै कछू मति के अनुसार लही सो लही।
नहि वेद पुरान की रीति कछू अनरीति की टेक गही सो गही॥
समुझायो नहीं समुझै गुरु को गुरु को अपमान लही सो लही।
यह तामस ज्ञान अनन्य भनै पुनि मूरख गाँठि गही सो गही॥[2]

※

दलेलसिंह[3]

'हिन्दी हस्तलेखों की खोज की सन् १६२०-२२ की ग्यारहवी रिपोर्ट' (रा० ब० हीरालाल, सन् १६२६ ई०, पृष्ठ ५५) मे लिखा है कि—(१) आपका उपनाम 'नृपतिदलसाही' था। (२) आप जाति के चौहान क्षत्रिय थे। (३) आपके 'शिवसागर' नामक ग्रंथ की रचना का श्रीगणेश सं० १७५७ वि० में अक्षय तृतीया (बृहस्पतिवार, ११ अप्रैल, सन् १७०० ई०) को हुआ था, जो सं० १७७१ वि० (सन् १७१४ ई०) में सम्पूर्ण हुआ। इसमे कही-कही शिव-सम्बन्धी कथाएँ हैं, पर अधिकतर अन्य देवी-देवताओं के ही वर्णन है; यथा— कृष्ण और उनकी लीला, नारद, गंगा, तुलसी, सावित्री, दुर्गा, गणेश आदि।

गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय में आपके द्वारा रचित 'रामरसार्णव' नामक काव्य-ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति (काव्य-७८) सुरक्षित है।

※

दामोदरदास[4]

'शिवसिंह सरोज' (चतुर्थ स०, स० १६३४ वि०, पृ० ११७) में दामोदर कवि का उल्लेख है, जिनके नाम-मात्र परिचय में, पृ० ३६४ पर निवास-स्थान का पता नही दिया गया है। अतः, अनुमान है कि पृ० ११७ में आपका ही निम्नांकित पद संकलित है—

---

१. 'विहार-दर्पण' (वही), पृ० ६४।
२. वही।
३. 'हिन्दी-साहित्य और विहार' (वही), पृ० ७७-७८।
४. —देखिए, वही, पृ० ७८।

उदाहरण

पंकज चम्पक बेलि गुलाब की माल बनावति आनँद पावै।
आछे अँगोछे से अंग अँगौछि गुलाब फुलेलरु सोधो लगावै।
भूषण बास सम्हारि दमोदर आछे से केश में फूल भरावै।
मिस ही पिय को मग जोवति है हठि द्वार त्यों चित्र अली को दिखावै॥

※

पदुमदास[1]

गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय मे इसी नाम के किसी व्यक्ति के लिखे 'भाषा-भूषण' नामक अलंकार-ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ (अलं० ६ तथा ७) सुरक्षित हैं। इनमें दूसरी प्रति का लिपि-काल सं० १६०७ वि०, अर्थात् सन् १८४६ ई० है।

उक्त पुस्तकालय मे आपके 'हितोपदेश' की तीन (काव्य-१०६, १०७, तथा १०८) और 'काव्यमंजरी' की दो (काव्य-१५ तथा १६) हस्तलिखित प्रतियाँ भी संग्रहीत हैं।

※

प्रबलशाह[2]

'गृहस्थ' (वही, भाग १६, अंक २, गुरुवार, १४ जनवरी, सन् १६३२ ई०, पृ० १२) में श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि—(१) आप महाराज अमरसिंह के पुत्र थे।[3] (२) आप भोजपुराधीश महाराजा बहादुर सर राधाप्रसाद सिंह के पूर्वज थे। (३) आपके ही दरबार में 'दिनेश कवि' और ('उदवन्तप्रकाश' के रचयिता) 'चन्द्रमौलि मिश्र' रहा करते थे। दिनेश कवि पर तो आपकी विशेष कृपा भी रहती थी और आप उनपर सर्वस्व न्योछावर करने को सदैव प्रस्तुत रहते थे। (४) आप स्वयं तो कुछ विशेष पढ़े-लिखे न थे, किन्तु हिन्दी-कवियों के सत्संग से अच्छी कविता करने लग गये थे। आपके हृदय में हिन्दी का अटूट अनुराग था। (५) आपने 'बारहमासा' नामक एक और पुस्तक की रचना सवैया, दण्डक, छप्पय आदि छन्दो में की थी।

'माधुरी' (वही, वर्ष ६, खण्ड, २ संख्या ६, आषाढ, तुलसी-सं० ३०४, पृ० ८०२) में श्रीत्रिभुवननाथ 'नाथ' का मत है कि (१) आपका नाम कहीं-कही 'प्रबलसिंह' भी लिखा है। आपकी रचनाओं में आपका नाम 'प्रबल' और 'प्रबलेश' भी मिलता है। (२) आपके द्वारा रचित 'बारहमासा' नामक पुस्तक को, दिनेश कवि की 'रसिक-संजीवनी' के साथ, डुमराँव-राज के दीवान रायबहादुर जयप्रकाशलाल ने भोजपुराधीश महाराजा सर राधाप्रसाद सिंह के आज्ञानुसार, प्रकाशित कराकर निःशुल्क वितरण कराया था।

---

१. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ८३।

२. वही, पृ० ८४-८५।

३. इस बात का समर्थन एक अन्य विद्वान् ने भी किया है।—देखिए, 'माधुरी' (वही, वर्ष ६, खण्ड २, संख्या ६, आषाढ, तुलसी-सं० ३०४), पृ० ८०२।

उक्त (माधुरी) पत्रिका में आपके निम्नांकित नये उदाहरण उपलब्ध हैं—

उदाहरण

(१)

खोया सुधा भरि चंन्द्रकला यह
पूस की राति नैं नीन्द हरी है,
आवत मानहु लोलि गई सुवढ़ो
अति ही न जरी न मरी है,
जाति न क्यो हूँ रही ठहराय
सो कौन विचार विचार खरी है,
जानति हौ 'प्रबलेश' बिना जिय
लीबे को री यह आनि अरी है।[1]

(२)

आयो जेठ अति ही प्रचंड तपै मारतंड,
अनल कलित वहै अनिल लागै तई।
आवाँ-सो भयो जगत, तावा-सो तपति भूमि,
लागति है सोम की मयूख विष-सी दई।
चंदन चढ़ाय घसि घनसार लायें तन,
जलत बिछाये ताप अधिक भई नई।
यामे आनि मिले री अचानक 'प्रबल' प्रभु,
लीने भरि अंक सब तपन विदा भई॥[2]

(३)

आयो सखि सावन सु कीन्हो पिय आनन हो,
हरी भूमि देखे मेरो प्राण लरजतु है।
झूमें झुके झार मतवारे से लगत और,
दिसिन ह्वै 'प्रवल' री घन गरजतु है।

१. 'माधुरी' (वही), पृ० ३८२।
२. वही, पृ० ८०३।

बढ़ी बेली पौन के झकोरें लपटाति द्रुम,
झींगुर सालूर निशि आन तरजतु है।
जानि के अकेली बोल बोलि कै पपीहा मोहि,
महा दुख देत कोऊ नाहिं बरजतु है॥[१]

(४)

भादो घन 'प्रबल' कठोर गरजत, और,
मोरन के शोर सुने कल न परति है।
तैसई खद्योत री उदोत ह्वै बुझाई जात,
सीरे पौन लागें बिरहागिनि बरति है।
आवत न नेरे नीद बोलत पपीहन के,
दादुर कठिन कैधों तिन तें डरति है।
जानै कहाँ मीच प्राण लीबे को उपाय ये तो,
जेतो यह दमक सों दासिनी करति है॥[२]

(५)

क्वार री कुमुद सर फूले बन कास पेखि,
निपट उदास मन रहत अधीर सों।
बिमल आकास त्यों कुमुदिनी प्रकास भयो,
फैलो चाँदनी है मनों बोरी छिति छीर सों।
आये कोक सोक भरे बोलत निरास निसि,
सुन मेरी आली हौ न जीहों ऐसी पीर सों,
ऐसो समय पाय मार करिहै सो मार-मार
फूलन के धनु धरे फूलन के तीर सों॥[३]

*

१. 'माधुरी' (वही), पृ० ८०३।
२. वही।
३. वही।

भगवतीदास

आपका निवास-स्थान आरा[1] (शाहाबाद) था। आप जैनधर्म के अनुयायी थे। हिन्दी में आपकी एक पुस्तकाकार रचना 'बृहत्‌विलास' का उल्लेख मिलता है। इसका रचना-काल सं० १७५५ वि० (सन् १६९८ ई०) बतलाया गया है।[2]

*

रामचरणदास[3]

गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय में आपके नाम के ही किसी व्यक्ति के लिखे 'पिंगल' नामक ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति (अलं० ३) सुरक्षित है।

*

शंकर चौबे[4]

'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही, पृ० ४२४-२५) में डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने लिखा है—(१) आपका जन्म एक कात्यायन-गोत्रीय कान्यकुब्ज-परिवार में हुआ था। (२) आपके पिता (पं० शोभाराम चौबे) के देहान्त के बाद आपके घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी, जिसके कारण आपकी माताजी को गायें पालनी पड़ी। परिवार में किसी अन्य पुरुष के अभाव में गाये भी आप स्वयं ही चराते थे। किंवदन्ती है कि एक दिन गाय चराते समय आपने शिकारी वेश में भगवान् रामचन्द्र को घोड़े पर जाते देखा और आप कई दिनों तक उनके विरह में व्याकुल उसी वन में घूमते रहे। बहुत खोज करने पर आपको आपकी माता ने देखा और आप घर लाये गये। (३) कुछ ही दिनों के बाद बिहार में भीषण अकाल पड़ा। इस समय आप कुल अठारह वर्ष के थे। आपके परिवार में आपकी माता के अतिरिक्त एक बहन भी थी। सभी के लिए भोजन जुटाना आपके लिए बड़ा दुष्कर था। उस समय इसुआपुर के समीपस्थ देवीसिंह नामक एक दयालु जमीदार ने आपकी सहायता की, जिससे आपके कुछ दिन कटे। (४) कुछ दिन बाद सुकाल जानकर आप अपनी माता और बहन के साथ अयोध्या आकर कल्पवास करने लगे। इसी समय आपकी माता का देहान्त हो गया, जिसके कारण आप विरक्त हो गये। (५) अयोध्या के पीताम्बरदास नामक एक महात्मा के सत्संग से आपकी इस विरक्ति में और भी वृद्धि हुई। अत, अपनी बहन को अपने एक निकट सम्बन्धी के यहाँ छोड़कर आपने बदरीनाथधाम के लिए प्रस्थान किया और वहाँ से शेष तीनों धामो की यात्रा कर

---

१. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० ५२।

२. 'संवत सत्रह से पंचावन
ऋतु वसंत बैसाख सुहावन
शुक्ल पक्ष तृतीया रविवार।'
—देखिए, वही।

३. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ८९।

४. —देखिये वही, पृ० ९३-९४।

आप उज्जैन (मालवा) पहुँचे। (६) कुछ दिनों तक उज्जैन में रहकर आप नैमिषारण्य (उत्तर-प्रदेश) चले आये। वहाँ रमण दुबे नामक एक पंडित की कन्या से आपका विवाह हो गया और अपनी पत्नी के साथ आप अपने गाँव चले आये। (७) घर पर कुछ दिनों तक रहने के बाद आप शाहाबाद-जिले के बोधछपरा नामक गाँव गये और वहीं के किसी महात्मा का आपने शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। लेकिन, कुछ ही दिनों के बाद आप पुनः अपनी जन्मभूमि लौट आये। (८) वहाँ से एकाध बार आप पटना-जिले के नौरा-स्टेशन के समीप कोठिया नामक ग्राम में भी गये। (९) आपके चार पुत्र थे—रामकिंकर, प्रयागदत्त, गंगागोविन्द और जीवाराम। (१०) आप दास्यभाव से भगवान् रामचन्द्र की उपासना करते थे।

'पुस्तक-भण्डार जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ' (वही, पृ० ६०९) में लिखा है कि (१)—आप नित्य गंगा-स्नान के अनुरागी और अभ्यासी थे, जिसके प्रभाव से आपका कुष्ठरोग छूट गया था। (२) आपके 'राममाला' (एक सौ आठ खण्डों में) के प्रत्येक खण्ड में १०८ भजन हैं।

उदाहरण

(१)

राम राम राम जपे सेई भला तपसी
सीताजी माता हैं जगत सकल बालक हैं,
पालक श्रीरामचन्द्र सबन्हि के बपसी।
राम एक आत्मा अनात्मा प्रमात्मा है,
कोई वेद-बिदुख जाने कोई एक जपसी
सहज से न राम मिलहि प्राक्तन संस्कार बिना
चार दिन सहि न जात माघ के एक झपसी।
खोआ चीनी मिसरी कंद रामनाम भजि अनंद
शंकरदास जगत-सुख महुआ के लपसी ॥[1]

(२)

वेद पुरान शास्त्र संगत से, संत करहि जे जाप।
से अक्षर हम प्रगटे गावल, भजत छुटे त्रय ताप ॥
सब साधुन मो जाय-जाय हम, कहि सुनि सब मतलीन्ह।
तब निश्चै ठहराय गाय ये, राम भजन हम कीन्ह ॥[2]

*

१. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४२७।
२. वही।

हलधरदास[1]

श्रीसियाराम तिवारी ने पटना-विश्वविद्यालय में पी-एच्० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत किये गये अपने शोध-प्रबन्ध ('हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य', पृ० १६६—२०६) में लिखा है—(१) आपका जन्मकाल सन् १५२५ ई० और मृत्युकाल सन् १६२६ ई० के आसपास है। इस आधार पर आपका स्थितिकाल १६वी शती सिद्ध होता है। (२) आपकी रची एक तीसरी पुस्तक 'श्रीमद्भागवतभाषा' भी है और 'शिवस्तोत्र' की तरह यह पुस्तक भी अमुद्रित है। (३) 'सुदामाचरित' का रचना-काल सन् १५६५ ई० है। उसका मुद्रण कलकत्ता और पटना के अतिरिक्त बनारस (ठाकुरप्रसाद गुप्त, कचौड़ी गली) से भी हुआ था।

श्रीउमाशंकरजी ने अपने लेख 'भक्तकवि हलधरदास' ('उत्तर-बिहार', १६ जनवरी, सन् १९६१ ई०, पृ० ७ तथा दैनिक 'नवराष्ट्र', २० अगस्त, सन् १९६१ ई०, पृ० २) में बतलाया है कि—(१) आपके पिता एवं बड़े भाई हाजीपुर-सूबे मे एक प्रतिष्ठित पद पर काम करते थे और शैशवावस्था में अपने पिता के देहान्त के पश्चात् आप अपने बड़े भाई के अभिभावकत्व मे पले। (२) आपका जन्मकाल सन् १५३५ ई० तथा मृत्युकाल सन् १६३६ ई० के लगभग है।

'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, पृ० ११०६) मे भी आपकी चर्चा है।

आपके प्रसिद्ध ग्रंथ 'सुदामाचरित' की प्रतियाँ गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय (जीवनी—५-६) तथा पटनासिटी के चैतन्य-पुस्तकालय मे सुरक्षित हैं। चैतन्य-पुस्तकालय की प्रति सचित्र है। उसमें इसका लिपि-काल कार्त्तिक सुदी, सवत् १६०२ वि० लिखा है।

*

सूरकिशोर[2]

आपका जन्म जयपुर (राजस्थान) के सनाढ्य-ब्राह्मण-वंश में हुआ था। मधुराचार्य के प्रति तत्कालीन जयपुर-नरेश रामसिंह का दुर्व्यवहार देखकर आप भी जयपुर छोड़ सीकर (शेखावाटी) चले गये। वहाँ सन्तो की एक जमात में रहने लगे। आरम्भ से ही जानकीजी में आपकी वात्सल्य-निष्ठा थी। आप हमेशा अपने पास जानकीजी की मूर्त्ति रखते थे और बाजार में जाकर उनके लिए खिलौने, मिठाइयाँ आदि खरीदा करते थे। आपके सहवासी साधुओं को जगन्माता में पुत्री-भाव रखना

---

१ 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ९४-९६।

२. अन्यप्रान्तीय—(क) यह परिचय डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह लिखित 'बिहार के रसिक-संत' शीर्षक निबन्ध के आधार पर तैयार किया गया है। —देखिए, 'परिषद्-पत्रिका' (त्रैमासिक, वर्ष १, अंक ३, अक्टूबर, सन् १९६१ ई०), पृ० ३८-३९।

(ख) शिवसिंह सेंगर ने आपका नाम 'किशोरसूर' बतलाया है। —देखिए, 'शिवसिंह-सरोज' (वही), पृ० ३९४।

अच्छा नही लगा। अतः, उन लोगों ने वह मूर्त्ति छीन ली। इस दुःख से आप मिथिला चले आये। वहाँ कुटी बनाकर, पुत्री के वियोग में, साधनामय जीवन व्यतीत करने लगे।[१]

जानकी के प्रति वात्सल्य-भावना रखने के कारण आप अपने को महाराज जनक का भाई और राम को अपना दामाद मानते थे। अतः, जब कभी आप अयोध्या जाते, तो उस नगर के भीतर अन्न-जल ग्रहण नही करते थे। आपने अपना सारा जीवन 'जामाता' और पुत्री की स्नेह-साधना में बिताया। आपने राम-सीता के प्रति अपनी वात्सल्य-भावना का आजीवन निर्वाह किया। दामाद के नाते आपने राम से परम पद तक की याचना नही की।[२] आपके सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त शिष्य प्रयागदास[३] थे। आपकी अधिकांश रचनाएँ फुटकर छन्दो मे मिलती हैं, ग्रन्थ केवल 'मिथिला-विलास' ही उपलब्ध है। ग्रियर्सन महोदय ने आपका समय सन् १७०३ ई० के आस-पास निर्धारित किया है।[४]

उदाहरण

(१)

नृप के गृह बाल बिहार करैं सिय की पद-रेनु जहाँ लहिए।
मुनि-वृन्द उपासक राम-बिबाह सोई निज ठौर हिये गहिए॥
कह 'सूरकिशोर' बिचार यही हिम वो तप वो बरषो सहिए।
चिउरो चबिकै फलवो भखिकै मिथिला महँ बाँधि कुटी रहिए॥[५]

(२)

सची सिर ढारैं चौंर उरबसी उड़ावैं भौंर
सावित्री सेवैं चरन महिषी महेस की।
बरुन धनेस राज-राज उडुराज कन्या
गांधर्वी किन्नरी कुमारी सेवैं सेस की॥

१. आपने मिथिला की प्रशंसा में अनेक छप्पयों की रचना की थी। —देखिए, 'The Tenth Report of the Hindi Ms. for the year 1917, 18 & 19, Page-63.

२. 'परिषद्-पत्रिका' (वही), पृ० ३९। इस विषय में रसिकों के बीच आपका यह छन्द बहुत प्रसिद्ध है—

निबही तिहुँ लोक में 'सूरकिसोर' बिजै रन में निमि के कुल की।
जस जाइ लग्यो सत दीप लौं कान कथा कमनीय रसातल की॥
मिथिला बसि औध सहाय चहै तौ उपासक कौन कहै भल की।
जिनके कुल बीच सपूत नहीं करैं आस दमादन के बल की॥

३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान द्रष्टव्य।

४. 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० २१४।

५. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४०१।

ललना नरेसन की दमकैं सुदामिनी-सी
सौज लिये आसपास खड़ी देस-देस की।
कन्या तिहुँ लोकन की तिन में 'किसोरसूर'
अद्भुत किसोरी बेटीराज मिथिलेस की ॥'[1]

(३)

आसपास सहचरी नूपुर झनकार करैं चंपा-
कैसी कली मनौ फूली बे-समान की।
सौंधें की लपटैं दपटैं भरि भँवरन की
बीनादिक बजन लागे उघटि कलगान की ॥
गोषन झरोषन के परदा उघारि दीन्हें
संतत सुभाइ लखी कोटि-सत भान की।
मिटिग्यौ अमंगल भयौ मंगल 'किसोरसूर'
जगमगाइ उठ्यौ महल जागी जब जानकी ॥[2]

✻

अठारहवीं शती

अजबदास[3]

गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय में आपके नाम के ही किसी व्यक्ति के लिखे 'ब्रह्माक्षरी ज्ञान-चालीसा' नामक दर्शन-ग्रंथ (दर्शन-८) की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है।

✻

अनूपचन्द दुबे[4]

'हिन्दी-हस्तलेखों की खोजवाली सन् १६२०-२१-२२ की ग्यारहवीं रिपोर्ट' (रायबहादुर हीरालाल, पृ० ११३) में लिखा है कि आपके मंत्र-गुरु श्यामसखाजी ने 'रागप्रकाश' नामक संगीत-शास्त्र की एक पुस्तक की रचना की थी।

✻

१. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४०१-२।
२. यह कवित्त डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह को निम्बार्काचार्य रामसखे की रचनाओं के प्राचीन हस्तलेखों में प्राप्त हुआ है।—सं०
३. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ६६-१००।
४. —देखिए, वही, पृ० १०१।

आनन्दकिशोर सिंह[1]

'रजत-जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ' (वही, पृ० ६३०) में उल्लेख है कि लार्ड विलियम बेंटिक ने आपको 'महाराजा बहादुर' की उपाधि से विभूषित किया था।

'वार्षिकी (सन् १९६१-६२ ई०, पृ० ४८-५०) के अनुसार आप अपने वंश के सातवें महाराज थे और आपका राजत्व-काल सन् १८१५ से ३८ ई० तक था। उक्त पत्रिका (पृ० १ और ५२) में ही आपकी रचनाओं के उदाहरण संगृहीत हैं, जिनमें दो इस प्रकार हैं—

उदाहरण

(१)

घन घन स्यामा कच लखि
लज्जित ह्वै जाय छिपत गिरि कन्द।
बिज्जु छटा दूरत मूरत दसन दमके
देखे गरजन सेत बादरसिंह सुनि भयो बन्द।
भौंह बंक निरखि इन्द्रधनुष लोप जात
अरु सारि सुरंग देखि सांझ को अरुनाई मन्द
कहत 'आनन्दकिशोर' पावस को
बरखा न लसत जानि दृष्टि अमृत ललाट को चन्द॥

(२)

सघन वन द्रुम वेलि डार पात
सब लहलहात रितु वसन्त आयो मान॥
रंग रंग के फूल फुलैं सरस सुगन्ध
भँवर गुंजत कोयल कूकत तान॥
सुर सप्त सम्पूरन सों गावैं कंठ मद्धे
उपजावै सुमत वार तुकन आदि बरन जान॥
तिनकी स्तुति करत 'आनन्द किशोर' गाय गाय
वाँछित फल होवैं विद्या निधान॥

*

१. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १०२।

उदयप्रकाश सिंह[1]

'रजत-जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ' (वही, पृ० ६३०) में उल्लेख है कि आपने 'विनय-पत्रिका' की टीका छपवाकर, पचीस-पचीस रुपये दक्षिणा के साथ पाँच सौ रामानुरागियों में वितरित की थी।[2]

*

केशव[3]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० २०८) में डॉ० ग्रियर्सन ने आपको मिथिला-नरेश महाराज प्रतापसिंह (सन् १७६१—७६ ई०) का दरबारी कवि बतलाया है।

*

कृष्णपति

आप मिथिला के 'उजान' नामक ग्राम के निवासी थे।[4] आपके दो पुत्र रमापति[5] एवं नन्दीपति[6] मैथिली के बड़े अच्छे कवि थे। आप स्वयं भी एक सुकवि थे। मैथिली मे आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

उदाहरण

कि कहब ओरे पहु परदेस गेल परिहार
ओकि हरिहरि जीब धरब सखि कोन परि।
उपवन ओरे मोर सोकर देखि घन,
ओकि अनुखन, मार-मगन भेल मोर मन।
सुनु सखि ओरे सून शयन देखि होअ भय,
ओकि निरदय, बिसरि रहल पहु रसमय।
सुनु धनि! ओरे सुमति 'कृष्णपति' कवि-बानी,
ओकि अनुमानी, अचिरे आओत पिअ गुन जानी॥[7]

---

१. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १०४।

२. आपके पिता राजा गोपालशरण सिंह ने भी 'रामचरितमानस' की टीका की पाँच सौ प्रतियाँ पचीस रुपये दक्षिणा के साथ रामभक्त सन्तों में बाँटी थी।—देखिए, वही, पृ० ११३।

३. वही, पृ० ११०-११।

४. 'मैथिली-गीत-रत्नावली' (वही), पृ० १२४।

५. इनका परिचय 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही, पृ० १५१) में द्रष्टव्य।

६. इनका परिचय उक्त ग्रन्थ के पृ० १३६ में द्रष्टव्य।

७. 'मैथिली-गीत-रत्नावली' (वही), पद-सं० ५१, पृ० २६। पं० बदरीनाथ झा ने अपनी इस पुस्तक में आपका एक और मैथिली पद उद्धृत किया है—'संकरि शरण धपल हम तोरा'। डॉ० जयकान्त मिश्र ने अपने 'A History of Maithili Literature, (वही, p. 426-27) में उसी पद को सहरसा-जिले के परसरमा-ग्राम-निवासी और सोन तथा हेम कवि के वंशज कृष्णकवि (श्रीवुच) द्वारा रचित बतलाया है।—सं०

कृष्णलाल

आपका निवास-स्थान बाँकीपुर (पटना) था।[1] हिन्दी-गद्य में लिखित आपकी दो पुस्तकें हैं—'मुद्राकुलीन' और 'समुद्र में गिरीन्द्र'। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

※

गुमानी तिवारी[2]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० ३१३) में डॉ० ग्रियर्सन के कथनानुसार —(१) आपकी रचनाओं के कुछ उदाहरण 'इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' मे प्रकाशित हुए थे। (२) 'इन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं, जो विहार मे हरएक की जवान पर हैं'।

※

गोपाल[3]

आपका नाम 'गोपाल प्राचीन' भी था।

आप टिकारी (गया) के निवासी थे। डॉ० ग्रियर्सन ने आपको टिकारी के महाराज मित्रजीत सिंह[4] का दरवारी कवि[5] वतलाया है, किन्तु श्रीकिशोरीलाल गुप्त[6] का कहना है कि आप मित्रजीत सिंह के पुत्र कल्याणसिंह[7] के आश्रित कवि थे।

---

१. 'मिश्रवन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० ६६५।

२. 'हिन्दी-साहित्य और विहार' (वही), पृ० ११२।

३. आपके स्थितिकाल के सम्वन्ध में अनुमान होता है कि आप अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में ही रहे होंगे; क्योंकि आपके आश्रयदाता टिकारी-नरेश महाराज मित्रजीत सिंह का समय उस शती (१८वीं) के अन्तिम चरण में ही पड़ता है। वे इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्तिकारी वीर वावू कुँवरसिंह के पिता वावू साहवजादा सिंह के समकालीन थे। वावू साहवजादा सिंह ने अपनी रियासत पर उत्तराधिकार पाने के लिए दीवानी अदालत में जो मुकदमा दायर किया था, उसके फैसले तक सरकार ने उनके छोटे नावालिग भाई ईश्वरीप्रसाद का गोद लिया जाना जायज मान लिया और शाहावाद के जिलाधीश ने सरकार को लिखा कि 'राजा मित्रजीत सिंह की योग्यता और क्षमता की जानकारी अदालत को होगी; मेरे विचार से अभिभावक के पद के लिए उनसे वढ़कर योग्यतम व्यक्ति दूसरा कोई नहीं हो सकता।' इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख मिलता है कि मित्रजीत सिंह ने अपने दोनों पुत्रों में अपना राज्य वाँट दिया था, जिसकी देखादेखी साहवजादा सिंह ने भी वैसा ही किया। —देखिए, 'कुँवरसिंह-अमरसिंह (डॉ० कालीकिंकर दत्त, प्रथम सं०' सं० २०१६ वि०), पृ० २१ तथा ३२।

४. "इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा अवध के सयादत अली खाँ के वीच ता० २१ जनवरी (सन् १७९८ ई०) की सन्धि के वाद—जिस सन्धि के द्वारा सयादत अली अवध के नवाव करार दिये गये। अवध की गद्दी के दूसरे दावेदार वजीर अली को पेन्शन देकर वनारस भेज दिया गया। उसके साथ जो व्यवहार किया गया था, उससे असन्तुष्ट होकर उसने अँगरेजों के खिलाफ भारतव्यापी षड्यंत्र के संगठन की योजना वनाई। विहार में भी उसके कतिपय सहायक थे। उनमें से एक गया-जिले (टिकारी) के मित्रजीत सिंह भी थे।'—'कुँवरसिंह-अमरसिंह' (वही), पृ० ७३-७४।

५. 'विहार-दर्पण' में भी ऐसा ही उल्लेख है।

६. 'डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० १८०।

७. महाराज मित्रजीत सिंह के पुत्र 'कल्याण सिंह' के नाम का पता कहीं नहीं मिलता। हाँ, उद्धृत उदाहरण की प्रथम पंक्ति में 'कल्यान' शब्द है, पर टिकारी-राजवंश से भली भाँति परिचित वावू रामदीन सिंह ने 'विहार-दर्पण' में नहीं लिखा है। महाराज ने अपने जीवन-काल में ही अपने दोनों पुत्रों के वीच अपनी सारी रियासत वाँट दी थी। उन पुत्रों के नाम थे हितनारायण सिंह और मोदनारायण सिंह। इस तरह भी अठारहवीं शती के अन्तिम चरण में ही आपका स्थितिकाल निश्चित जान पड़ता है।—देखिए, 'कुँवरसिंह-अमरसिंह' (वही), पृ० ३२।

उदाहरण

केहरी कल्याण मित्रजीत जू के तेरे डर सुत पति तजि बैरिनी बिहाल हैं।
कटि लचकति मचकति कच-भारन सो गिरे बेशुमार जहाँ सघन तमाल हैं॥
सुकवि गोपाल तहाँ खगन सतायो आनि गहे-गहे नयन डारैं अँसुवा विहाल है।
मोर खैंचै बेनी सीस फूलन चकोर खैंचै मुक्तन की माल गहे खैचत मराल है॥[1]

※

गोपालशरण सिंह[2]

'शिवसिंह-सरोज' (वही, पृ० ३६८, क्रम-सं० २२) के अनुसार—(१) आप सं० १७४८ वि० (सन् १६९१ ई०) में उपस्थित थे। अतः, इस आधार पर आपका जन्मकाल १७वी शती में अनुमित होता है। (२) आपने 'प्रबन्ध-घटना' नामक सतसई की टीका बनाई है (पृ० ३६८)। (३) पृ० ७२ में आपका निम्नांकित पद भी संकलित है—

उदाहरण

शोभित भामिनि मुकुलित केश।
मानों शम्भु-कण्ठते गिरिकै शशि-सँग मधु पीवत जनु शेश॥
भृकुटि चाप मनमथ कर इहि बिधि साजत प्रथम प्रवेश।
तामधि नयन विशाल चपल अति तीक्षण बाण लखे पिय शेश॥
नासिका कीर अधर बिद्रुम छबि हँसि बोलत मानो तडित लशेश।
कण्ठ कपोल मृणाल भुजाकर कमलन मानो इन्द्र धनेश॥
कुच निसोत कटि क्षीण जंघ युग कदली बिपत मनु उलटि धँशेश।
गजगति चाल चलत गौहनि द्युति नृप गोपाल पिय सदावशेश॥

※

गोपीनाथ[3]

विद्याकरजी (एम्० एल्० सी०, १८३, आर० ब्लॉक, पटना) आपके वंशधर हैं। सुनने मे आया है कि उनके पास आपकी रचनाएँ प्राप्य हैं।

१. 'शिवसिंह-सरोज' (वही), पृ० ५६।
२. 'हिन्दी-साहित्य और विहार' (वही), पृ० ११३।
३. वही, पृ० ११४।

चक्रपाणि[1]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० ३१४) में डॉ० ग्रियर्सन ने भी आपकी चर्चा की है।

'जर्नल ऑफ् द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल' (खण्ड ५३, पृ० ९१) में आपकी रचना का एक उदाहरण भी मिलता है।

※

चतुर्भुज[2]

आपकी रचना के उदाहरण 'जर्नल ऑफ् द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल' (खण्ड ५३, पृ० ८७) में प्रकाशित है। आपकी चर्चा डॉ० ग्रियर्सन ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० ३१४) में भी की है।

※

छत्रनाथ[3]

'शिवसिंह-सरोज' (वही, पृ० १४८) में नाथकवि[4] (क्रमांक ६) के नाम से निम्नांकित रचना मिलती है—

उदाहरण

शुंभ-निशुंभ-बिनासिनि पासिनि वासिनि-विन्ध्य गिरीश की रानी।
शंकर-संग-विलासिनि अंग-हुलासिनि श्रीकमलासिनि दानी॥
जाहि सदाशिव ध्यान धरैं अरु मान करैं मुनि चातुर ज्ञानी।
नाथ कहै सोई शैलकुमारी हमारी करै रखवारी भवानी॥[5]

※

---

१. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० ११७-१८।

२. आपका परिचय (भ्रमवश दो स्थानों पर) प्रकाशित हो चुका है।—देखिए, वही, पृ० ४८ तथा पृ० ११८।

३. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १२०-२२।

४. इस नाम से भी आपकी रचनाओं का उल्लेख मिलता है। —देखिए, वही, पृ० १२०।

५. जनश्रुति है कि आप निरक्षर थे और महादेव के वरदान से कवि बने थे। इसी आधार पर यह अनुमान है कि उद्धृत कवित्त आपका ही होगा। मैथिल विप्र होने के कारण आपका शाक्त होना भी संभव है।' शिवसिंह-सरोज' में अन्य पाँच नाथोपाधिधारी कवियों के संक्षिप्त परिचय से पता चलता है कि वे अन्य प्रान्त के थे, पर छठे नाथ कवि के परिचय में किसी स्थान-विशेष का उल्लेख नहीं है। अतः, आपकी शिव-शिवा-भक्ति के आधार पर ही प्रस्तुत उदाहरण संकलित किया गया है।—सं०

छोटूराम[1]

आप बाँकीपुर (पटना) के निवासी थे।[2] आपकी एक गद्य-रचना 'रामकथा' के नाम से हिन्दी में पुस्तकाकार छपी थी। आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

जयानन्द[3]

'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, पृ० ९७३) में मिश्रबन्धुओं ने और 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० ३१४) मे डॉ० ग्रियर्सन ने भी आपको वर्ण कायस्थ बतलाया है।

जॉन क्रिश्चियन[4]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० २९४) में डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है कि 'आपकी भाषा की कविता जनता तक पहुँची है और तिरहुत का प्रत्येक गानेवाला आपकी रचना का मूल अर्थ समझे बिना ही गाता है।'

जीवनराम[5]

श्रीउमाशंकरजी ने अपने लेख 'रामभक्त कवि जीवनराम रघुनाथकवि' (नवराष्ट्र, दैनिक, २ जुलाई, सन् १९६१ ई०, पृ० २-४) में लिखा है कि (१) आपकी गणना उस समय के एक प्रमुख रामभक्त के रूप में थी। (२) आपने वैष्णव धर्म के आदर्श को सामने रखकर सेव्य-सेवक भाव की उपासना-पद्धति पर काफी जोर दिया था। (३) आपने अपने जन्म-स्थान (शिवदाहा, मुजफ्फरपुर) में भगवान् राम का एक मन्दिर भी बनवाया था। (४) आपके पुत्र का नाम रामवल्लभ था, जो ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की पटना-शाखा में हिन्दी-मुंशी थे। (५) आपकी मृत्यु ८५ वर्ष की आयु में हुई थी। (६) आपके वंशज आज भी वर्त्तमान हैं।

※

---

१. 'विहारी-विहार' (पं० अम्बिकादत्त व्यास) की भूमिका में इसी नाम के किसी व्यक्ति द्वारा रचित एक वैद्यक-टीका की चर्चा मिलती है। कहा नहीं जा सकता कि वे आप ही थे या आप से कोई भिन्न व्यक्ति।—सं०

—देखिए, 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' (भाग ९, अंक ३, कार्त्तिक, सं० १९८५ वि०), पृ० ३४१।

२. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० ९७१।

३. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और विहार' (वही), पृ० १२५।

४. वही, पृ० १२६-२७।

५. वही, पृ० १२७-२८।

जीवाराम चौबे[1]

' 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही, पृ० ४३६-४२) और 'परिषद्-पत्रिका' (वही, वर्ष १, अंक ३, पृ० ४२) में डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने लिखा है—(१) आपके पिता की इच्छा थी कि आप विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन कर एक प्रसिद्ध प्रतिष्ठित पण्डित बनें। इसी दृष्टि से उन्होंने आपको व्याकरण और ज्यौतिष की शिक्षा दी। किन्तु, आपकी प्रवृत्ति इस ढंग की शिक्षा की ओर न होकर यौगिक शिक्षा की ओर थी। फलतः आप खरौंद (छपरा)-निवासी मनसाराम नामक साधु से 'अष्टांग-योग' और 'स्वरोदय' की क्रियाएँ सीखने लगे। आपके पिता को जब इस बात की सूचना मिली, तब उन्होंने आपको योग-मार्ग के स्थान पर भक्ति-मार्ग का अवलम्बन करने की राय दी। कुछ विचार-वितर्क के पश्चात् भक्ति-मार्ग का अवलम्बन करने का निश्चय कर आप चिरान (सारन) चले आये। वहाँ पहुँचकर आपने अपने पिता का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। उन्होंने सर्व-प्रथम आपको अग्रदासजी की 'ध्यानमंजरी' दी और कहा कि 'इसके अध्ययन से तुम शीघ्र ही प्रभु-कृपा के अधिकारी हो जाओगे।' (२) 'ध्यानमंजरी' का अध्ययन समाप्त कर लेने पर अपने पिता के आज्ञानुसार आप रामचरणदासजी[2] की शरण में (जानकी घाट) अयोध्या चले गये। वहाँ उनके आश्रम में रहकर आपने शृंगार-भक्ति की विधि सीखी। इस बीच आपको महात्मा रामचरणदासजी-कृत 'मानस' की टीका भी पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिससे आप बहुत प्रभावित हुए। (३) अयोध्या से लौटकर आप चिरान (छपरा) चले आये और अपने पिता की कुटी में रहने लगे। (४) पिता के देहान्त के पश्चात् आपने टिकारी-राज (गया) की सहायता से वहीं एक मठ बनवाकर अपनी गद्दी स्थापित की। एक प्रकार से वही अब आपका स्थायी निवास हो गया। यों, बीच-बीच में गुरु-दर्शन एवं सत्संग के लिए आप अयोध्या भी बराबर जाया करते थे। किंवदन्ती है कि अयोध्या जाने पर आप पहले रामचरणदासजी के आश्रम में (जानकी-घाट पर) ही ठहरते थे। किन्तु, एक दिन जब आपने रामचरणदासजी को अपनी जूठन खाते देखा, तो आपको बड़ी ग्लानि हुई और आप किसी दूसरे स्थान पर ठहरने लगे। (५) आपको मृदंग बजाने का बड़ा शौक था। इसीलिए, 'युगलसरकार' की सेवा के लिए आपने मृदंग बजाने का काम ही चुना था। इस कला में आप जानकीजी की प्रधान सखी और बहन 'चन्द्रकलाजी' को ही अपनी आचार्या मानते थे। इस सम्बन्ध में भी कहते हैं कि एक दिन तन्द्रावस्था में आपने देखा कि चन्द्रकलाजी मृदंग सिखा रही हैं। साथ ही, यह भी देखा कि उसी समय सर्वेश्वरी चारुशीलाजी आ गईं। उन्हें आते देख चन्द्रकलाजी ने उठकर उनका स्वागत किया। चन्द्रकलाजी, विना विधिवत्

१. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १२८-२९।

२. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक माना था। इधर नवीन अनुसन्धानों के आधार पर यह श्रेय तुलसीदासजी के समकालीन अग्रदासजी को दिया जाने लगा है। फिर भी, इतना तो निश्चय ही है कि रसिक-सम्प्रदाय के संगठन और प्रचार-प्रसार में इनका प्रमुख हाथ था।—देखिए, 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, अष्टम सं०, सं० २००९ वि०), पृ० १५३।

'सम्बन्ध' लिये और चारुशीलाजी की अनुमति प्राप्त किये, आपको मृदंग की शिक्षा देने में संकोच करती थी। कारण कि रामचरणदासजी के नाते 'युगलप्रियाजी' (आप) चारुशीलाजी की ही परिकर थी। चारुशीलाजी ने उसी समय चन्द्रकलाजी को, आपको अपने समाज में रखने की, अनुमति दे दी और आपको उन्हें ही अपनी आचार्या मानने का आदेश दिया। निद्रा भंग होने पर आपने रामचरणदासजी से स्वप्न का सारा वृत्तान्त कहा और उनसे चन्द्रकला-परत्व की अनुमति चाही। रामचरणदासजी ने आपको अपनी भावना के अनुकूल आचार्य-निष्ठा की स्वीकृति दे दी। (६) आपकी गणना रामभक्ति मे रसिक-सम्प्रदाय के प्रमुख संतों मे होती है। आपके द्वारा उत्तर-प्रदेश और बिहार में उक्त सम्प्रदाय का बड़ा व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। (७) आपके द्वारा रचित निम्नांकित ग्रन्थ मिलते हैं—(क) पदावली, (ख) शृंगाररस-रहस्य, और (ग) अष्टयाम वार्त्तिक।

'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना' (वही, पृ० २५४) मे डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' ने लिखा है—(१) आपके प्रेम-भरे गीतों का एक संग्रह लक्ष्मीनारायण प्रेस (मुरादाबाद) से सं० १६५६ वि० में सावन बदी १३ को प्रकाशित हुआ था। उसमें विशेषतः सावन, फागुन के झूले और होली के पद हैं। यत्र-तत्र कुछ उर्दू और फारसी के भी शब्द आये हैं। उसमें कुल १६० पद और ५६ पृष्ठ हैं। (२) आपकी शृंगाररस-रहस्य नाम से प्रचलित पुस्तक का 'नाम शृंगाररस-रहस्य-दीपिका' था।

'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही, पृ० ४४१-४२) मे आपकी रचनाओं के निम्नांकित उदाहरण मिलते हैं—

उदाहरण

(१)

जय श्री चन्द्रकला अलबेली।
अति सुकुमारि रूप-गुन-आगरि नागरि गर्व गहेली॥
निमि-कुल प्रगटि संग सिय प्यारी प्रियकारी रसकेली।
चन्द्रप्रभाजी के सुकृत कल्पतरु उलही लता नवेली॥
कंचन-वन कमला-प्रमोद-वन लीला-लहरी मेली।
मोहन जंत्र बीन स्वर टेरति प्रतिमा चित्त लिखेली॥
'युगलप्रिया' अनुराग सदा सम्बन्ध राग की डेली॥

(२)

नई लगन ललन तोसे लागो।
या मिथिला की आवनि मैं तेरी विपुल अली छवि पागी ॥
लै चलु पिय प्रमोद-वन में जहाँ ऋतु-बसंत अनुरागी।
अवध रंगमणि-महल कांचनी युगलप्रिया बड़भागी ॥

(३)

जादू भरी राम तुमरी नजरिया।
जेहि चितवत तेहि बसकरि राखत सुन्दर श्याम रामधनु धरिया ॥
जुलफन-युत मुख-चन्द्र प्रकाशित नासामणि लटकन मनहरिया।
युगलप्रिया मिथिला पुर-वासिन फसी जाल-बिच मनो मछरिया ॥

'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना' (वही, पृ० २५५-५६) में आपकी रचनाओं के और भी कई उदाहरण मिलते हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(१)

आजु खेलो रंग होरी सइयाँ आपु खेलो रंग होरी हो।
दशरथ-राजकुमार छैल तुम कालि करी वरजोरी हो ॥
तुम रघुवंश-कुमार लाड़िले मै निमि-वंश-किशोरी हो।
कौन बात में घटी हमारे यूथप सखी करोरी हो ॥
रूप-गुनन में नागर प्यारे हौ नागरि कछु थोरी हो।
युगलप्रिया मुस्कात छबीली रंग-महल की पोरी हो ॥

(२)

उमड़ि उमड़ि आई बादरि कारी।
दशरथ-नंदन जनक-लली जू बैठे सखिन संग महल अटारी ॥
कुसुमी वसन युगल तन राजत जगमगात भूषण उजियारी।
अलकें विथुरि रहीं मुख ऊपर मुकुट चंद्रिका लटक सँवारी ॥
चन्द्रावती मृदंग टकोरति चन्द्रा तानपूर करतारी।
चंद्रकलाजू बीन बजावत गावत उमग-भरे पिय प्यारी ॥
अधिक प्रवाह बढ़यो सरयू को भरे प्रमोद विलोकत वारी।
युगलप्रिया रसिकन के संपति अगम निरखि रतिपति बलिहारी ॥

(३)

रंग झूलै अवध-बिहारी हो सरयू-तट संग लिये सिय प्यारी।
सावन कुंज सुहावन पावन रतन भूमि हरियारी॥
निज-निज कूंजन ते बनि आई नित्य सखी अधिकारी।
गावहि सरसाती बरसातो दरसातो सुख भारी॥
कबहु झुलावत प्यारी प्रीतम कबहु प्रीतम प्यारी।
युगलप्रिया रसमात परस्पर दंपति लीला-धारी॥

*

देवीदास[1]

गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय में आपके 'पाण्डवचरितार्णव' की जो हस्तलिखित-प्रति (काव्य-४७) संगृहीत है, उसमे उसका रचना-काल आश्विन-कृष्ण ११, सं० १८४२ वि० (सन् १७८५ ई०) उल्लिखित है।

*

देवीप्रसाद

आप मुजफ्फरपुर-निवासी थे।[2] हिन्दी में 'प्रवीण पथिक' नामक आपकी एक पुस्तकाकार प्रकाशित रचना सुनने में आती है। किन्तु, रचना के उदाहरण नही मिले।

*

नन्दीपति[3]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० ३१६) में डॉ० ग्रियर्सन ने भी आपकी चर्चा की है।

*

१. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १३५-३६।
२. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० ९७८।
३. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १३६-३७।

नवलकिशोरसिंह[1]

'वार्षिकी' (सन् १९६१-६२ ई०, पृ० ४७) में उल्लेख है कि आप अपने वंश के आठवें महाराजा थे। आपका राजत्व-काल सन् १८३८ ई० से सन् १८५५ ई० तक था। आपके शासन-काल में बेतिया-दरबार संगीत के साथ-साथ काव्य-साहित्य का भी मुख्य केन्द्र बन गया था। आपके दरबारी कवियों में अमृतनाथ झा और भुवन झा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने ३५६ ध्रुपदों का एक संग्रह कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी (गुरुवार) सं० १९११ वि० को 'दुर्गा-आनन्द-सागर' के नाम से कराया था। उक्त पत्रिका (पृ० ५२-५३) से आपकी निम्नांकित दो रचनाएँ उद्धृत हैं—

उदाहरण

(१)

सब वन फुलै अमवा बौर झुके,
डारि मानो तुव पग परसन के हेत।
कोयल कोकिला कूक चात्रिक पुकार करत,
मेरे जान काली नाम रटत नेत।
मेरो मन भँवर कहाँ भटकत जेन तेन,
बार बार सिख देत अजहुँ लो चेत।
'नवलकिशोर' अब चरण कमल मन वच कर्म से,
बहु जो भक्तन को आनन्द सुख देत॥

(२)

दयानी शंभु घरनी असरन सरनि,
महिमा अपार तुव जात नहि वरनी।
सेस सनकादि आदि अन्त न पावत,
वेद कहत तेरो नाम भवसागर तरनी।
जोइ जोइ तुव नाम लेत चारों फल ताहि देत,
विविध विरद तेरो औढर ढरनी।
'नवलकिशोर' चातक तुव कृपा करो,
ह्वै सुदिष्ट देहो मातु भक्ति अभै करनी॥

---

1. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १३८।

'शिवसिंह-सरोज' (वही, पृ० १५०) में संभवतः आपका ही निम्नांकित छन्द संकलित है—

सखी बेलि-बृंदन के सुख को बलाहक भो
भाँति-भाँति दाहक भो सौतिन की छाती को।
नवलकिशोर नेह नाह को निबाहक भो
ज्ञान को उमाहक भो गौरभ गुरजाती को॥
एरी पिय बादिनी अमोल बोल तेरोइतो
एकहो बिलोक्यो री तज्यो बुंद स्वाती को।
बालन को विष भो पियूष भो पपीहन को
सीपिन को मुक्ता कपूर केर-पांती को॥

*

प्रतापसिंह[1]

'जर्नल ऑफ् द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल' (खण्ड ५३, पृष्ठ ८२) में लिखा है कि आप महाराज नरेन्द्रसिंह के पुत्र थे, जिन्होंने 'कनपीघाट' (कन्दर्पीघाट ?) जीता था।

*

बालखंडी[2]

'संतमत का सरभग-सम्प्रदाय' (वही, अध्याय ४, पृ० १७७) मे उल्लेख है कि आप अधिकतर पलाही (बरहड़वा) मठ में रहा करते थे। यह मठ संभवतः बेतिया (चम्पारन) के पास मिरजापुर में है। उक्त पुस्तक में आपकी अनेक रचनाएँ संगृहीत हैं।

*

भंजन कवि[3]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० ३१६) में डॉ० ग्रियर्सन ने भी आपकी चर्चा की है। उक्त पुस्तक में इस नाम के एक और कवि की चर्चा मिलती है, जिनका जन्म सन् १७७४ ई० में बतलाया गया है (—देखिए, वही, पृ० २२४) और जिन्हें 'शृंगार-संग्रह' नामक पुस्तक का रचयिता भी कहा गया है।

---

१. आपका परिचय 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' के प्रथम खण्ड में (भ्रमवश दो स्थानों पर—एक स्थान पर 'प्रताप सिंह' और दूसरे स्थान पर 'मोदनारायण' नाम से) प्रकाशित है।—वही, पृ० १४० तथा १५०।

२. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १४१।

३. वही, पृ० १४३-४४।

'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, द्वितीय भाग, पृ० ८४५-४६) में भी इस नाम के एक कवि का उल्लेख है, जिनका जन्म सं० १८३० वि० में हुआ था और जिनकी 'शृंगार-संग्रह' नामक पुस्तक की भी चर्चा है। मिश्रबन्धुओं ने बतलाया है कि वस्तुतः यह (शृंगार-संग्रह) सरदार कवि की रचना है।

'जर्नल ऑफ् द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल' (खण्ड ५३, पृ० ६०) में आपकी रचनाओं के दो उदाहरण हैं।

*

भड्डर[1]

आप शाहाबाद-जिले के निवासी थे।[2] आपके सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कृषि-सम्बन्धी आपकी अनेक उक्तियाँ लोक प्रचलित हैं। आपकी उक्तियों की भाषा में भोजपुरी की बहुलता स्पष्ट दीख पड़ती है, अतः आप भोजपुरी-क्षेत्र के ही प्रतीत होते हैं। आपकी प्रसिद्धि एक ज्योतिषी के रूप में भी थी। आपके द्वारा रचित 'ज्यौतिष-शकुनावली' आज भी मिलती है। ग्रंथाकार आपकी एक ही रचना 'भड्डरीपुराण' सुनने को मिली है, जिसके उदाहरण नहीं मिले।

भिनकराम[3]

'संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय' (वही, पृ० ११७) में लिखा है कि आप 'निरबानी' (निर्वाणी) मत के पोषक थे।[4]

*

---

१. मिश्रबन्धुओं ने आपका नाम 'भड्डुरी बतलाया है।—देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० ६६२।

२. डॉ० ग्रियर्सन-कृत 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही), पृ० ३१६ तथा 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही) पृ० ६६२। आपकी रचना की भाषा (ग्रामीण अवधी) के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने आपके निवास-स्थान का अनुमान बिहार के बाहर भी किया है।—देखिए, वही।

३. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १४५।

४. सरभंग-संत, मुख्यतः दो कोटि में विभक्त किये जा सकते हैं—'निरबानी' और 'घरबारी'। प्रथम में स्त्रियों के लिए कोई स्थान नहीं है। इस कोटि के संतों के लिए खेती-बारी, भिक्षाटन आदि करना वर्जित है। ये संत अपने मठों में पुष्पदान तक नहीं करते।—सं०

मग्घूलाल[1]

आपका उपनाम 'मूरत' था, किन्तु आप प्रसिद्ध थे लाला मग्घूलाल के नाम से। अपनी रचनाओं में आप अपना यही नाम रखते थे।

आप दरभगा-शहर के 'मिश्रटोला' मुहल्ले के निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। आपके जीवन का अधिकाश मिथिला-नरेश महाराज माधवसिंह के दरबार मे व्यतीत हुआ।

आप फारसी के बड़े अच्छे ज्ञाता थे। व्रजभाषा में आपने दो खण्डकाव्यों की रचना की थी—(१) रुक्मिणी स्वयंवर और (२) पार्वती-स्वयंवर। इन दोनों का प्रकाशन अभी तक नही हो सका है। अत, आपकी रचनाओं के उदाहरण नही मिले।

❋

मनबोध[2]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० २०८) में डॉ० ग्रियर्सन और 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, द्वितीय भाग, पृ० ७०२-३ और ७२६) में मिश्रबन्धुओं ने भी आपकी चर्चा की है। डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है कि आपका विवाह 'भिखारीदास' नामक व्यक्ति की कन्या से हुआ था, जिससे आपके एक लड़की हुई। मिश्रबन्धुओं ने एक स्थान (पृ० ७०३) पर आपका रचना-काल सं० १८०७ वि० और दूसरे स्थान (पृ० ७२६) पर सं० १८२० वि० में बतलाया है। उनके लेखानुसार आपका वास्तविक नाम 'भोलन झा' था और आप एक प्रसिद्ध नाटककार थे।

❋

महावीरप्रसाद

आप भागलपुर-निवासी कायस्थ थे।[3] हिन्दी में आपकी एक पुस्तकाकार रचना 'ज्ञानप्रभाकर' नाम से सुनी जाती है। किन्तु, रचना के उदाहरण नही मिले।

❋

१. आपका यह परिचय डॉ० सियाराम तिवारी (कॉमर्स कॉलेज, पटना) द्वारा पटना-विश्वविद्यालय में पी-एच्० डी० के लिए प्रस्तुत किये गये शोध-प्रबन्ध (हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड-काव्य) के आधार पर तैयार किया गया है।—स०

२. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार', खंड १ (वही), पृ० १४७-४८।

३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० ६६४।

महीपति[1]

हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास (वही, पृ० ३२०) में डॉ० ग्रियर्सन और 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, पृ० ६६४) में मिश्रबन्धुओं ने भी आपकी चर्चा की है।

✻

रघुनाथदास[2]

गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय में आपके नाम के ही किसी व्यक्ति के लिखे 'बाल-गोपाल-चरित' नामक काव्य-ग्रंथ (काव्य-५४) की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है।

✻

रमापति उपाध्याय[3]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० ३२१) में डॉ० ग्रियर्सन ने भी आपकी चर्चा की है।

✻

रामदयाल तिवारी

आप दरभंगा-जिले के मौड़ नामक ग्राम के निवासी थे।[4] संवत् १८६१ वि० (सन् १८३४ ई०) के लगभग आप परलोकगामी हुए।[5] हिन्दी में आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ ही उपलब्ध हैं।

उदाहरण

भजु राम नाम राम नाम रामा
राम-नाम वेद-मूल, इनके नहिं और तूल,
भजत नसत त्रिविध सूल, छूटत भव-ग्रामा ॥१॥
राम-नाम विमल नीर, संगम सत्संग-तीर,
मज्जत निर्मल शरीर, पावन निज धामा ॥२॥

---

१. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार', (वही), पृ० १४८।
२. वही, पृ० १५०-५१।
३. वही, पृ० १५१-५२।
४. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० ८२।
५. सं० १९९१ वि० (सन् १९६४ ई०) में मिश्रबन्धुओं ने आपके विषय में लिखा था कि इनका देहान्त हुए सौ वर्ष के लगभग हुए हैं। इसी आधार पर आपका जन्मकाल सं० १८९१ वि० (सन् १८१४ ई०) के आसपास अनुमित होता है। —देखिए, वही।

राम-नाम कमल-फूल, संतन-मन भ्रमर भूल,
पीवत रस झूमि-झूमि अमृत अनुपामा ॥३॥
राम-नाम निराकार, रामद्याल नमस्कार,
दीजै हरि-भक्ति-सार, पय पल भर रामा ॥४॥[१]

※

रामप्रसाद[२]

गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय में आपके नाम के ही किसी व्यक्ति के लिखे 'सिद्धान्त-सार' नामक दर्शन-ग्रंथ (दर्शन-२२) की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है।

※

रामरूपदास

आप मगध-देश के 'चनौथ' नामक किसी ग्राम के निवासी[३] राधावल्लभीय वैष्णव-सम्प्रदाय के भक्त थे। हिन्दी में लिखित आपके भजनों का एक संग्रह 'गोपालसागर' नाम से सुनने में आता है। मिश्रबन्धुओं के मतानुसार आप सं० १९३१ वि० (सन् १८७४ ई०) में परलोक सिधारे।[४] आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

※

रामेश्वरदास[५]

श्रीउमाशंकरजी ने 'संत साहित्यकार रामेश्वरदास' शीर्षक अपने लेख ('नवराष्ट्र', २३ जुलाई, सन् १९६१ ई०, पृ० ३) में लिखा है—१. आप एक रामोपासक सरयूपारीण काश्यप-गोत्रीय ब्राह्मण पं० चिन्तामणि के पुत्र थे। २. आपका शरीर लम्बा तगड़ा था और आप जिले-जवार के नामी पहलवानों में थे। ३. आप प्रतिदिन पाँच छन्दों की रचना करके ही अन्न-जल ग्रहण करते थे; इस नियम का पालन आपने चालीस वर्षों तक किया था। ४. आपकी रचनाओं का संग्रह आपके एक वंशधर पं० कस्तूरी रंगनारायणजी ने प्रकाशित किया है। उन्हीं के मतानुसार आप सं० १८८५ वि० (सन् १८२८ ई०) की ज्येष्ठ-कृष्णाष्टमी को एक सौ दस वर्ष की आयु[६] में परलोक सिधारे।

---

१. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० ८२।
२. 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १५६।
३. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ भाग), पृ० १०७।
४. उस समय आपकी आयु बयासी वर्ष की थी। इसी आधार पर आपका जन्म अनुमानतः सं० १८४९ वि० (सन् १७९२ ई०) में हुआ ज्ञात होता है। —देखिए, वही।
५. दे०, 'हिं० सा० और बि०' (वही, प्रथम खण्ड), पृ० १५८-५९।
६. इसी आधार पर यह स्पष्ट है कि आपका जन्म सन् १७१८ ई० में हुआ था। अठारहवीं शती के आरम्भ में आपका जन्म और उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में आपका देहान्त हुआ।—सं०

उक्त लेख में आपकी निम्नांकित रचना भी उदाहरण-स्वरूप संकलित है—

उदाहरण

जंघ मानिक नील कदली मनहुँ जुड़ा अस्तंभ
चरन अरुन अरविन्द-पद-नख हरत मन को दंभ।
करत अस्तुति सेस सारद संभु नारद संत
कल्प कोटि न पावहिं गुन अपार अनंत।
श्रीरामचन्द्र सुरूप बरनन करै पल भरि कोय
कह रमेस उतानपद-सुत सम अचल सो होय।

साप्ताहिक 'शिक्षा' (२२ तथा २९ अक्टूबर, सन् १९२५ ई०) में आपसे सम्बद्ध अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ अंकित हैं।

*

लक्ष्मीनाथ परमहंस[1]

बाबू रघुनन्दनप्रसाद वर्मा ने अपने 'स्व० गोस्वामी लक्ष्मीपति परमहंस' शीर्षक लेख ('गंगा', प्रवाह ३, तरंग ४, वैशाख, सं० १९९ वि०, अप्रैल, सन् १९३३ ई०, पृ० ५७६—७९) में बतलाया है कि—'(१) आप अपने माता-पिता के एकमात्र पुत्र थे। (२) बाल्यावस्था से ही आपको कविता रचने की शक्ति प्राप्त थी। (३) आपका विवाह सं० १८७० वि० (सन् १८१३ ई०) में हुआ था। (४) दरभंगा-जिले के चरबल-रहुआ नामक ग्राम में एक पीपल के पेड़ के नीचे आपको योगसिद्धि प्राप्त हुई थी (५) आपकी प्रतिष्ठा राजा-महाराजाओं के यहाँ भी थी। टेकारी, हथुआ, बेतिया, मकसूदपुर, दरभंगा, नेपाल आदि राज्यों के महाराजाओं के यहाँ आप सादर आमंत्रित हुआ करते थे। (६) आपके विशिष्ट भक्तों में परसरमा (सहरसा) के बाबू अनघर सिंह, सकरपुरा (मुँगेर) के रायबहादुर राजा लक्ष्मी-प्रसादजी, बरियाही-कोठी के प्रोप्राइटर मिस्टर जॉन तथा पचगछिया और गनमारपुर के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन थे। (७) आप अधिकतर बनगाँव, लखनउर और फटकी की कुटियों में रहा करते थे। (८) आपकी सभी पुस्तकों की रचना फटकी-कुटी में ही हुई थी—आपने लगभग पाँच हजार भजनों की रचना की थी। (९) आपकी 'प्रश्नोत्तरमाला' नामक पुस्तक का मूल नाम 'प्रश्नोत्तर-रत्नमणिमाला' तथा 'पंचरत्नावली' का नाम 'पंचरत्नगीतावली' था। (१०) 'गुरुपचीसी' नामक आपकी एक नई कृति भी है। (११) आपने वाजसनेयोपनिषद् का हिन्दी में छन्दोबद्ध अनुवाद भी किया था। (१२) आप सं० १९३९ वि० के ४ अग्रहण को फटकी की कुटी में ९४ वर्ष की आयु में परलोक सिधारे।

१. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १५९-६१।

मिश्रबन्धु-विनोद (वही, चतुर्थ भाग, पृ० ६६) में आपकी चर्चा करते हुए मिश्र-बन्धुओं ने बतलाया है कि काशी के विख्यात पण्डित राजाराम शास्त्री आपके शिष्य थे। उन्होंने आपका रचना-काल सं० १६१४ वि० तथा मृत्यु-काल सं० १६४१ वि० के लगभग माना है। उनके मतानुसार आपने 'भजनावली' नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी।

लाल झा[1]

हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० २०८) में डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है—(१) आप मिथिला के परम प्रसिद्ध कवियों में थे। (२) आपके आश्रयदाता श्रीनरेन्द्रसिंह ने आपको 'करनौल' नामक ग्राम पुरस्कार-स्वरूप दिया था, जो अब भी आपके वंशजों के अधिकार में है। 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल' के जर्नल (खण्ड ५४, पृ० १६) में भी आपकी रचनाओं के उदाहरण हैं।

वेदानन्द सिंह

आपका जन्म सन् १७७६ ई० में, पूर्णिया में हुआ था[2]। आपके बड़े भाई का नाम था सर्वानन्द सिंह, जो असमय काल-कवलित हो गये। आपके एक सौतेले छोटे भाई भी थे, जिनका नाम था रुद्रानन्द सिंह। जब दुलारसिंह चौधरी का देहावसान हो गया, तब रुद्रानन्द सिंह से आपकी अनबन हो गई। वे सौरा नदी के पार जाकर बस गये।[3] उनके चले जाने पर आपने वर्त्तमान 'बनैली-राज्य' का सस्थापन किया। तत्पश्चात् आपने खड्गपुर के मुसलमान राजाओं की एक बड़ी सम्पत्ति अधिकृत कर ली। साथ ही 'गोगरी' और 'मधुबनी' के परगने भी आपने खरीदे। इस प्रकार, बनैली-राज्य भारत के एक विशाल ब्राह्मण-राज्य के रूप में परिणत हो गया।

आप एक सुयोग्य शासक ही नहीं, एक विख्यात मल्ल और कवि भी थे।

---

१. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १६२।

२. 'गंगा' (वही, प्रवाह १, तरंग १, नवम्बर, सन् १६३० ई०), पृ० ५६।

३. सौरा नदी के पार जाकर उन्होंने अपने बड़े पुत्र श्रीनन्दनसिंह के नाम पर श्रीनगर-राज्य की प्रतिष्ठा की।

वृन्दावन[1]

'गृहस्थ' (वही, भाग १६, अंक २३, गुरुवार, १४ जुलाई, सन् १६३२ ई०, पृ० १८२) में श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त ने आपका संक्षिप्त परिचय प्रकाशित कराया था। उन्होंने आपका जन्म-स्थान शाहाबाद का 'बारा' नामक स्थान बतलाया है, जो भ्रामक है। उनके लेखानुसार आपका पूरा नाम वृन्दावन जैन, आपके पिता का धर्मचन्द जैन और पुत्रों का अजितदास जैन तथा शिखरचन्द जैन था। उनका यह भी कहना है कि आपने अपने पुत्र अजितदास जैन को पढ़ाने के लिए जिस छन्दोग्रन्थ की रचना की थी, उसका नाम 'छन्दशतक' था और आपके पुत्र अजितदास आपके अधूरे 'जैन रामायण' की ८१ सर्ग तक ही रचना कर, सन् १६१५ ई० में, असमय ही काल-कवलित हो गये।

※

शंकरदत्त[2]

'शिवसिंह-सरोज' (पृ० ३०७८) में शंकर नामक एक कवि की निम्नांकित रचना संकलित है। पता नहीं, यह रचना आपकी ही है या आपसे भिन्न किसी दूसरे शंकर कवि की।

बाटिका बिहारी अभिसार को सिधारी भारी
शंकर अँधेरी में उजेरी कैसो कंद है।
भादौं को विषम मेह दीप-सी दुरै न देह
नागर के नेह को सनेह दृष्टि बंद है ॥
शिवा जान्यो नागरि पिशाचिनि कमक्षा जान्यो
मृगनि कलानिधि औ छली जान्यो छंद है।
बिज्जु जान्यो घनघोर घटापट मोर जान्यो
मोर जान्यो चोरनि चकोर जान्यो छंद है ॥

※

---

१. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १६४-६५।
श्रीगुप्त द्वारा लिखित उक्त परिचय में आपकी रचनाओं का निम्नांकित नया उदाहरण भी दिया गया है, जिसकी कोई अर्थ-संगति नहीं बैठती :

चारु चरन आचरन चरन चित हरन चिह्न कर।
चन्द चन्दतन चरित चन्द थल चहत चतुर नर।
चतुक चंद चकचूरि चारि दिक चक्र गुनाकर।
चंचल चलित सुरेस चूल नुत चक्र धनुर हर ॥
चर अचर हितु तारन तरन सुनत चहकि चिरनन्द सुचि।
जिन चन्द चरन रच्यौ चहत चित चकोर नमि रचि रुचि ॥

२, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १६७।

शिवप्रकाश सिंह[1]

आपका जन्म सन् १७८७ ई० में[2], शाहाबाद-जिले के डुमराँव-राजवंश में, हुआ था।[3] आप महाराज जयप्रकाश सिंह के सहोदर भ्राता थे। अतः, आप भी 'महाराज बहादुर' कहलाते थे।[4]

आप जबतक जीवित रहे, तबतक परोपकार में ही लगे रहे। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में वैराग्य का सचार होने पर आप काशी जाकर बस गये। वहाँ आपने सरकार को २५ हजार रुपये जन-हितार्थ दान किया था, जिससे वरुण नदी पर एक पुल का निर्माण हुआ

आप हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत-भाषा के बड़े अच्छे ज्ञाता थे। जब आप डुमराँव में थे, तब आपने 'सतसंगविलास', 'लीलारसतरंगिणी', 'भागवत-तत्त्वभास्कर', 'वेदस्तुति की टीका', 'उपदेश-प्रवाह' आदि ग्रंथों की रचना की। काशी मे रहकर आपने श्रीगोस्वामी तुलसीदास-कृत 'विनयपत्रिका' की टीका 'रामतत्त्वबोधिनी' के नाम से लिखी, जो अपनी भक्तिरस-माधुरी के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हुई।[5]

आप काशी मे ही, सन् १८४६ ई० की फाल्गुन-कृष्णाष्टमी (चन्द्रवार) को, मुक्तिधाम सिधारे।

※

उदाहरण

(१)

गणपति शब्द ते ऐश्वर्य सूचित किये जगबन्दन पद करि जगत-पत्यत्व जनाए सुअन और नन्दन दोनों पद पुत्रबाचक है तहाँ अर्थ की पुनरुक्ति देवे को आशय ऐसो है कि कोउ की माता श्रेष्ठ होय है कोऊ को पिता इहां माता-पिता दोऊ को श्रेष्ठता जनायबे निमित्त पुनरुक्ति पद दिये यद्वा शिवजी के पुत्र भवानी के नन्दन नाम आनन्दकर्त्ता यह

---

१. डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने आपका स्थितिकाल १९वीं शती बतलाया है।—देखिए, 'रामभक्ति में रसिक-संप्रदाय' (वही), पृ० ५४६।

२. मिश्रबन्धुओं ने आपका जन्मकाल स० १८९१ वि० (सन् १८३४ ई०) बतलाया है। यह भ्रमात्मक है। —देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० ११५६।

३. 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० १२०।

४. महाराज जयप्रकाशसिंह बहादुर सन् १८०५ ई० में राजसिंहासन पर बैठे और ईस्ट-इंडिया-कंपनी द्वारा 'महाराज बहादुर' का पद पाया। तब से डुमराँव के राजा लोग 'महाराज बहादुर' होते आये। —'आत्मचरित्र-चन्द्र' (वही), पृ० ६।

५. इस टीका की एक प्राचीन मुद्रित प्रति, जो फरवरी, सन् १८८० ई० में लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित हुई थी, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के अनुसंधान-पुस्तकालय में सुरक्षित है।—सं०

हेतु तें कि श्रीगणेश जू को गर्भ तें आविर्भाव नही है सर्वसिद्धिन्ह को गृह अर्थात् श्रीगणपति कृपा वितरेक काहू को कोऊ सिद्धिकी प्राप्ति नही होति जगबन्दन पद ध्यान के अर्थ जानना विनायक नाम विघनन्ह के स्वामी जो कोऊ जीव ध्यान पूजन वितरेक कार्य आरम्भ करे है ताको विघ्न के कर्त्ता यह भाव है कृपा के समुद्र अर्थात शीघ्र दयालु होबे को सुभाव जाको पूर्व गजवदन पद दिये ताते भयानक कोऊ बूझे यह निमित्त सुन्दर कहे सब लायक पद को यह भाव है कि केवल इहलोक को सुख ऐश्वर्य्यादि ही के दाता नहीं किन्तु योगिन को परलोक सम्बन्धी सुख के भी दाता यह भाव है लड्डू है प्रिय जाको अर्थात थोड़ी पूजा मों प्रसन्न होबे की स्वभाव जाको मुद नाम अन्तरंग आनन्द मंगल नाम बाह्य उत्सव विवाहादि के दाता अर्थात् लेना थोरा देना अनन्त सुख विद्या के समुद्र अर्थात् जो काहू को विद्या होय है सो इन ही की कृपा-कटाक्ष ते बुद्धि के विधाता नाम ब्रह्मा अर्थात् जाके अनुग्रह बितरेक बुद्धि को प्रकाश नहीं होत ऐसे जो श्रीगणपति तेहतें तुलसीदास अति नम्र हो करि याचें है कि श्रीजानकी रघुनाथजू मेरे अन्तष्करण मो बसे याको यह भाव भयो कि भगवत् उपासक को भगवत् वितरेक मोक्षपर्यन्त वासना नहीं होति यह भाव है।[1]

(२)

प्रथम पद को व्याख्या अधिक भयो यह रीति तें सर्वपदन को अर्थ भाव कहते ग्रन्थ बहुत विस्तार होयगो यह हेतु तें सुलभ पदन को अर्थ तो न लिखेंगे जहां जहां कठिन पद है तथा अर्थ को काठिन्य है तेहका भावार्थ कहेंगे तथा जैसे संस्कृत को अन्वय उलटा करि होत है तैसे अन्वय किये वितरेक बहुत पदन को अर्थ नहीं स्पष्ट होत है एक हेतु जहां तहां नीचे ते कहूं कहूं मध्य ते अन्वय करि अर्थ लिखैंगे ॥[2]

१-२. 'विनयपत्रिका की रामतत्त्वबोधिनी टीका', प्रथम सं०, सन् १८८० ई० में प्रकाशित), पृ० १।

(३)

तुलसी प्रसाद हिय हुलसी श्रीरामकृपा
सोई भवसागर के पुल सी ह्वै लसी है।
जाकी कविताई अनरथ-तरु टंगा सम
गङ्गा की सी धार भक्तजन मन धसी है।
परम धरम मारतंड उर व्योम ऊग्यौ
काम क्रोध लोभ मोह तम निसि नसी है।
वाही के प्रकाश यम गन मुँह मसि लाई
अति सुख पाई जिय मेरे आय बसी है ॥[1]

(४)

द्वै तुलसी को गहि रहौ जो चाहत विश्राम।
बाहर भीतर सहज ही होत अधिक अभिराम ॥
तुलसि-माल धारन किये बाहर होत सुबेष।
तुलसीकृत के गहत ही अचल भक्ति की रेख ॥[2]

*

शेखावतराय

आपका पूरा नाम था मुहम्मद शेखावत[3] राय। आपकी रचनाओं में कहीं-कहीं आपके नाम के साथ 'दास' भी आया है।

आपका जन्म सारन-जिले के गयासपुर[4] नामक ग्राम में हुआ था।[5] कुछ लोगों ने आपका सम्बन्ध महाकवि केशवदास से जोड़ा है, जो भ्रामक ज्ञात होता है। श्रीदुर्गाशंकर-प्रसाद सिंह की खोज के अनुसार आप प्रसिद्ध कवि तोफाराय के चाचा थे। आप जाति के भाट थे और अनेक छंदों में रचनाएँ करते थे। घोड़ी पर चढ़कर आप हथुआ, मझौली, पतार, मनिआर, बाँसडीह आदि दरबारों में जाकर कविताएँ सुनाया करते थे। खड़ीबोली के अतिरिक्त आपकी रचनाएँ भोजपुरी में भी मिलती हैं। पुस्तकाकार आपकी निम्नांकित रचनाएँ मिलती हैं—१. रावण-संवाद, २. मन्दोदरी तथा ३. हरकिसुन-चौतीसी।[6]

आपकी मृत्यु अत्यन्त वृद्धावस्था में हुई।

१-२ 'विनयपत्रिका की रामतत्त्वबोधिनी टीका' (वही), पृ० १।
३. श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (दलीपपुर, शाहाबाद) की खोज के अनुसार सन् सत्तावन के गदर के समय एक 'सखावत राय' कवि भी हुए हैं, जो आपसे भिन्न नहीं थे।—सं०
४. यह ग्राम सरयू-नदी के तीर पर सिसवन थाने में पड़ता है।—सं०
५ नवें बिहारप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (छपरा) के स्वागताध्यक्ष बाबू लक्ष्मीप्रसादजी के भाषण से।
६. इसकी रचना मटवर-ग्रामनिवासी और सन् ५७ ई० के गदर के अमर सेनानी बाबू कुँवरसिंह के सिपहसालार बाबू हरिकृष्ण सिंह पर हुई है।—सं०

उदाहरण

(१)

लीनो हैं कृपान कर बाबू कुँवर सिंह
दाहिनो अलंग बाँह फरकत फर-फर।
साथ के समीपी लिये छिपी मुख जोह रहे
जितने सिपाही बात पूछत हैं डर-डर ॥
'सेखावत' कहत हथियार की तैयारी देख
कादर वो कूरन के कपाट लगे घर-घर।
चढ़ के तुरङ्ग रङ्गभूमि में उजैन-बंस
लखि के सरूप अरि-डर काँपे थर-थर ॥[1]

(२)

इत-उत दोऊ दल चढ़त मैदान बीच
धारा के समान गोली तोप छूटे झप-झप।
चंचल बदन मन तुपक तयार करि
मारे गोली अंग में जु बैठि जात गप-गप ॥
कहत 'सेखावत' छाय रहे धूम चहूँ ओर
गिरे लोथ लोथन पर बाजत है थप-थप।
गोरा साहबान के जवान भये चटपट
बाबू कुँवरसिंह के कृपान काटे छप-छप ॥[2]

❋

साहबरामदास[3]

'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, चतुर्थ खण्ड, पृ० ८२) में आप दरभंगा-जिले के 'पचाढ़ी स्थान' के निवासी बतलाये गये हैं।

❋

---

१. श्रीराजेन्द्र राय (बलिया-जिला के भाट-कवि) से प्राप्त।
२. उन्हीं से प्राप्त।
३. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १७४-७५।

हरतालिकाप्रसाद त्रिवेदी

आप भोजपुर (शाहाबाद) के निवासी थे।[1] हिन्दी मे आपकी एकमात्र पुस्तक 'हनुमानाष्टक' की चर्चा मिलती है। उदाहरण नही मिले।

❊

हरिचरणदास[2]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ० ३०५-६) में डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है—(१) आपका नाम 'हरिकवि' भी था। (२) आप 'भाषा-भूषण' की 'चमत्कार-चन्द्रिका' नामक और 'कविप्रिया' की 'कर्णाभरण' नामक छन्दोबद्ध टीकाओं के रचयिता थे। (३) आपने 'अमरकोष' का एक भाषानुवाद भी तैयार किया था।[3]

'हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (वही, पृ० १५४, १५७ और १६३) में लिखा है—(१) आप चैनपुर-ग्राम (गोआ-परगना, सारन) के निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। (२) आपके पितामह का नाम वासुदेव था और आप (राजस्थान) के कृष्णगढ़-नरेश राजा बहादुरराज के पुत्र बिरदसिंह के आश्रित थे, जो सं० १८३५ वि० (सन् १७७८ ई०) के लगभग वर्त्तमान थे।

'हिन्दी हस्तलेखों की खोज की १९२१-२२ की ग्यारहवी रिपोर्ट' (वही, सन् १९२९ ई०, पृ० ६९-७०) में उल्लेख है—(१) आपका रचना-काल सन् १७५७ ई० से सन् १७७९ ई० तक है। (२) 'भाषा-भूषण' की टीका का नाम 'चमत्कार' भी था तथा सतसई-टीका आपके निधन के पश्चात् 'हरिप्रकाश-टीका' के नाम से प्रसिद्ध हुई और विद्वानो द्वारा प्रशंसित भी। (३) आपकी कृतियों का रचना-काल इस प्रकार है—

(क) 'कविप्रिया' की टीका-रचना सं० १८३५ वि० में माघ शुक्ल १५, शुक्रवार, ५ फरवरी, सन् १७७९ ई० को हुई।

(ख) सतसई-टीका की रचना समाप्त हुई—स० १८३४ वि० की जन्माष्टमी (२२ अगस्त, सन् १७७७ ई०, मंगलवार) को।

---

१. 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग), पृ० १०११। मिश्रबन्धुओं ने 'भोजपुर' मात्र लिखा है। शाहाबाद का भोजपुर ही विशेष प्रसिद्ध है। अनेक स्थलों में मिश्रबन्धुओं ने कितने ही स्थानों का निश्चित पता नहीं दिया है, जिससे मन में शंका और जिज्ञासा रह जाती है तथा भ्रम भी होता है। उनका लिखा भोजपुर मध्यप्रदेश का है या बिहार का, ठीक-ठीक कहना कठिन है। पर, शाहाबादी भोजपुर में पता चला है कि आप (त्रिवेदीजी) शाहाबादी भोजपुर के ही थे।—सं०

२. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १७६-७७।

३. श्रीकिशोरीलाल गुप्त के कथनानुसार 'अमरकोश' का भाषानुवाद वस्तुतः आजमगढ़ (उ० प्र०) के किसी 'हरजू' नामक व्यक्ति ने स० १७९२ वि० में किया था।

(ग) 'सभा-प्रकाश' का रचना-काल सं० १८१४ वि०, श्रावण शुक्ल १३, शुक्रवार (२६ जुलाई, सन् १७५७ ई०)।

(घ) बृहत्कविवल्लभ का रचना-काल सन् १७७८ ई०।

बिहारप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन (सीतामढ़ी) के सभापति श्रीशिवनन्दन सहायजी ने अपने भाषण में बतलाया है—(१) आपका निवास-स्थान सारन-जिले का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान 'चिरान' नामक ग्राम था। (२) आपकी बिहारी-सतसई की टीका की, जो 'हरिप्रकाश टीका' के नाम से प्रसिद्ध हुई, गणना सतसई की उत्तम एवं प्रामाणिक टीकाओं में होती है।[1]

※

शोभानाथ[2]

'शिवसिंह-सरोज' (वही, पृ० ३२४) में इसी नाम के एक और कवि की निम्नांकित रचना संकलित है। पता नहीं, दोनों एक ही व्यक्ति हैं या एक दूसरे से भिन्न।

उदाहरण

दिशि बिदिशान ते उमड़ि मढ़ि लीनो

नभ छोरि दिये धुरवा जवासे यूथ जरिगे।

डहडहे भये द्रुमरञ्जक हवा के गुण

कुहकुह मुरवा पुकारि मोद भरिगे॥

रहि गये चातक जहाँ के तहाँ देखत ही

शोभनाथ कहूँ-कहूँ बूँदहूँ न करिगे।

शोर भयो घोर चहूँ ओर नभ-मण्डल में

आये घन आये घन आय कै उमडिगे॥

※

---

१. आपने स्वयं लिखा भी है—

'फेरि बिहारी पदन को पढ़े न काहू पास।
ऐसी टीका करत है हरिकवि हरिपरकास॥'

—देखिए, वही भाषण।

२. —देखिए 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १६१।

देवदत्त[1]

'गया के लेखक और कवि' (वही, पृ० ८३) में लिखा है कि (१) आपका नाम 'दत्तप्राचीन' भी था। (२) आप गया[2] जिले के निवासी थे और आपका रचना-काल सं० १८०४ वि० (सन् १७४७ ई०) था।

'हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (श्यामसुन्दरदास, पहला भाग, प्रथम सं०, सं० १९८० वि०, पृ० ६४) में आप कुँवर फतहसिंह (टिकारी-नरेश के उत्तराधिकारी, सं० १८०४ वि०) के आश्रित बतलाये गये हैं।

'शिवसिंह-सरोज' (वही, पृ० १३४) में उदाहरण-स्वरूप आपका निम्नांकित छन्द संकलित है—

उदाहरण

सूने केलि-मन्दिर मे नायक नवीने साथ
नायिका रसीली रस बात को छुवा गई।
देवदत्त कौनहूँ प्रसंग ते सुने ते नाऊ
सौति सो रिसाइ पिय प्यारी को बिदा दई॥
ताहि समय पापी पपीहा की घुनि कान परी
आँसुई अनंग ऋतु पावस की ह्वै गई॥
छूटे केस छटा देखि-देखि मेघ घटा बाल
फिरै अटा-अटा बाजीगर को बटा भई॥

※

प्रयागदास[3]

आपकी रचनाओं में आपके नाम 'परागदास' और 'प्रागदास'[4] भी मिलते हैं।

आपकी जन्मभूमि का पता नहीं चलता। 'रसिकप्रकाश-भक्तमाल' में लिखा है कि आप बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर काशी तथा प्रयाग होते हुए जनकपुर पहुँचे,

---

१. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ० १६७।

२. इस पुस्तक के प्रथम खंड में आपका जन्मस्थान गंगातटस्थ 'जाजमऊ' (उत्तरप्रदेश) अंकित है; पर आप गया-जिले के टिकारी-दरबार में ही रहते थे, अतः आप गया-जिले के निवासी माने गये।—सं०

३. आपका प्रस्तुत परिचय डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह द्वारा लिखित जीवनी के आधार पर तैयार किया गया है। —देखिए, 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४०२-३ तथा 'परिषद्-पत्रिका' (त्रैमासिक, वर्ष १, अंक ३, सन् १९६१ ई०), पृ० ३९-४०।

४. 'रसिकप्रकाश-भक्तमाल' में आपके नाम का यही रूप उल्लिखित है। डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह को आपकी जो अन्य नई रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें भी आपका यही नाम मिलता है। —देखिए, वही।

जहाँ महात्मा सूरकिशोर से आपने शृंगारी उपासना का रहस्य प्राप्त किया। मिथिला के गाँवों में अनेक दिनों तक 'नर्मसखा' के रूप में आप क्रीडा करते रहे। जब बड़े हुए, तब आपके गुरु सूरकिशोरजी[1] ने आपको 'करवा' लेकर अपनी पुत्री (सीता) से मिलने के लिए अयोध्या भेजा। अयोध्या पहुँचकर आप सीधे कनक-भवन गये। वहाँ आप अपनी बहन से 'करवा' लेकर एक नीम के पेड़ के नीचे रहने लगे।[2] अयोध्या में कई वर्षों तक इस प्रकार जीवन-यापन करने के पश्चात् आप पहले मिथिला और फिर प्रयाग चले आये। प्रयाग में आप त्रिवेणी-संगम पर रहते थे। इसी समय कई शैवमतावलम्बियों को, शास्त्रार्थ में पराजित कर, आपने अपना शिष्य बनाया था। कहते हैं, एक दिन संगम पर किसी कथा में राम-वनगमन का प्रसंग सुनकर भावुकता-वश आप व्याकुल हो गये और शीघ्र ही तीन जोड़े जूते और तीन चारपाइयों को सिर पर लेकर चित्रकूट की ओर चल पड़े। चित्रकूट में जब श्रीसीताराम और लक्ष्मण के दर्शन आपको न हुए, तब आप पंचवटी गये, जहाँ आपकी साध पूरी हुई। पंचवटी से आप पुनः अयोध्या और फिर मिथिला चले आये।

आपने 'जनकपुर के सखा' नाम से रसिक-साधना में एक नवीन भाव का प्रवर्त्तन किया था। इस दृष्टि से उक्त साधना में आपका विशिष्ट स्थान माना जाता है। आपकी कोई पुस्तकाकार रचना नहीं मिलती, स्फुट काव्य-रचनाएँ ही मिलती हैं।

उदाहरण

(१)

दामिनी-सी सिय-संग विराजति
मोति हिये बग-पाँति छए हैं।
हेम जनेउ मनौ धनु इन्द्र कौ
पीत पिछौरी के रूप जए हैं॥

---

१. इनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र द्रष्टव्य। इनके शिष्य होने के नाते आप अपने को जानकीजी का छोटा भाई मानते थे। इसी आधार पर श्रीरामजी आपके बहनोई होते थे। अपने इस नाते पर आपको बड़ा गर्व था। अयोध्या के सखाओं को ये मधुर गालियाँ देते थे। वहाँ दास्य-भावना के भक्त तथा अन्य नागरिक इन्हें 'मामा' कहते थे, जिससे आप 'मामा प्रयागदास' के नाम से विख्यात हुए।

—'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४०२।

२. आपके तत्कालीन जीवन के सम्बन्ध में, अयोध्या में आज भी निम्नांकित पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

नीम के नीचे खाट पड़ी है, खाट के नीचे करवा।
'परागदास' अलबेला सोवैं, रामलला के सरवा॥

आपमें विरक्ति-भावना भी बड़ी ही तीव्र थी। अयोध्या में मेलों के लगने पर आप रामघाट के निकट खेतों में रहने चले जाते थे। मेलों को आपने वैरागियों का प्रपंच कहा है—

मुंड़ियों ने परपंच रचा है हमैं काम का मेलों में।
'परागदास' रघुवर को लेके, पड़े रहेंगे ढेलों में॥

—वही, पृ० ४०२।

वैन कढ़ैं मुख तें अमीधार-सो
दीनन कौ बरसाइ दए है।
भावै सदा 'प्रागदास'-मयूर कौं
रामलला घन से उनए है॥[1]

(२)

स्याही सिताई ललाई किये
जहाँ जात निछावर मैन घने है।
कुंडल लोल लसैं अलकैं ढिग
पीने कपोल सुगंध-सने है॥
मोती विराजति नासिका मैं
बरनौ कहा रूप के तंबु तने है।
सोहैं सदा 'प्रागदास' कौ भावत
रामलला जू के नैन बने है॥[2]

(३)

आछे प्यारे रामजी लला। तुम्हारे बदन पर अनत कला॥
मुख मे बीरी नैना बिसाल। जित चितए तित करे निहाल॥
जहाँ पडे भक्तन पर भीर। हरषत आवें सिय-रघुवीर॥
छोटी-सी धनुय्याँ छोटी-छोटी तीर। खेलन निकसे सरजू के तीर॥
'प्रागदास' चल सरयू-तीर। बीच में मिलि गए सिया-रघुवीर॥[3]

(४)

परागदास जो पीपर होते, राघो होते भुतवा रे।
आठ पहर छाती पर रहते, वे दसरथ के पुतवा रे।
धुनि-धुनि केसवा कहै महेसवा, पार न पावै सेसवा।
परागदास पहलदवा के कारन, रघवा होइगे बघवा।[1]

---

१. 'परिषद्-पत्रिका' (वही, वर्ष २, अंक ३), पृ० ४७।

२. वही।

३. वही। उक्त तीनों रचनाएँ डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह को निम्बार्काचार्य रामसखे की रचनाओं के अन्तर्गत हस्तलेखों में प्राप्त हुई हैं। देखिए, वही।

४. 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' (वही), पृ० ४०३।

लक्ष्मीनाथ ठाकुर[1]

डॉ॰ ग्रियर्सन ने भी अपने 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ॰ २६३) में बतलाया है कि (१) आप सन् १८७० ई॰ में वर्त्तमान एक मैथिल कवि थे। (२) आपने बैसवाड़ी बोली में बहुत-सी रचनाएँ की थी, जिसके कारण आपकी पर्याप्त प्रशंसा हुई।[2]

※

सरसराम[3]

'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' (वही, पृ॰ ३२३) में डॉ॰ ग्रियर्सन ने लिखा है—(१) आप सुन्दर नामक राजा के दरबारी कवि थे। (२) यह सुन्दर तिरहुत के राजा सुन्दर ठाकुर थे, जो सन् १६४१ ई॰ में गद्दी पर बैठे और सन् १६६६ ई॰ में दिवंगत हुए।

※

१. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ॰ ११८।

२. यदि यह सत्य है कि आपने बैसवाड़ी में ही रचना की थी, तो आप ही बैसवाड़ी के प्रथम मैथिल कवि माने जा सकते हैं।—सं॰

३. —देखिए, 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' (वही), पृ॰ २००। १७वीं शती में दरभंगा-जिले के लोहना-ग्राम में रामदास नामक एक कवि भी इसी नाम से काव्य-रचना करते थे। —देखिए, वही, पृ॰ ८६-६०।

परिशिष्ट-४

[प्रस्तुत खण्ड के प्रथम अध्याय के कुछ शेष परिचय]

मिन्नक मिश्र[1]

आपका उपनाम 'नन्द' था। अपनी रचनाओं में आप अपना यही नाम रखते थे।

आपका जन्म सन् १८२५ ई० (सं० १८८२ वि०) में, दरभंगा शहर के 'मिश्रटोला' मुहल्ले में हुआ था।[2] आप शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम था पं० श्रीमोहन मिश्र। आपकी शिक्षा घर पर ही हुई।

आपने घर पर ही साहित्य, व्याकरण, वेदान्त, वैद्यक आदि विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को पढ़ डाला। इन ग्रंथों को पढ़ने के बाद सबसे पहले आप नॉर्मल स्कूल, दरभंगा में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए। इसके पश्चात् गन्हवार, छतवन, सिमरी आदि ग्रामों में भी आपने शिक्षक का कार्य किया। वैद्यक तो आपकी वंशागत जीविका थी। इसके साथ ही आप कभी-कभी श्रीमद्भागवत एवं अन्य पुराणों की कथाएँ भी बाँचते थे, जो बहुत ही मनोरंजक हुआ करता था। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह और महाराज रमेश्वर सिंह के समय आपका सम्बन्ध दरभंगा-राज से भी था। उक्त राज्य से अवसर-अवसर पर आपका उचित सत्कार भी हुआ करता था।

आपका कद छोटा था तथा आप सर्वदा स्वस्थ रहा करते थे। आपके शरीर की बनावट ऐसी थी कि वृद्धावस्था में भी आप वृद्ध जैसे नहीं लगते थे। बन्ददार मिर्जई, पाग, धोती और देशी जूता आपका पहनावा था। आप हृदय के बड़े उदार थे। जो कुछ भी आमदनी होती थी, उसे दान-पुण्य में ही खर्च कर डालते थे। आपने दो-दो विवाह किये, किन्तु संतान एक भी नहीं हुई।[3]

आपके यहाँ प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत-हिन्दी-ग्रंथों का बड़ा अच्छा संग्रह था। किन्तु, आग लग जाने के कारण वे सभी ग्रंथ भस्मसात् हो गये।

आपको काव्य-कला, चित्र-कला, छंद-अलंकार, ताल-सुर आदि का बड़ा अच्छा ज्ञान था। काव्य-रचना की ओर आप १७ वर्ष की अवस्था से ही प्रवृत्त हो गये।

---

१. आपका परिचय मुख्यतः प० शशिनाथ चौधरी (मिश्रटोला, दरभंगा) द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर तैयार किया गया है।—सं०

२. वही। आपके भ्रातृज पं० शारदाप्रसाद मिश्र आपका जन्म सन् १८३२ ई० (सं० १८८६ वि०, कार्तिक बदी ४ में हुआ बतलाते हैं।—सं०

३. पं० शारदाप्रसाद मिश्र को ही आप पुत्रवत् मानते थे।—सं०

कविताएँ बनाकर आप अक्सर उन्हें स्वयं गाया करते थे। आप आशुकवि थे और बात-की-बात में कठिन-से-कठिन समस्यापूर्त्तियाँ कर डालते थे। कहते हैं, आपने अनेक पुस्तकों की रचना की थी। किन्तु, आपके द्वारा रचित 'विद्यावती' नामक एक उपन्यास और गद्य-पद्य में अनेक स्फुट रचनाएँ ही मिली हैं। आप १०२ वर्ष की आयु में सन् १६२७ ई० में परलोक सिधारे।

उदाहरण

(१)

चलुचलु सखि मिलि श्याम को
झूला झुलाओ पालना।
क्या खूब गोल कपोल सुन्दर
श्रवण मोतिन झालना।
श्याम नीरज श्याम मुख सुठि
नासिका वर झूलना।
लाल लाल सुविन्दु केसर
हिम धरे सुचि मालना!
मन्दार तुलसी कुन्द कल्प
सुपारिजातक पालना।
आराम दायक विप्रपद उर
रेख सजनी चाहना।
पीत पट कटि जड़ित ऊपर
कसे मुरली लालना।
आजानुकर उर जानु जंघ
सुगुल्फ पद 'नन्द' धारना।[1]

---

१. पं० शशिनाथ चौधरी (वही) से प्राप्त।

(२)

कालि कहि हेरत पुनि नीली कहि टेरत
हरि घेरत कहि धूसरी तू
आओ सुख पाओ री।
हरित तृण हाथ निज लाओ री
जमुना जल पान करि
दुःख बिसराओ री।
. .चित चेतत नित आए इत
हौं ए बलैया मिलि
तेरे गुण गाओ री।
...यह धरत पगु
पाछे 'नन्द' होत अबेरा
आसकेरा घर जाओ री।[1]

(३)

बरै जस बिना बाइ के दीप ॥
बरै धीर तस चित असथिर कर
जस मोती रह सीप।
बरै समाधि लगाए निरन्तर
जग तेजि ब्रह्म समीप ॥
दवा भव रोगन के सतसंग ॥
दम शम उपरति द्वन्द सहनता
समाधान विस्वास।
दयादान व्रत नित्यादिक जँह
करि सुठि ज्ञान प्रकाश ॥
नगारा सोहं सभ मे बाज ॥

---

१. प० शशिनाथ चौधरी (वही) से प्राप्त।

नहि कोई पुरुष नारि नहि कोई
आनन आपन सार।
नहि कोइ कुल अकुलीन लखै सब
एक मिल्यो संसार।[१]

(४)

अब मेरे मन की सुनिये। मैं इन देशवासी श्याम काकातूआ तोतों की विमल हृदय जाना तो इनके सुख के लिये दूर-दूर के विपिनो से अनेक भाँति के......वृक्ष लतायें और मणिमय वस्त्रमय सम्पदों को ऐसे ही अनके भाँति से बान्ध कर लिखी हुई अनके इतिहास और काव्य की कविता की किताबें अपने पीठ पर चढा चढ़ा ला ला कर ऐसे ही अपने देश के अनेक पोशाकें भी ला दिखाई......और सामुदो अपनी विद्या भी पढ़ा कर राजिश चाकू से भी बढ़ कर......बुद्धि देखकर अनन्तर जलथल पर ले जाने वाले रेल जहाजों के द्वारा......देश दिखला और अन्य अन्य देश भी घुमा फिरा सब देश की अनेक भाँति......ओकोली मजिस्ट्रेट डिपोटी डिपोटी कलक्टर आदि बना बना कर परीक्षित कर तत्तरद स्थापित भी कर दिये गये।[२]

❋

जनकधारी लाल[३]

आप दानापुर (पटना) के निवासी थे।[४] आपका जन्म सन् १८४५ ई० में २७ सितम्बर को हुआ था।

१. पं० शशिनाथ चौधरी (वही) से प्राप्त।

२. वही।

३. आपका परिचय डॉ० रामेश्वर प्रसाद, विशारद (दानापुरकैण्ट, पटना) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर तैयार किया गया है। आपका परिचय नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ) से सन् १९१२ ई० में प्रकाशित 'हू इज हू' में भी छपा था।—सं०

४. वही।

आपके पिता का नाम इन्द्रजीत सिंह था,[1] जो एक सदाचारी एवं निष्ठावान् कृषक थे। अध्ययन की ओर आपकी विशेष अभिरुचि देखकर उन्होने आपकी उचित शिक्षा की व्यवस्था कर दी। प्रवेशिका परीक्षा मे आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। आपके सहपाठियों में बिहार-निर्माता डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा भी थे। अपनी शिक्षा समाप्त होते ही आपने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के रक्षार्थ दानापुर मे 'आर्यन ऐंग्लो संस्कृत-विद्यालय' नाम से एक स्कूल की स्थापना की, जिसके प्रधानाध्यापक-पद पर लोगो ने आपको ही प्रतिष्ठित किया। आपके अध्यापन की शैली अत्यन्त सरल एवं हृदयग्राहिणी थी।

आपकी गणना इस राज्य के प्रमुख आर्यसमाजियो में होती थी। वर्षों तक आप आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द के निकट सम्पर्क में रहे। सन् १८७८ ई० में आपने उन्हे दानापुर में बुलाकर एक आर्यसमाज-मंदिर की स्थापना भी कराई थी।

आपकी प्रसिद्धि एक लोकप्रिय समाजसेवी के रूप में भी थी। जनता ने लगातार छः बार आपको दानापुर-निजामत-म्युनिसिपैलिटी का वाइस-चेयरमैन बनाया। उस समय एस्० डी० ओ० ही चेयरमैन हुआ करते थे। आपने उक्त पद पर रहकर समाज की निष्ठापूर्वक सेवा की। लगभग चौदह वर्षों तक जनता की सेवा करके आप स्वयं हट गये। आपकी सार्वजनिक सेवाओं से प्रभावित होकर तत्कालीन सरकार ने सन् १९११-१२ ई० के दिल्ली-दरबार में आपको 'रायसाहब' की उपाधि से सम्मानित किया था।

आडम्बर से दूर रहकर आपने हिन्दी का प्रचार भी बड़ी लगन से किया। आपने विधि, बीजगणित, आदि विषयों की कुछ अँगरेजी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया था। आपके द्वारा सम्पादित 'सुनीति-संग्रह' हिन्दी की एक शिक्षाप्रद पुस्तक मानी गई है। आप सन् १९२० ई० की २० मई को परलोक सिधारे।[2] आपकी रचना के उदाहरण नही मिले।

*

१. आपके तीन पुत्र थे—श्रीदेवधारी सिंह, श्रीसाधुवनवाली सिंह तथा श्रीधनराज सिंह। इनमें द्वितीय श्रीसाधुवनवाली सिंह ने संभवतः कुछ हिन्दी-पुस्तकों की भी रचना की है। इन दिनों वे सन्यास लेकर बड़ौदा के निकट नर्मदा-तट पर निवास कर रहे हैं।—सं०

२. जनता ने आपकी स्मृति में उच्चांग्ल विद्यालय की स्थापना की है और म्युनिसिपल बोर्ड ने आपके नाम पर एक सड़क का नामकरण किया है। आर्यसमाज ने अपने भवन में आपका तैलचित्र भी लगाया है।—सं०

दिवाकर भट्ट[१]

आपका जन्म शाहाबाद-जिले के शाहपुरपट्टी थाने के अन्तर्गत 'गऊडार' नामक ग्राम में, सन् १८४८ ई० (सं० १६०५ वि०) की कार्त्तिक शुक्ल सप्तमी को हुआ था।[२] आपके पिता पं० राजभूषण भट्ट उक्त ग्राम में, शाहाबाद के ही एक दूसरे ग्राम, 'बालाबाँध' से आकर बस गये थे।[३]

आपकी आरम्भिक शिक्षा गाँव की ही एक पाठशाला में हुई। आपने अल्प समय मे ही अरबी और फारसी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। तदनन्तर काशी जाकर आप संस्कृत और प्राकृत-साहित्य के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए और उसमे भी सिद्ध-हस्त हुए। प्राकृत-भाषा के आपके गुरु थे डुमराँव (शाहाबाद)-निवासी पं० राधा-वल्लभजी। संस्कृत-प्राकृत का अध्ययन करते समय आपने हिन्दी में कविता करने की योग्यता प्राप्त कर ली। आपके काव्यगुरु असनीवाले आचार्य श्रीरामकवि थे। सं० १६२६ वि० (सन् १८६६ ई०) में, लगभग बीस-इक्कीस वर्ष की अवस्था में जब आप काशी रहकर अध्ययन कर रहे थे, तब आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया और आपको अपनी अधूरी पढ़ाई छोड़कर अपनी जमीन्दारी सँभालने के लिए अपने घर लौट आना पड़ा। तब से अपने

---

१. आपका प्रस्तुत परिचय आपके वंशज प० गयाधर भट्ट (बालाबाँध, सेमराँव, शाहाबाद) द्वारा प्रेषित विवरण के आधार पर तैयार किया गया है। यों, आपके शब्दों में ही आपका परिचय इस प्रकार है—

> श्री कविवृन्द के पोता लगौ, परपोता सुभट्ट नारायण केरो।
> श्री नृपभूषण के हूँ मैं पुत्र, सुभट्ट दिवाकर नाम है मेरो॥
> राजसी वृत्ति, सुरक्षक कालिका, त्र्यंबक नगर में लागो बसेरो।
> शास्त्र पुरानन की चर्चा, अर्चा तहाँ कालिका साँझ सवेरो॥

२. वही। मधुसूदन ओझा 'स्वतंत्र' भ्रमवश आपका जन्मकाल सन् १८६० ई० मानते हैं।—सं०

३. बालाबाँध शाहाबाद-जिले के पियरो (पीरो) थाने में एक प्रसिद्ध गाँव है। यहाँ के ब्राह्मण अपनी विद्वत्ता और बुद्धि के लिए विख्यात हैं। यहाँ अनेक कवि, लेखक और विद्वान् हो गये हैं। ये लोग डुमराँव महाराज के पूर्वजों के साथ राजपुताने से आये थे और उन्हीं के साथ रहते थे। डुमराँव के प्रथम महाराजा नारायणमल्ल के साथ गोस्वामी भट्टारक आये थे। गोस्वामी भट्टारक प्रकांड विद्वान्, देवी के परमभक्त और युद्धविद्याविशारद थे। इन्हीं की मंत्रणा और सलाह से चेरोखरवार-वंश के डुमराँव-नरेश को हराकर राजा नारायणमल्ल डुमराँव के महाराजा बने। डुमराँव-राज की प्राप्ति में सक्रिय भाग लेने के कारण गोस्वामी भट्टारक को महाराज अधिक आदर की दृष्टि से देखते थे और उन्हीं की राय से राज्य का सारा प्रबंध करते थे। पुरस्कार-स्वरूप महाराजा ने इन्हें अपने राज्य के दसवें भाग का जमीन्दार बना दिया। कहा जाता है कि इनका ब्याह बाणभट्ट के वंशज बालाबाँध-निवासी एक व्यक्ति के यहा हुआ। कालक्रम से ये बालबाँध में स्थायी रूप से बस गये और अपनी जमीन्दारी की आय से जीवन-यापन से निश्चिन्त हो सरस्वती की आराधना में अपना समय व्यतीत करने लगे। इनके वंश में केदारी भट्ट परम प्रसिद्ध कवि और विद्वान् हुए, जिन्होंने अपनी काव्य-कुशलता और प्रगल्भता से दिल्ली-सम्राट शाहजहाँ से प्रतिवर्ष एक लाख रुपये का नियमित अनुदान प्राप्त किया।—सं०

घर पर ही रहकर आपने आजीवन साहित्य-सेवा की। आपका सम्मान विशेषतः राज-दरबारो में ही था। डुमराँव-राज्य के तो आप दरबारी कवि थे। इस कारण उक्त दरबार मे आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कहते हैं, गया-जिले के टिकारी-रियासत मे भी आपका बड़ा मान था। उक्त दोनो दरबारों की ओर से आपको कई गाँव भी प्राप्त हुए थे।

आपकी प्रमुख पुस्तकाकार रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) नखशिख[१], (२) नवोढ़ारत्न[२], (३) वेश्या-विलास[३], (४) संध्या-विनोद, (५) संध्या-सर्वस्व, (६) वर्णधर्म-विवेक संहिता[४] तथा (७) धर्मनिर्णय[५]। इसके अतिरिक्त केशव की 'कविप्रिया', रसिकप्रिया', बिहारी की 'सतसई' एवं मतिराम के 'भाषाभूषण' और 'रसराज' की टीकाएँ भी आपने लिखी थी।

अपने जीवन के सांध्य काल में आप उदर-रोग से ग्रस्त हो गये और सं० १९६३ वि० (१ अक्टूबर, सन् १९०६ ई०) के क्वार मास में परलोक सिधार गये। आपकी मृत्यु पर आपके एक शिष्य 'शिवमोद' नामक एक कवि ने एक कविता लिखी थी।[६]

उदाहरण

(१)

छीरधी की छोहरी-सी छाजे छितिपाल-सभा,
छीन लंक छवातू छडीले बार छाये ते।
छबि-भरी छोटी-सी छटाँक-तौल छूटो छटा,
चमकति छरकि छिनक राग गाये ते।
सुकवि 'दिवाकरु' जू छाती उचकाय छरा,
छोर छितराय छलछन्द छिप्र छाये ते।
पोंछति रुमाल मुख, परत मसाल मन्द,
बदन छपाकर छबीली छवि छाये ते॥[७]

---

१. यह सं० १९४१ वि० (सन् १८८४ ई०) में भारत-जीवन प्रेस, काशी से मुद्रित हुआ था।—स०
२. इसकी रचना स० १९४५ वि० (सन् १८८८ ई०) में हुई थी।—सं०
३. इसकी रचना स० १९४६ वि० (सन् १८८९ ई०) में हुई थी।—स०
४. इसकी रचना सं० १९५५ वि० (सन् १८९८ ई०) में हुई थी। यह ग्रन्थ आजकल वलिया-जिले के गंगापुर-निवासी पं० धनेश्वर भट्ट 'भारद्वाज' के पास सुरक्षित है। सुनने में आया है कि वे इसके प्रकाशन की व्यवस्था कर रहे हैं।—स०
५. इसकी रचना सं० १९६० वि० (सन् १९१३ ई०) में हुई थी।—सं०
६, वह कविता इस प्रकार है—
"गम रस अंक इन्दु संवत सुबिक्रम को, आस्विन सुक्ल तिथि चौदसी सुपायो है।
सोमवार उग्र भाद्रपद तार वृद्धि जोग, जामिनी द्वियाम घटी द्वादस वतायो है।
रितु नभ अंक मही इस्वी तारीख आदि, मास अकतूवर सु भट्ट ठहरायो है।
कहे 'सिवमोद' महाभट्ट श्रीदिवाकर जू, ऐसे समय पाय सुरलोक को सिधायो है॥"
७. श्रीमधुसूदन ओझा 'स्वतन्त्र (वही) से प्राप्त।—स०

(२)

चम्पा ते चमेली ते गुलाब गुलसब्बहूँ ते,
बेला बेली ऐला ते रसाल-बौर कच्चा ते।
जाही जूही सेवती असीर गुलचीनी कन्द,
गेंदा गुलदाउदी कपूर दीन घच्चा ते।
सन्दल-अतर-कस्तूरी-बू 'दिवाकर' जू,
श्वेत-बनवासी कृष्णसार मृगबच्चा ते।
इतने सुबास ते सुबास है करोर गुन,
तेज अफताब ते, सुगन्ध मुख सच्चा के॥'[1]

*

१. पं० श्रीगदाधर भट्ट (नद्दी) से प्राप्त।

परिशिष्ट-५

[परिचय-तालिका]

प्रथम अध्याय

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
१	१	अमृतनाथ	सन् १८०१ ई०	सुखीसेमरा (चम्पारन)	स्फुट रचनाएँ	कवि
२	२	*सुवासिन दाई	,,	पदुमकेर (चम्पारन)	,, (अनुपलब्ध)	,,
३	२	हितनारायण सिंह	सन् १८०३ ई०	तारणपुर (पटना)	,,	,,
४	३	कृष्णदत्त पाण्डेय	सन् १८०५ ई०	भोजपुर (शाहाबाद)	१. कृष्णपद्यावली २. भारत का गदर (अनु०) तथा स्फुट रचनाएँ	,, ,,
५	४	यशोदानन्द	सन् १८१३ ई०	अख्तियारपुर (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	,,
६	५	तपस्वीराम (तपसीराम)	सन् १८१५ ई०	मुबारकपुर (सारन)	१. श्रीभागवतसूची २. श्रीअयोध्या-माहात्म्य ३. कथामाला ४. प्रेमगंगतरंग ५. श्रीसीतारामचरण-चिह्न	,,
७	८	हेमलता (युगलानन्यशरण)	सन् १८१८ ई०	इस्लामपुर (पटना)	ग्रंथ-सं० ७५,—देखिए,पृ०६-१०	,,
८	१२	घनारंग दुवे (घनारंग मलिक, घना मलिक)	सन् १८१९ ई०	घनगाँई (शाहाबाद)	कृष्णरामायण तथा स्फुट रचनाएँ	,,
९	१६	नगनारायण सिंह	,,	पटेढ़ी (सारन)	१. श्रीदुर्गाप्रेमतरंगिणी २. दुर्गानामार्थ दोहावली तथा स्फुट रचनाएँ।	,,

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
१०	२०	दामोदर झा (आदिनाथ)	सन् १८२१ ई०	महरैल (दरभंगा)	१. देवीगीत-शतक २. काम-दर्पण ३. कृष्ण-कुतूहल ४. मूलचरित्र ५. गीतावली ६. मिथिला आयुर्वेद-शब्दकोश ७. आयुर्वेद-संग्रह	कवि
११	२१	भाना झा (भानुनाथ)	सन् १८२३ ई०	पिलखवाड़ (दरभंगा)	प्रभावतीहरण (अन्य ग्रन्थ अनु०)	नाटककार
१२	३३७	भिन्नक मिश्र (नन्द)	सन् १८२५ ई०	मिश्रटोला (दरभंगा)	विद्यावती (अन्य ग्रन्थ अनु०) एवं स्फुट रचनाएँ	कवि एवं गद्यकार
१३	२४	*चिरंजीवी मिश्र	सन् १८२६ ई०	सिरियावाँ (गया)	स्फुट रचनाएँ (ग्रन्थ अनु०)	गद्यकार
१४	२४	बच्चू दुबे (प्रकाश मलिक, प्रकाश)	सन् १८२७ ई०	धनगाँई (शाहाबाद)	१. सुर-प्रकाश २. रस-प्रकाश ३. संगीत-प्रकाश तथा ४. भैरव-प्रकाश	कवि
१५	२८	अयोध्याप्रसाद मिश्र	सन् १८३० ई०	नई गोदाम (गया)	१. सुधाबिन्दु २. स्वप्न-विचार ३. आरोग्य शिक्षा ४. संध्या-बोधन ५. मांस-भक्षण-मीमांसा ६. जीव-जीवन-सिद्धान्त ७. द्रव्यगुण-दर्पण ८. श्रीमद्भगवद्गीतार्थचन्द्रिका	गद्यकार
१६	३०	अलिराज	,,	डुमराँव (शाहाबाद)	१. कुँअर-हजारा २. भक्तमाल.	कवि

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
१७	३१	चन्दा झा (चन्द्र, कवीश्वर)	सन् १८३० ई०	पिंडारुछ-ठाढ़ी (दरभंगा)	१. मैथिली-भाषा-रामायण २. पुरुष-परीक्षा का मैथिली गद्य-पद्यानुवाद ३. चन्द्रपद्यावली ४. महेशावली गीतिसुधा ५. अहिल्याचरित नाटक ६. वाताह्वानकाव्य तथा ७. श्रीलक्ष्मीश्वर-विलास	कवि, नाटककार एवं गद्यकार
१८	३६	भगवतशरण (भगतजी)	,,	शीतलपुर (सारन)	१. अध्यात्मज्ञान मंजरी २. युगलशृङ्गारभरण तथा ३. संसार-विटप-नारायणी	कवि
१९	३८	राधावल्लभ जोशी (विप्रवल्लभ, वल्लभविप्र, वल्लभ, काकाजी)	सन् १८३१ ई०	डुमराँव (शाहाबाद)	१. रसिक-रंजन-रामायण २. रसिकोल्लास भागवत ३. श्रंगरत्नाकर ४. विजयोत्सव ५. कृष्णलीलामृत ध्वनि ६. अमृतलतिका ७. गंगामृत तरंगिणी ८ वल्लभश्रुतबोध ९. वल्लभ-विनोद १०. वल्लभोत्साह ११. जैपुर-जलूस १२. खड्गबली १३. भाषाश्रुतबोध	,,

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
२०	४३	हरनाथप्रसाद खत्री	सन् १८३१ ई०	बिहारशरीफ (पटना)	१. व्याकरण-वाटिका २. गुरुभक्ति-दर्पण ३. बाल-विनोद ४. कन्या-दर्पण ५. मानव-विनोद तथा ६. वर्णबोध	कवि एवं गद्यकार
२१	४५	*गणेशानन्द शर्मा	सन् १८३३ ई०	मुरार (गया)	१. ऋतुवर्णन और २. नायक-नायिका-तत्त्व तथा स्फुट रचनाएँ	कवि
२२	४५	रामकुमार सिंह (कुमार)	,,	सूर्यपुरा (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	,,
२३	४८	रामचन्द्र लाल (गुनहगार)	सन् १८३४ ई०	डुमराँव (शाहाबाद)	,, ,,	,,
२४	५०	बैजनाथ द्विवेदी	सन् १८३८ ई०	टेकारी (गया)	१. श्रीसीतारामाभरणमंजरी २. नख-शिख ३. रामरहस्य ४. वृत्त-निदोष-कदम्ब ५. वाम-विलास ६. उद्दीपन-शृंगार-मंजरी ७. अनुभव-उल्लास ८. चित्राभरण ९. पंचदेवता-वंदन-चालीसा तथा १०. भूषण-चंद्रिका	,,
२५	५१	नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह (ईश)	सन् १८३९ ई०	जगदीशपुर (शाहाबाद)	१. शिवाशिवशतक २. शृंगार-दर्पण ३. धर्मप्रदर्शनी ४. पंचरत्न एवं स्फुट रचनाएँ	कवि एवं गद्यकार

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
२६	५७	*जयप्रकाश लाल	सन् १८४० ई०	अपहर (सारन)	जगोपकारक	गद्यकार
२७	५७	भगवान प्रसाद (श्रीसीतारामशरण, रूपकला)	,,	मुबारकपुर (सारन)	१. तन-मन की स्वच्छता २. शरीर-पालन ३. भागवत-गुटका ४. श्रीपीपाजी की कथा ५. श्रीभगवद्वचनामृत ६. भक्तमाल की टीका ७. श्रीसीताराम-मानसपूजा ८. भगवन्नाम-कीर्त्तन ९. श्रीसीतारामीय प्रथम पुस्तक १०. मीराबाई तथा स्फुट रचनाएँ	कवि एवं गद्यकार
२८	६७	रामविहारी सहाय (विहारी)	,,	नयागाँव (सारन)	स्फुट रचनाएँ	कवि
२९	६९	रामलोचन मिश्र (भक्तभूषण)	सन् १८४१ ई०	मझवली (सारन)	१. श्रीसत्यनारायण-कथा का हिन्दी-पद्यात्मक अनुवाद २. बहुलाव्रत-कथा का हिन्दी-पद्यात्मक अनुवाद ३. चर्पटी-मंजरी (मोहमुद्गर) का हिन्दी-पद्यात्मक अनुवाद ४. रामायण-महत्त्व ५. रामनाम-महिमा ६. ऋतु-सगीतावली ७. पुण्यपर्व-वर्णन ८. रामभक्ति-भजनावली ९. पिंगला-गीत	कवि एवं गद्यकार

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
					१०. गंगा-सरयू-महिमा ११. समस्यापूर्त्ति १२. पत्र-पद्यावली १३. आत्मजीवनी १४. स्फुट-कवितावली १५. हनुमत्प्रार्थना १६. प्रासगिक कवितावली १७. पिङ्गल-छन्दगणाष्टक-वर्णन तथा १८. शाकद्वीपीयद्विज-वर्णन	
३०	७१	अक्षयकुमार	सन् १८४३ ई०	बाघ (मुजफ्फरपुर)	१. रसिकविलास-रामायण २. वर्णबोध तथा स्फुट रचनाएँ	कवि
३१	७४	*शिवप्रकाश लाल	,,	अपहर (सारन)	१. भागवतरस-संपुट २. भजन-रसामृतार्णव ३. विनयपत्रिका-टीका ४. गीतावली-टीका ५. रामगीता-टीका तथा ६. इतिहास-लहरी	कवि एवं गद्यकार
३२	७४	*हरिनाथ पाठक	,,	पाठकबिगहा (गया)	१. ललित-रामायण २. ललित-भागवत ३ सत्यनारायण-विनोद तथा स्फुट रचनाएँ	कवि
३३	७५	बालगोविन्द मिश्र (कमलेश, कमलापति, बालगोविन्द और गोविन्द)	सन् १८४४ ई०	बेलखरा (गया)	स्फुट रचनाएँ	,,

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
३४	८०	रामफल राय	सन् १८४४ ई०	ताजपुर (सारन)	१. विविध विनोद तथा २. पावस-बत्तीसी	कवि
३५	८२	व्रजविहारी लाल	,,	मट्ठकपुर (शाहाबाद)	१. प्रबोधचन्द्रोदय-नाटक २ रत्नावली-नाटिका ३. संगीत-हरिश्चन्द्र ४. संगीत-लता ५. संगीत-सुधा ६. नीतिदृष्टान्त-रामायण ७. नीतिदृष्टान्तमाला ८. बालबोध ९. कजली-कल्याण १० आर्यमत-मार्त्तण्ड ११. दिवान्ध-दर्पण १२. वाराणसी-आदर्श तथा १३. विद्यासुन्दर-नाटक	कवि, गद्यकार एवं नाटककार
३६	८४	*उमानाथ मिश्र	सन् १८४५ ई०	समकूरा (पटना)	१. गणित-बत्तीसी २. गणित-छत्तीसी ३. रेखागणित ४. गणितसार ५. रससार तथा ६. खेतीवारी	गद्यकार
३७	३४०	*जनकधारी लाल	,,	दानापुर (पटना)	सुनीति-संग्रह (सं०)	,,
३८	८५	ठग मिश्र	,,	डुमराँव (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	कवि
३९	८८	बनवारीलाल मिश्र	,,	लालूचक (भागलपुर)	१. ज्ञानविनोद	

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
					२. नाटक, प्रहसन तथा स्फुट रचनाएँ	कवि एवं नाटककार
४०	८६	गुरुसहाय लाल	सन् १८४६ ई०	नादिरा (गया)	१. सज्जन-विलास २. निर्वाणशतकम् ३. श्रीगुरुगमविलास ४. श्रीतत्त्वचिन्तामणि ५. तत्त्वतरङ्गिणी ६. अनुभव-प्रभाकर ७. सन्त-मनः उन्मनी ८. पातंजल योगदर्शन ९. श्रीसद्गुरुस्तवराज १०. मानस-अभिराम तथा ११. परतर-अभिधानम्	कवि एवं गद्यकार
४१	९२	चतुर्भुज मिश्र	,,	डुमरिया (गया)	१. आल्हा-रामायण २. गयावासी-रामायण ३. गयावासी-भागवत ४. सरोज-रामायण ५. उद्देश्य-आनन्द-कल्लोलिनी ६. सुबोध-सूर्योदय ७. मनोहर-रामायण ८. सुबोध-चन्द्रोदय ९. गीतासार तथा १०. बिरह-बतीसी	कवि
४२	९४	सैयद अली महम्मद (शाद)	,,	पटनासिटी (पटना)	स्फुट रचनाएँ	,,

क०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थिति या जन्म-काल	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
४३	९५	हर्षनाथ झा	सन् १८४७ ई०	उजान (दरभंगा)	१. उषाहरण २. माधवानन्द ३. राधाकृष्ण-मिलन-लीला तथा स्फुट रचनाएँ	कवि और नाटककार
४४	३४२	दिवाकर भट्ट	सन् १८४८ ई०	गऊडार (शाहाबाद)	१. नखशिख २. नवोढारत्न ३. वेश्या-विलास ४. संध्याविनोद ५. संध्यासर्वस्व ६. वर्णधर्मविवेक-संहिता ७. धर्मनिर्णय एवं कुछ टीकाएँ	कवि
४५	९९	ससारनाथ पाठक (बाबा रामायणदास)	सन् १८५० ई०	बड़का डुमरा (शाहाबाद)	१. महामारी-निवारण-स्तोत्र २. अलिफनामा ३. दोहावली ४. कविता-कुंज ५. भजनावली ६. ज्ञानगीतावली ७. शत-शिक्षा-विचार ८. आत्माराम की नालिश ९. भक्ति-विनोद १०. सकीर्त्तन-माहात्म्य ११. तिलक-माला-महिमा तथा १२. विचार-पत्रिका	कवि एवं गद्यकार
४६	१०४	यशदत्त त्रिपाठी (यश, जगमोहन)	मन् १८५० ई०	बलुआ (सारन)	१. यश-लहरी एवं स्फुट रचनाएँ	कवि

द्वितीय अध्याय

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
१	१०७	*अजितदास	बारा (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	कवि
२	१०७	कमलाधर मिश्र	रत्नमाला (चम्पारन)	,,	,,
३	१०८	करनश्याम	मिथिला	,,	,,
४	१०६	कान्हजी सहाय (कन्हैया)	धमार (शाहाबाद)	कन्हाइजी की बधाई एवं स्फुट रचनाएँ	,,
५	१११	कान्हारामदास	मिथिला	गौरी-स्वयंवर	नाटककार और कवि
६	११२	कामदमणि	गया	१. पंचभक्ति-रसो के पदबद्ध पत्र और २. केशव कहि न जाय का कहिये	कवि
७	११४	*कालिकाप्रसाद	दिमहर (सारन)	सिया-स्वयंवर	
८	११४	*कालीचरण	भोजपुर (शाहाबाद)	वृन्दावन-प्रकरण	?
६	११४	*कालीचरण दुबे	बेतिया (चम्पारन)	स्फुट रचनाएँ	कवि
१०	११५	*कुंजनदास	पटना	सुदामा-विनोद	,,
११	११५	*केदारनाथ उपाध्याय	चम्पारन	१. श्रीमद्भागवत २. कृष्णचरित्र ३ रामाश्वमेध-रामायण तथा ४. नरसिंह-चरित्र	? गद्यकार एवं कवि
१२	११५	गणपत सिंह	पटना	भूगोल-वर्णन	गद्यकार
१३	११६	गुरुप्रसाद सिंह	गिद्धौर (मुँगेर)	१. राजनीति-रत्नमाला २. भारत-संगीत तथा ३. चुटकुला	कवि एवं गद्यकार
१४	११७	*गुरुबक्स लाल	बकसंडा (गया)	कुंडलिया-रामायण	कवि

क्र०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
१५	११७	*गुलावचन्द्र लाल (अंध कवि)	छपरा (सारन)	स्फुट रचनाएँ	कवि
१६	११८	*गोपी महाराज	बनैली (पूर्णियाँ)	,,	,,
१७	११८	गोपीश्वर सिंह (गोपीश)	दरभंगा	गोपीश्वर-विनोद	,,
१८	१२१	*गोविन्ददेव	मगध	स्फुट रचनाएँ	,,
१९	१२१	*चतुर्भुज सहाय	मुहम्मदनगर (सारन)	,,	
२०	१२१	*चन्द्र शर्मा	मिथिला	उषा-हरण	
२१	१२२	चन्द्रेश्वरी राय	पचबेनिया (सारन)	स्वयंवर एवं स्फुट रचनाएँ	,,
२२	१२५	*छक्कनलाल	गया	स्फुट रचनाएँ	गद्यकार
२३	१२६	*छोटक पाठक	बेतिया (चम्पारन)	,,	कवि
२४	१२६	जगदम्बलाल बख्शी	इचाक (हजारीबाग)	१. सर्वरस-सागर २. प्रणव गिलहोत्री एवं स्फुट रचनाएँ	,,
२५	१२८	जगदेवनारायण सिंह	गया	स्फुट रचनाएँ	,,
२६	१२९	*जगन्नाथ तिवारी	बेतिया (चम्पारन)	,,	,,
२७	१२९	टिम्बल ओझा	पटना	पुनपुन-महात्म्य	,,
२८	१३०	ठाकुर	साहबगंज (छपरा)	स्फुट रचनाएँ	,,
२९	१३२	*देवदत्त मिश्र	पटना	बालविवाह-दूषक	नाटककार
३०	१३२	नान्हक	सारन	स्फुट रचनाएँ	कवि
३१	१३३	*नारायण	पटना	अष्टयाम	,,
३२	१३३	*नारायणदत्त उपाध्याय	बेतिया (चम्पारन)	स्फुट रचनाएँ	,,
३३	१३३	परमानन्ददास	कोरी (शाहाबाद)	१. बारहमासा २. कबीर-भानु-प्रकाश एवं स्फुट रचनाएँ	,,
३४	१३६	फतूरीलाल (फतूरलाल)	मिथिला	१. कवित्त अकाली एवं स्फुट रचनाएँ	,,
३५	१३७	*बदरीनाथ	पटना	स्फुट रचनाएँ	गद्यकार एवं सम्पादक
३६	१३८	बबुजन झा	पिलखबाड (मिथिला)	,,	कवि

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
३७	१३८	*बहादुरदास	डुमराँव (शाहाबाद)	निर्द्वन्द्व-रामायण	?
३८	१३६	*बिहारी सिंह	सारन	१. बिहारी नखशिख-भूषण २. मारुती-मंजरी तथा ३. दूती-दर्पण	कवि
३६	१३६	*बुल्लूराम	छोटानागपुर	स्फुट रचनाएँ	,,
४०	१३६	*बोधिदास	पटना	भक्त-विवेक	?
४१	१४०	*भगवानप्रसाद वर्मा	इन्चाक (हजारीबाग)	१. गोपाल-बाललीला-सार २. करुण-क्रन्दन-शतक ३. श्रीनारद-कृत भक्ति-सूत्र-भाषा ४. श्रवण-माहात्म्य और हरिवृत्त-माहात्म्य ५. सप्तश्लोकी गीता ६. स्फुटगीतावली या कवितावली ७. वंशावली ८. श्रीमद्भगवद्गीता-माहात्म्य तथा ६. भक्ति-निवेदन एवं अन्य ग्रंथ	कवि एवं गद्यकार
४२	१४०	भजनदेव स्वामी (पयहारीबाबा, निमवाँबाबा)	खैरा (गया)	१. गुरु गुन-गुष्ट २. श्रीक्षेत्र-ज्ञान ३. ब्रह्मस्वरूप-रूपक तथा ४. ज्ञानसरोदा	कवि
४३	१४२	*भवानीचरण मुखोपाध्याय	कटरा (छपरा)	स्फुट रचनाएँ	गद्यकार एवं सम्पादक
४४	१४२	भागवतनारायण सिंह (भगवंत)	रूपस (पटना)	१. रामलीला-संवाद २. वरणावली-दोहा ३. प्रश्नोत्तर-दोहा	कवि

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
				४. श्रीरामनामामृत दोहा तथा स्फुट रचनाएँ	
४५	१४४	†मधुसूदनरामानुजदास	बलुआ बाजार (भागलपुर)	भगवतधर्म-दीपिका	
४६	१४५	*महाबीर चौबे	बेतिया (चम्पारन)	स्फुट रचनाएँ	कवि
४७	१४५	*महेशदास	पटना	एकादशी-माहात्म्य	?
४८	१४५	मुकुटलाल मिश्र (रंग)	पटनासिटी (पटना)	१. दुर्गा-विजय २. गणिका-साधु-संवाद तथा ३. बिहारी-सतसई की टीका	कवि
४९	१५०	मनीन्द्र	बिसौली (मिथिला)	श्रीजगदम्बा-स्तुति तथा स्फुट रचनाएँ	कवि
५०	१५१	†रघुवंश सहाय	छपरा (सारन)	व्रजवन-यात्रा	,,
५१	१५२	रत्नप्राणि (बबरैया झा)	मिथिला	उषा-हरण तथा स्फुट रचनाएँ	नाटककार एवं कवि
५२	१५४	राजेन्द्रशरण (जानकीप्रपन्न)	छपरा (मुँगेर)	रसिक-उरहार	कवि
५३	१५५	राम	जगदीशपुर (शाहाबाद)	कुँवर-पचासा एवं स्फुट रचनाएँ	,,
५४	१५६	†रामचरणदास (हंसकला, नागा पाठक)	गंगहरा (सारन)	राम माहात्म्य-चन्द्रिका	?
५५	१५७	रामरूपदास	पुण्यपुर (दरभंगा)	गोपाल-सागर तथा स्फुट रचनाएँ	कवि
५६	१५८	रामसनेहीदास	मधुरा (दरभंगा)	,,	,,
५७	१६१	रिपुभजन सिंह	दलीपपुर-गढ़ (शाहाबाद)	,,	,,
५८	१६३	*लक्ष्मीनारायण	अख्तियारपुर (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	,,
५९	१६४	लक्ष्मीसखी (लक्ष्मीदास)	अमनौर (सारन)	१. अमरसीढ़ी	,,

क्र०सं०	पृ सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
६०	१६७	लालबाबू	गोपालपुर (भागलपुर)	२. अमर-कहानी ३. अमर-विलास ४. अमर-फरास तथा स्फुट रचनाएँ	
६१	१६८	*विजयगोविन्द सिंह	फरकिया-स्टेट (पूर्णिया)	स्फुट रचनाएँ	कवि
६२	१६८	श्यामसुन्दर	बनैली (पूर्णिया)	दिल्लीनामा तथा स्फुट रचनाएँ	"
६३	१६९	श्यामसेवक मिश्र	सूर्यपुरा (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	"
६४	१७०	शिवप्रसाद (कवीश्वर)	गया	" १. सत्त-छप्पै-रामायण २. नन्दमदन-हरछंद-रामायण ३. सत्त-साहनी-छंद-रामायण ४. संक्षिप्त दोहावली-रामायण ५. सत्तहारि-गीत-छद-रामायण ६. सत्त सोरठा-रामायण ७. अनुष्टुप्-रामायण ८. पंचपदावली-रामायण ९. हरिहरात्मक-हरिवंशपुराण तथा स्फुट रचनाएँ	" "
६५	१७२	*शिवबख्श मिश्र	वेलखरा (गया)		"
६६	१७३	सोहनलाल (रायसाहब)	पटना	स्फुट रचनाएँ	
६७	१७५	*हरनाथ सहाय	सारन	१. दौत-विजली-बल २. नगड़-बिजली-बल तथा ३. वायुविद्या	" गद्यकार, कवि एवं सम्पादक
६८	१७६	*हरनारायण दास	इस्लामपुर (पटना)	काशीखण्ड स्फुट रचनाएँ	? कवि

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
६६	१७६	+हरसहाय भट्ट	पटना	१. रामरत्नावली तथा २. रामरहस्य	?
७०	१७७	हरिचरणदास	कसबा (पूर्णिया)	१. हरिचरणामृत-सतसई तथा २. चिन्तामणि	कवि
७१	१७९	+हरिराज द्विवेदी	बैकुंठवा (चम्पारन)	रामायण का हिन्दी पद्यानुवाद (अपूर्ण) तथा स्फुट रचनाएँ	,,

तृतीय अध्याय

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
१	१८०	*अम्बालिका देवी	रामनगर (चम्पारन)	राजपूत-रमणी का हिन्दी अनुवाद	गद्यकार
२	१८०	*अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय	रामनगर (चम्पारन)	नेपाल का इतिहास	,,
३	१८०	अम्बिकाशरण	सारन	स्फुट रचनाएँ	कवि
४	१८१	ईनरराम	चम्पारन	,,	,,
५	१८२	उमानाथ वाजपेयी	सिहोरवा (चम्पारन)	,,	,,
६	१८२	करताराम	काँटी (मुजफ्फरपुर)	करताराम के पद तथा स्फुट रचनाएँ	,,
७	१८४	कवीन्द्र	बिसौली (मिथिला)	स्फुट रचनाएँ	,,
८	१८४	*कारीराम	चम्पारन	,,	,,
९	१८५	केशवदास	बेलवतिया (चम्पारन)	,,	,,
१०	१८६	कौलेसर बाबा	सारन	,,	,,
११	१८६	कृपानारायण	नयागाँव (सारन)	आशिक गदा तथा स्फुट रचनाएँ	,,
१२	१८७	*कृष्णप्रताप साही	हथुआ (सारन)	शाक मुदगर तथा स्फुट रचनाएँ	,,
१३	१८७	*खक्खन मियाँ	ममरखा (चम्पारन)	चैनसिंह का पँवारा	कवि
१४	१८८	*गंगादत्त उपाध्याय	चम्पारन	?	?
१५	१८८	गुलाबचन्द (आनन्द)	शाहाबाद	आनन्द-भण्डार	कवि
१६	१८९	*गोविन्द मिश्र (कवीश्वर)	दरभंगा	स्फुट रचनाएँ	,,

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
१७	१८६	*गौरीदत्त	चम्पारन	स्फुट रचनाएँ	कवि
१८	१९०	*जगन्नाथ सहाय	हजारीबाग (छोटानागपुर)	१. आनन्द-सागर २. प्रेमरसामृत ३. भक्तरसनामृत ४. भजनावली ५. कृष्णबाललीला ६. मनोरंजन ७. चौदहरत्न ८. गोपाल सहस्रनाम तथा स्फुट रचनाएँ	„
१९	१९०	जनेश्वरी बहुआसिन	बड़हगोड़िया (दरभगा)	स्फुट रचनाएँ	„
२०	१९१	जयगोविन्द महाराज	बहोरा (पूर्णियाँ)	१. साहित्य-पयोनिधि २. अलंकार-आकर ३. कविता-कौमुदी ४. समस्यापूर्त्ति ५. दुर्गाष्टक तथा स्फुट रचनाएँ	„
२१	१९५	*जयनाथ झा (कवीश्वर)	हरिहरपुर (दरभंगा)	स्फुट रचनाएँ	„
२२	१९५	*जवाहर प्रसाद	चन्दा-अखौरी (शाह बाद)	„	„
२३	१९६	*जानकी प्रसाद	पटना	मानस अभिप्राय दीपक पर वार्त्तिक-टीका	टीकाकार
२४	१९६	*ठाकुर प्रसाद (जगदीशपुरी)	जगदीशपुर (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	कवि
२५	१९६	*डीहूराम	चम्पारन	„	„

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
२६	१९७	तोफाराय	पतारि (सारन)	१. कुँवर-पचासा २. मझौली-विवाह-वर्णन तथा ३. विन्ध्यवासिनी-स्तोत्र	कवि
२७	१९८	दरसनदास	चम्पारन	स्फुट रचनाएँ	,,
२८	१९९	*दीनदयालु	बेतिया (चम्पारन)	,,	,,
२९	१९९	दीहलराम	फतुहा (पटना)	अनुभव-प्रकाश तथा स्फुट रचनाएँ	,,
३०	२०१	द्वारकाप्रसाद मिश्र (कविरंग)	पचरुखिया (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	,,
३१	२०३	धवलराम	काँटी (मुजफ्फरपुर)	,,	,,
३२	२०४	*ध्रुवदास	छपरा (सारन)	१. वाणी २. सिद्धान्त-विचार और ३. भक्ति-नामावली	कवि एवं गद्यकार
३३	२०४	*नवरंगी सिंह	रीगा (मुजफ्फरपुर)	सुखसागर	?
३४	२०४	*परपन्तबाबा	मँगुराहा (चम्पारन)	स्फुट रचनाएँ	कवि
३५	२०५	पूरनराम	आदापुर (चम्पारन)	,,	,,
३६	२०५	*प्यारेलाल	बेतिया (चम्पारन)	,,	,,
३७	२०६	प्राणपुरुष	चम्पारन	,,	,,
३८	२०६	फुल्लेबाबू	मोतीहारी (चम्पारन)	,,	,,
३९	२०७	भुवन झा	पडुमकेर (चम्पारन)	सत्यनारायण-व्रत-कथा का पद्यानुवाद तथा स्फुट रचनाएँ	,,
४०	२०८	*भेषनाथ झा	गंगौली (दरभंगा)	नारद-भ्रम-भंग	नाटककार
४१	२०८	मनसाराम	मुसहरवा (चम्पारन)	स्फुट रचनाएँ	कवि
४२	२०९	*महादेवप्रसाद (मदनेश)	झाऊगंज (पटना सिटी)	१. गंगालहरी २ नखसिख रामचन्द्रजी ३. मदनेश-मौजलतिका ४. मदनेश-कल्पद्रुम	,,

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
				५. संकटमोचन-आरसी ६. मदनेश-कोष ७. तनतीम-ताला की तरहदार कुंजी तथा ८. भैरवाष्टक	
४३	२०९	माधवेश्वरेन्द्र प्रताप साही (माधव)	माँझा (सारन)	माधव-मुक्तावली तथा स्फुट रचनाएँ	कवि
४४	२१०	*मायाराम चौबे	मुसहरवा (चम्पारन)	,,	,,
४५	२११	मित्रनाथ	गंगौली (दरभंगा)	,,	,,
४६	२११	मिसरीदास	चम्पारन	,,	,,
४७	२१२	*युगलकिशोर	खुटहा (गया)	,,	,,
४८	२१२	योगेश्वर राम (परमहंस बाबा)	रूपवलिया-मठ (चम्पारन)	स्वरूप-प्रकाश एवं स्फुट रचनाएँ	,,
४९	२१३	*रमाकान्त	मिथिला	स्फुट रचनाए	,,
५०	२१३	*रमापति	,,	,,	,,
५१	२१३	*राजेन्द्रकिशोर सिंह	बेतिया (चम्पारन)	,,	,,
५२	२१४	राजेन्द्रप्रसाद सिंह	पटेढ़ी (सारन)	,,	,,
५३	२१६	रामधन राम	चम्पारन	,,	,,
५४	२१६	रामनेवाज मिश्र	माधोपुर (चम्पारन)	,,	,,
५५	२१७	रामस्वरूप राम	झखरा-मठ (चम्पारन)	,,	,,
५६	२१७	*रामेश्वरप्रसादनारायण सिंह (महाराजा बहादुर, केशव)	मकसूदनपुर (गया)	,,	,,
५७	२१८	लहवरदास	चम्पारन	,,	,,
५८	२१८	*वासुदेवदास	छपरा (सारन)	रसिक-प्रकाश (भक्तमाल की सुबोधिनी टीका)	टीकाकार
५९	२१८	*शत्रुघ्न मिश्र	बसघटिया (चम्पारन)	मंत्रदीपिका	गद्यकार
६०	२१९	शम्भुदत्त झा	उजान (दरभंगा)	स्फुट रचनाएँ	कवि

क्र०सं०	पृ०सं०	साहित्यकारों के नाम	स्थान	ग्रन्थों के नाम	प्रवृत्ति
६१	२१६	शिवकविराय	जगदीशपुर (शाहाबाद)	स्फुट रचनाएँ	कवि
६२	२२०	*शिवेन्द्र शाही (लाल साहब)	माँझा (सारन)	,,	,,
६३	२२०	*शीतल उपाध्याय (शीतल द्विज)	शीतलपुर-बरेजा (सारन)	,,	,,
६४	२२१	*शीतलराम	चम्पारन	,,	,,
६५	२२१	*श्रीधर शाही	माँझा (सारन)	,,	,,
६६	२२१	सनाथराम	चम्पारन	,,	,,
६७	२२२	सबलराम	,,	,,	,,
६८	२२२	*हरिनाथ मिश्र (कवीश्वर)	शहबाजपुर (मुजफ्फरपुर)	वैद्यनाथ-निवास एवं स्फुट रचनाएँ	,,
६९	२२३	*हीरा साहब	माँझा (सारन)	स्फुट रचनाएँ	,,

१. *तारक-चिह्नित साहित्यकारों की रचना के उदाहरण नहीं मिले हैं।

परिशिष्ट-६

[मूल पुस्तक में संकलित उदाहरणों की प्रथम पंक्ति की अकारादिक्रम से सूची]

---

* ध्यातव्य : कुल ४५७ उदाहरण। तारक-चिह्नित अंश गद्य के उदाहरण हैं।—सं०

व्यक्तिनामानुक्रमणी

ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाओं की नामानुक्रमणी

सहायक ग्रन्थों की सूची

Biography of Kunwar Singh and Amar Singh—Dr. K.K Dutta

Eighteen-fifty Seven –Dr. Surendranath Sen.

चम्पारन की साहित्य-साधना—रमेशचन्द्र झा

बिहार-दर्पण—रामदीन सिंह

मिश्रबन्धु-विनोद—मिश्रबन्धु

श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी की जीवनी – शिवनन्दन सहाय

रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय—डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

कविता-कौमुदी—पं० रामनरेश त्रिपाठी

रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

दुर्गाप्रेमतरंगिणी या दुर्गाभक्तितरंगिणी (हस्तलिखित)—नगनारायण सिंह

History of Maithili Literature –Jaikant Mishra

मैथिली-गीत-रत्नावली—पं० बदरीनाथ झा

पुस्तकभंडार-रजत-जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ—सम्पादक-मण्डल

प्रभावतीहरण—भाना झा (भानुनाथ)

गया के लेखक और कवि—द्वारकाप्रसाद गुप्त

बिहार की साहित्यिक प्रगति—बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पटना

आत्मचरित-चम्पू—प्रो० अक्षयवट मिश्र

श्रीमद्भगवद्गीतार्थचन्द्रिका – पं० अयोध्याप्रसाद मिश्र

कविवर पं० चन्दा झा—पं० बलदेव मिश्र

श्रीलक्ष्मीश्वरविलास—पं० चन्दा झा

चन्द्रपद्यावली—श्रीबलदेव मिश्र

मैथिली-रामायण—पं० चन्दा झा

श्रीराजराजेश्वरी-ग्रन्थावली—राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह 'प्यारे'

दिनेश कवि और बैजनाथ कवि का जीवन-परिचय (हस्तलिखित)—प्रो० अमरनाथ सिन्हा

हिन्दी-साहित्य और बिहार (प्रथम खण्ड)—आचार्य शिवपूजन सहाय

शिवाशिवशतक – बा० नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह

शृङ्गार-दर्पण— ,, ,,

धर्म-प्रदर्शनी— ,, ,,

हिन्दी-पुस्तक-साहित्य—डॉ० माताप्रसाद गुप्त
हरिऔध-अभिनन्दन-ग्रन्थ—सम्पादक-मण्डल
श्रीरूपकला-चरितामृत—रामलोचनशरण
श्रीरूपकला के संस्मरण—रघुनाथप्रसाद मुख्तार
श्रीरूपकला : एक झाँकी—अखौरी वासुदेवनारायण
श्रीरूपकलाप्रकाश—रघुवंशभूषण
Shri Rupkala and His life and teachings—A.B.N. Sinha
Bhagwan Rupkala and His Mission— ,, ,,
श्रीभक्तमाल भक्तिसुधास्वाद-तिलक—रूपकला
भोजपुरी के कवि और काव्य—दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह
श्रीसीतारामीय प्रथम पुस्तक—भगवानप्रसाद 'रूपकला'
श्रीरामनाममहिमा (हस्तलिखित)—पं० रामलोचन मिश्र
रसिक-विलास-रामायण—अक्षयकुमार
डॉ० ग्रियर्सन-कृत हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास—किशोरीलाल गुप्त
कमलेशविलासः—पं० मोहनशरण मिश्र
कविता-कुसुमांजलि— ,, ,,
गयावासी-भागवत—पं० चतुर्भुज मिश्र
मनोहर-रामायण— ,, ,,
शेर-ओ-सुखन—अयोध्याप्रसाद गोयलीय
उर्दू शायरी और बिहार—रजा नक्वी
An Introduction to Maithili Language of North Bihar Containing Grammer, Chrestomathy and Vocabulary—G. A. Grierson
भट्टिकाव्यम्—शेषराज शर्मा
मैथिली साहित्यक इतिहास—पं० कृष्णकान्त मिश्र
हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—श्यामसुन्दरदास
भूगोल-वर्णन—गणपत सिंह
प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री
भागलपुर-दर्पण—पं० झारखण्डी झा
गोपीश्वर-विनोद—गोपीश्वर सिंह
पुनपुन-माहात्म्य—टिम्बल ओझा
कबीर-भानुप्रकाश (हस्तलिखित)—परमानन्ददास
बारहमासा (हस्तलिखित)— ,,
मिथिला-गीत-संग्रह—भोल झा
हिन्दी-साहित्य को बिहार की देन—प्रो० कामेश्वर शर्मा

बाबू कुँवरसिंह—दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह
तवारिखे उज्जैनिया—मुंशी विनायकप्रसाद
अमर-कहानी—लछमीसखी
अमर-विलास— „ „
भजन-संग्रह — „ „
अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ—शिवपूजनसहाय तथा नलिनविलोचन शर्मा
हरिचरणामृत-सतसई—श्रीमहन्त हरिचरणदास
संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री
रघुवीरनारायण—जीवनी तथा कृतियाँ (टंकित)—चन्द्रकिशोर पाण्डेय
हिन्दी-सेवी-संसार—प्रेमनारायण टंडन
मिथिलाभाषामय इतिहास—पं० मुकुन्द झा बख्शी
अनुभव-प्रकाश—दोहलराम
सुभाषितरत्नभाण्डागारम्—पं० शिवदत्त कविरत्न
स्व० बाबू साहबप्रसाद सिंह की जीवनी—बाबू शिवनन्दनप्रसाद
श्रीराजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ—सम्पादक-मण्डल
मैं ब्रह्म हूँ—दामोदर शास्त्री सप्रे
झूलन के पद (हस्तलिखित)—अज्ञात
हिन्दी-शब्दसागर—सम्पादक-मण्डल
कलम-शिल्पी—उमाशंकर
हिन्दी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
उमापति उपाध्याय और नव पारिजात मंगल—बजरंग वर्मा
The Tenth Report on the Search of Hindi Manuscripts for the years 1917, 1918 and 1919—Rai Bahadur Hiralal
शिवसिंह-सरोज—शिवसिंह सेंगर
अनन्त-परिचय और अनन्त-सागर—स्वामी हनुमानदास
The Eleventh Report on the Search of Hindi Manuscript for the year 1920, 1921 and 1922—Rai Bahadur Hiralal
हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य (टंकित)—सियाराम तिवारी
कुँअरसिंह-अमरसिंह—डॉ० कालीकिंकर दत्त
बिहारी-बिहार—पं० अम्बिकादत्त व्यास
पाण्डवचरितार्णव (हस्तलिखित)—देवीदास
विनयपत्रिका की रामतत्त्वबोधिनी टीका—शिवप्रकाश सिंह
रसिक-उरहार—राजेन्द्रशरण

सहायक पत्र-पत्रिकाएँ

नईधारा (मासिक)—पटना
गंगा (मासिक)—भागलपुर
साहित्य (त्रैमासिक)—पटना
Journal of Asiatic Society of Bengal (त्रैमासिक)—कलकत्ता
देवनागर (मासिक)—कलकत्ता
गृहस्थ (साप्ताहिक)—गया
नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (त्रैमासिक)—काशी
आर्यावर्त्त (दैनिक)—पटना
सुधा (मासिक)—लखनऊ
माधुरी (मासिक)—लखनऊ
समस्यापूर्त्ति (मासिक)—पटना
शतदल (अर्द्ध वार्षिक)—गया
बालक (मासिक)—पटना
सरस्वती (मासिक)—प्रयाग
संकीर्त्तन-संदेश (मासिक)—मेरठ
किशोर (मासिक)—पटना
सम्मेलन-पत्रिका (त्रैमासिक)—प्रयाग
मनोरमा (मासिक)—प्रयाग
श्रीकमला (मासिक)—काशी
कल्याण (मासिक)—गोरखपुर
लक्ष्मी (मासिक)—गया
कवि (मासिक)—गोरखपुर
शाहाबाद (साप्ताहिक)—आरा
गाँवघर (पाक्षिक)—आरा
आदिवासी (साप्ताहिक)—राँची
आज (दैनिक)—काशी
श्रीहरिश्चन्द्र-कला (मासिक)—काशी
मुरारका महाविद्यालय-पत्रिका (वार्षिक)—भागलपुर
साहित्य-पत्रिका (मासिक)—आरा
रसिक-मित्र (मासिक)—कानपुर
प्रभाकर (साप्ताहिक)—मुंगेर
वार्षिकी (वार्षिक)—मोतीहारी
नवराष्ट्र (दैनिक)—पटना
परिषद्-पत्रिका (त्रैमासिक)—पटना
पाटलिपुत्र (साप्ताहिक)—पटना
हिन्दी-अनुशीलन (त्रैमासिक)—प्रयाग
उत्तर-बिहार (साप्ताहिक)—पटना
शिक्षा (साप्ताहिक)—पटना